हिन्दी-साहित्य
और
उसकी प्रगति

लेखक
विजयेन्द्र स्नातक
क्षेमचन्द्र 'सुमन'

१९५२
आत्माराम एण्ड संस
प्र का श क त था पु स्त क - वि क्रे ता
काश्मीरी गेट
दिल्ली ६

प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली ६

मूल्य तीन रुपये

मुद्रक
श्यामकुमार गर्ग
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
क्वीन्स रोड, दिल्ली ६

दो शब्द

हिन्दी-साहित्य का इतिवृत्त प्रस्तुत करते समय हमारे पूर्ववर्ती अनेक लेखकों ने पर्याप्त शोध तथा व्यक्तिगत प्रतिभा एवं विद्वत्ता का परिचय दिया है, पठन-पाठन-परम्परा के आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का इतिहास सर्वाधिक प्रचलित है और प्रायः बाद के सभी लेखकों ने शुक्ल जी की प्रणाली को ही स्वीकार करके इतिहास-ग्रन्थों का प्रणयन किया है। राम हमारा यह संक्षिप्त इतिहास किसी नवीन अनुसन्धान की बात का परिचय देने वाला है अथवा इसमें नूतन उद्भावनाओं को स्थान मिला है—ऐसा हम नहीं कहते; किन्तु माध्यमिक कक्षाओं मे पढ़ने वाले हिन्दी-प्रेमी विद्यार्थियों के लिए इस इतिहास में सामग्री का चयन उपादेयता तथा आवश्यकता के आधार पर किया गया है। युग-विभाजन की दृष्टि से कोई मौलिकता इसमें नहीं—कवि या लेखकों के चयन में भी कोई न्यूनता नहीं, किन्तु प्रवृत्तियों के परिचय और कलाकारों की समीक्षात्मक झाँकी प्रस्तुत करने में हमने भाषा, भाव और शैली की दृष्टि से माध्यमिक कक्षाओं के विद्यार्थियों के साहित्यिक ज्ञान तथा बौद्धिक सार का पूरा ध्यान रखा है। वर्तमान युग का वर्णन कई दृष्टियों से पूर्ण और समीचीन है, जो प्रायः संक्षिप्त कहे जाने इतिहासों में नहीं मिलता।

प्रारम्भ में हिन्दी-भाषा की पृष्ठ-भूमि का वर्णन भाषा-विज्ञान के आधार पर दिया है, जो हिन्दी-भाषा की स्थिति और विकास का क्रमिक विकास प्रस्तुत करने के लिए आवश्यक था।

हमारा विश्वास है कि हिन्दी-भाषा और साहित्य के इस संक्षिप्त इतिवृत्त से माध्यमिक श्रेणी के विद्यार्थियों को अभिप्रेत ज्ञान-सामग्री उपलब्ध हो सकेगी।

—लेखकद्वय

हिन्दी-भाषा और साहित्य की पृष्ठभूमि

भाषा-तत्त्ववेत्ताओ ने ससार की भाषाओ के इतिहास को वंश-क्रम की भाति कुलो, उपकुलो, शाखाओ, उपशाखाओ तथा समुदायो मे विभक्त किया है। इस प्रकार से उन्होने संसार की समस्त भाषाओ को बारह कुलो मे विभाजित किया है और उनमे सबसे महत्त्वशाली तथा प्रथम स्थान रखने वाला भारत-यूरोपीय कुल है। जिसे आर्य भारत, जर्मनिक और जफेटिक नाम से भी पुकारते है। परन्तु यह नाम ही सबसे उत्तम और उपयोगी है, क्योकि भारत यूरोपीय कुल मे उन भाषाओ का समावेश है, जो उत्तरी भारत, अफगानिस्तान तथा प्राय: सम्पूर्ण यूरोप मे बोली जाती है।

इस प्रकार भारत यूरोपियन (भारोपीय) कुल को भी देश और उसके विभिन्न स्वरूपो की दृष्टि से आठ उपकुला मे विभक्त किया है। जिसमे सबसे प्रथम आर्य अथवा भारत ईरानी उपकुल का परिगणन होता है। इसी प्रकार आर्य अथवा भारत ईरानी उपकुल की तीन शाखाएँ (१) ईरानी, (२) पैशाची या दर्द और (३) भारतीय आर्य भाषा है।

भारतीय आर्य भाषा अथवा आर्यावर्तीय शाखा के तीन कालो मे बाँटा गया है—(१) प्राचीन काल, (२) मध्य काल और (३) आधुनिक काल। इसी आधुनिक काल मे आर्य-भाषा हिन्दी का भी स्थान है। इस प्रकार संसार के भाषा-समूहो मे यूरोपीय कुल के भारत-ईरानी-उपकुल मे भारतीय आर्य शाखा की आधुनिक भाषाओ मे से एक मुख्य भाषा हिन्दी है।

प्राचीन काल को आज तक की खोज के आधार पर १५०० ईस्वी पूर्व से ५०० ईस्वी पूर्व माना जाता है। इस काल की जनता की बोली का कोई स्वरूप अब उपलब्ध नही है। हाँ, साहित्यिक रूप के नमूने ऋग्वेद मे अवश्य मिलते है। इसके पश्चात् उस भाषा मे भी क्लिष्टता होने लगी,

अतएव जनता मे बोली जाने वाली भाषा तथा साहित्यिक भाषा मे अन्तर होता चला गया। सूत्र-काल मे प्राचीन वैदिक भाषा को और भी अधिक साहित्यिक रूप दिया गया तथा प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि ने उसको व्याकरण के सूत्र-जाल मे ऐसा जकडा कि वही रूप आज तक प्रचलित है। वैयाकरणो द्वारा बताये गए इस साहित्यिक रूप का नाम सस्कृत (क्लासिकल संस्कृत) पड़ा। जनता की भाषा इससे सर्वथा भिन्न होती चली गई और फिर उसने नया रूप धारण करके कुछ सन्तो (महात्मा बुद्ध आदि) द्वारा साहित्य मे भी प्रवेश किया। मध्य काल मे जिसका समय ५०० ई० पूर्व से १००० ई० तक माना जाता है, उसी प्राचीन भाषा का नाम पाली अथवा प्रथम प्राकृत रखा गया। किन्तु उससे जनता की भाषा मे फिर भिन्नता हो गई। उस समय जनता की भाषा पाली के नाम से पुकारी गई। बौद्ध धर्म का जनता मे अधिक प्रचार होने का यह भी एक मुख्य कारण था कि उसकी शिक्षा जनता की भाषा पाली मे दी गई। बौद्ध धर्म का साहित्य पाली (प्रथम प्राकृत) मे ही लिखा गया। महाराज अशोक ने भी इसी भाषा मे धर्म-लिपियाँ तैयार कराई।

द्वितीय प्राकृत भाषा भी तीन भिन्न रूपो मे प्रचलित थी—(१) पूर्वी प्रान्तो मे मागधी प्राकृत, (२) पश्चिमी प्रान्तो मे शौरसेनी प्राकृत, जो गुजरात महाराष्ट्र आदि तक मे बोली जाती थी तथा इन दोनो के बीच की भाषा और (३) अर्द्धमागधी। पाली से भिन्न होकर प्राकृत ने साहित्य मे जब अपना स्थान बना लिया और वह जनता से दूर पड़ गई तब जनता की बोली ने एक नया चोला बदला और फिर वह इन प्राकृतो का रूप बदलकर अपभ्रंश-भाषाओ के नाम से प्रख्यात हुई। ५०० ईस्वी तक इन अपभ्रंश-भाषाओं का प्रचार रहा। कुछ समय तक जनता और साहित्य की भाषा एक रही और वही तीन प्राकृत भाषाएँ अब तीन अपभ्रशो के नाम से पुकारी गई—(१) पश्चिमी शौरसेनी अपभ्रंश, (२) पूर्वी मागधी अपभ्रंश और (३) बीच की अर्द्धमागधी अपभ्रंश। इन अपभ्रंशो ने भी जब साहित्यिक रूप धारण कर लिया तो

ये जनता के सम्पर्क से दूर चली गई, क्योंकि इसको भी विद्वानो ने व्याकरण के नियमो मे जकड़कर पोथी-पुस्तक तथा केवल साहित्यिक भाषा बनाकर जनता से अलग कारागार मे बन्द कर दिया । इसके पश्चात् युग-परिवर्तन का समय आया और इन्ही अपभ्रंशो से देश की विभिन्न भाषाओं की उत्पत्ति हुई ।

ऊपर तीन कालो का जो समय निर्धारित किया गया है, उसका तात्पर्य यह नही है कि वह काल तभी से प्रारम्भ होता है अथवा उस काल की भाषाओ की उत्पत्ति और विकास उसी काल मे हुआ है। उस काल को ठीक पैमाना मान लेना भूल होगी, क्योंकि कोई भी भाषा अपना स्वरूप शताब्दियो मे निश्चित कर पाती है। उसकी उत्पत्ति को निश्चित समय मे मापना असम्भव है। प्रत्येक भाषा को पहले जनता मे अपना स्वरूप उत्पन्न करने मे चुपचाप सैकड़ो वर्ष व्यतीत करने पडते है तब कही वह प्रकट होती है और अपना नामकरण कराती है। उसके सूत्रपात की तिथि का निश्चय अनुमान से बाहर है। प्राचीन काल मे ही मध्य काल की भाषा पनपती रही, उसका साम्राज्य स्थापित हो जाने पर प्राचीन काल की समाप्ति और मध्य काल का आरम्भ समझा जाने लगा। इससे यह नही समझना चाहिए कि मध्य काल की भाषा सर्वथा लुप्त हो गई। ऐसा कभी भी नही होता, सदियों तक वह पर्याप्त मात्रा मे साहित्य मे पनपती और फलती-फूलती रहती है और विद्वान् लोग उसका प्रयोग करते रहते है। इसी कार मध्य काल की भाषाओ का साहित्यिक रूप अब भी वही है, जो तब था। यही नहीं, प्राचीन काल की सस्कृत आज भी अपने उसी रूप को लिये हुए साहित्य मे प्रयुक्त की जाती है। इसी प्रकार आधुनिक काल की भाषाओ की जड़ मध्य काल मे ही शताब्दियों पूर्व से जम गई थी और उसके पनपने पर जब उसने नया रूप धारण किया तो मध्य काल की समाप्ति समझी गई और आधुनिक काल का प्रारम्भ माना गया। इस प्रकार भाषाएँ शताब्दियो मे अपना रूप निश्चित करके प्रकट होती हैं।

हम पहले बता चुके हैं कि हमारे देश की समस्त आधुनिक भाषाओ की उत्पत्ति अपभ्रश भाषाओ से हुई है। इसको हम यों भी कह सकते हैं कि प्राचीन काल की भाषा का परिवर्तित रूप आज की हमारी भाषाएँ हैं। यही परिवर्तन-वृत्त भाषाओ का इतिहास कहाता है। पश्चिमीय शौर-सेनी अपभ्रश से हिन्दी, राजस्थानी, पंजाबी गुजराती, और पार्वत्य प्रदेश की भाषाओं का गहरा सम्बन्ध है। इस प्रकार हमारी हिन्दी भाषा दसवी शताब्दी के आस-पास इस रूप को ग्रहण करती आती है। यही इसका जन्म-काल अथवा प्रकट-काल कहलाता है। इसके पश्चात् हिन्दी-भापा मे समय के साथ-साथ परिवर्तन तथा परिवर्द्धन होता गया और वह विविध रंगो को रंगभूमि मे छिटकाती हुई अपने चरम विकास को प्राप्त हुई। अपभ्रंश-भाषाओ के काल को यदि हम हिन्दी-भाषा के इतिहास से पृथक् कर दें और अपभ्रश से विकसित भापा हिन्दी रूप को ग्रहण करे तो इसका प्रारम्भ हम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार सम्वत् १०५० से मान सकते हैं। इसके जन्म काल से लेकर आज तक के समय को इसके विकास की दृष्टि से हम चार भागों मे बॉट सकते है—(१) प्राचीन काल (सं० १०५० से १३७५ तक), (२) पूर्व मध्य काल (स० १३७५ से १७०० तक), (३) उत्तर मध्य काल (स० १७०० से १६०० तक) और (४) आधुनिक काल (सं० १६०० से आज तक)।

प्राचीन काल की हिन्दी-भाषा पर उसकी जननी शौरसेनी और अर्द्ध मागधी आदि की पूरी छाप अंकित थी और जब तक ये समर्थ न हुई, अपनी जननी के ही पद-चिह्नो पर चलती रही। इस काल की ११०० ई० के पूर्व की सामग्री आज उपलब्ध नही है, इसके बाद की तो सामग्री मिलती है—इसे हम तीन भागो मे विभाजित करते है—(१) ताम्र-पत्र, शिला-लेख तथा प्राचीन पत्र आदि, (२) अपभ्रंश काव्य और (३) चारण काव्य। जैसा हम पर बता चुके है पहले प्रकार की सामग्री पर अपभ्रशो का प्रभाव है, साथ मे राजस्थानी का प्रभाव भी है। जो प्राचीन पत्रादि उपलब्ध है, एक प्रकार से वे राजस्थानी-मिश्रित भाषाओ

मे ही लिखे गए है। दूसरे प्रकार की सामग्री तो नाम से ही प्रकट कर रही है कि वह अपभ्रंश-भाषा से युक्त है। इस प्रकार की सामग्री में कुमार-पाल, प्रतिबोध, शार्ङ्गधर-पद्धति आदि ग्रन्थ है। तीसरे प्रकार के जो चारण-काव्य है उनमे कुछ ने अपना मार्ग ढूँढ़ने का प्रयत्न किया है, किन्तु वह भी अपभ्रंश भाषा की सहायता के बिना नही पार किया जा सकता। अतः चारण-काव्य भी अपभ्रश भाषा मे निर्मित किये गए। राजनैतिक उथल-पुथल के कारण इस काल मे हिन्दी-भाषा अपना निश्चित स्वरूप धारण नहीं कर सकी। इस काल मे भारत में निरन्तर युद्ध-सघर्ष होते रहे, यवनो के आक्रमण इसी काल मे प्रारम्भ हुए। मोहम्मद गौरी, महमूद गजनवी, सुबुक्तगीन आदि के बड़े-बडे आक्रमण हुए। इससे भाषा के विकास को बडा धक्का लगा। यही कारण था कि इस काल मे हिन्दी भाषा ने कोई विकसित रूप धारण नही किया। इस काल मे रचित साहित्य के नाम पर हिन्दी मे बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, तथा गोरखनाथ के फुटकर काव्य उपलब्ध है, पर इनकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध मे विद्वानो में पर्याप्त मतभेद है।

पूर्वमध्य काल मे भाषा के स्वरूप मे काफी परिवर्तन हुआ। इस काल मे हिन्दी-अपभ्रंशो के प्रभाव से पूर्णतया रहित हो गई और इसने अवधी और ब्रजभाषा के रूप मे साहित्य को परिवर्तित कर दिया। क्योकि १४०० ई० मे लड़ाई-झगड़े समाप्त हो चुके थे और भारत-साम्राज्य एक सुदृढ़ और सुव्यवस्थित शक्ति के हाथो मे आ गया था। मुगल साम्राज्य के तीन बादशाहो के समय मे राज्य मे पर्याप्त शान्ति रही। अतः साहित्य मे भी इस समय बडा विकास हुआ और उच्चकोटि के साहित्य का निर्माण हुआ। भाषा और भाव दोनो ही दृष्टियों से हिन्दी-साहित्य इस काल मे समृद्ध हुआ। इसे इस काल की हिन्दी भाषा का स्वर्ण युग कहकर पुकारते है। इस काल मे साहित्य दो धाराओ मे प्रवाहित हुआ। अवधी भाषा और ब्रजभाषा उसके मुख्य दो स्वरूप थे। सबसे प्रथम जायसी ने अवधी मे 'पद्मावत' की रचना की और पश्चात् हिन्दी

भाषा को उन्नत करने वाले साहित्य-महारथी गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रामचरित मानस' का निर्माण किया तथा फुटकल साहित्य भी लिखा। ब्रजभाषा मे भी उन्होने 'विनय पत्रिका', 'गीतावली' आदि ग्रन्थ लिखे। इस प्रकार ब्रजभाषा का साहित्य भी बराबर विकसित और उन्नत होता रहा। वल्लभाचार्य के प्रोत्साहन से बड़े-बड़े सुप्रसिद्ध महाकवियो ने ब्रजभाषा मे उच्च कोटि का साहित्य प्रस्तुत करके गौरव प्राप्त किया। सूरदास ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सूर सागर' की सृष्टि करके कृष्ण-भक्तो को साहित्य के सुमधुर रस का पान कराया। अष्टछाप के अन्य कवियो ने भी साहित्यिक ब्रजभाषा मे ही रचना की और ब्रजभाषा के माधुर्य को सर्व-जन-सुलभ बनाने मे अमित योग दिया।

उत्तर मध्य काल मे हिन्दी-भाषा ने और भी विकसित रूप ग्रहण किया। इस काल की भाषा तो ब्रजभाषा ही रही, किन्तु साहित्य की धारा शृङ्गार की ओर प्रवाहित हो गई। इस काल मे लड़ाई-झगड़े समाप्त हो चुके थे। सुख-शान्ति की शीतल छाया मे नारी-सौन्दर्य ने अपना जादू फैलाना प्रारम्भ कर दिया था। भक्ति-काल की प्रेमोपासना ने लौकिक रूप धारण कर लिया था। कृष्ण और राधा भक्त कवियों के उपास्य लीला-देव न रहकर अब प्रेमी-प्रेमिका अथवा सामान्य नायक-नायिका बन गए। तात्पर्य यह है कि कवियों की मनोवृत्ति अपने आश्रयदाताओं की भाँति विलासी हो गई, इसलिए शृङ्गारिक साहित्य की रचना प्रचुर परिणाम मे हुई।

कवि राज-दरबारी होने के कारण अपने आश्रयदाताओ की प्रशंसा मे छन्द बनाकर अतुल धन प्राप्त करने मे लीन रहने लगे। इस काल में कवि-प्रतिभा भौतिक मूल्य धन-सम्पत्ति पर बिकती थी। काव्य-कला का प्रदर्शन होता था। ब्रजभाषा का सहज सौदर्न्य और एकरूपता नष्ट होने लगी। छन्दोपयोगी बनाने के लिए भाषा को खूब तोड़ा-मरोड़ा जाने लगा। अरबी, फारसी के शब्दों का प्रयोग होने लगा था। काव्य-कला के दर्शन की बलवती लालसा के कारण हिन्दी मे रीति-ग्रन्थों का निर्माण

भी हुआ। अनेक कवियों ने संस्कृत के 'काव्य प्रकाश', 'साहित्य दर्पण', 'चन्द्रालोक' आदि काव्य-ग्रन्थों के आधार पर रस, अलंकार आदि पर अनेक रीति-ग्रन्थ लिखे। ये रीति-ग्रन्थ भी दो प्रकार के है। प्रथम, जिनमे लक्षण और उदाहरण दिये गए हैं और दूसरे जिनमे केवल उदाहरण दिये गए है। पहले वर्ग मे भूषण, देव आदि है और दूसरे वर्ग मे बिहारी आदि। यद्यपि केशवदास से पूर्व कृपाराम आदि रीति-ग्रन्थ लिख चुके थे, परन्तु केशवदास ही इस विषय के सर्वप्रथम आचार्य माने जाते है।

उत्तर मध्य काल मे जहाँ ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ, वहाँ बीच-बीच मे खड़ी बोली का भी प्रयोग होता रहा। रासो, भूषण, कबीर आदि मे खड़ी बोली के प्रयोगो का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। अमीर खुसरो ने खड़ी बोली मे ही रचना की। अठारहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे उदू के प्रसिद्ध कवि बली ने खड़ी बोली मे रचना की। इस प्रकार खड़ी बोली भी धीरे-धीरे साहित्य मे अपना स्थान बनाती रही और जनता की तो वह भाषा ही बन गई।

अठारहवी शताब्दी के अन्तिम काल मे परिवर्तन होना प्रारम्भ हो गया था। इस समय फिर देश मे अशान्ति फैली। १७६१ ई० मे मरहठा शक्ति पानीपत के क्षेत्र मे अफगानो से पराजित होकर ह्रास को प्राप्त हो चुकी थी। उधर अंग्रेज पलासी के युद्ध मे विजय प्राप्त करके अपनी शक्ति को स्थिर करने मे लगे हुए थे। बक्सर की लड़ाई के पश्चात् उन्होने अवध, प्रयाग, आगरा और दिल्ली की ओर मुख किया। इस प्रकार राजनैतिक परिवर्तन के साथ-साथ साहित्यिक क्षेत्र मे मे भी परिवर्तन होना प्रारम्भ हुआ। अंग्रेजो ने इस देश की भाषा-स्थिति का पर्यवेक्षण करके यह निश्चय किया कि यहाँ की भाषा 'खड़ी बोली' ही जन-साधारण के काम-काज की भाषा है, अतः बाइबिल आदि का अनुवाद उन्होने इसी भाषा मे करवाया अंग्रेजो ने जब यहाँ की भाषा सीखने का प्रयत्न किया तो उनके प्रोत्साहन से 'प्रेम सागर' और 'नासि-

केतोपाख्यान' के जन्म के साथ हिन्दी-भाषा मे गद्य का जन्म हुआ। इनके साथ-साथ मु० सदासुखलाल और मु० इन्शाअल्लाखाँ ने भी स्वेच्छा से हिन्दी-गद्य का निर्माण किया। पद्य-साहित्य मे १६ वी शताब्दी के अन्त तक ब्रजभाषा का बोल-बाला रहा, परन्तु इधर गद्य-साहित्य ने बडी तीव्र गति से उन्नति की। इसी समय स्वामी दयानन्द सरस्वती भी हिन्दी के क्षेत्र मे आए। दिल्ली, मेरठ, मुरादाबाद, बिजनौर की बोली के आधार पर ही खड़ी बोली का स्वरूप खडा किया गया। राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद तथा राजा लक्ष्मणसिंह आदि ने भी गद्य के विकास मे काफी योग दिया। यद्यपि खडी बोली ज्यो-ज्यो साहित्य मे प्रविष्ट हुई, त्यो-त्यो वह परिष्कृत होती गई, तथापि मेरठ और बिजनौर की भाषा से उसमें विषमता की अपेक्षा साम्य ही अधिक रहा। आरम्भ मे खडी बोली मे ब्रजभाषा के प्रयोग भी होते रहे और व्याकरण की व्यवस्था भी बनी रही।

खडी बोली को शुद्ध और परिष्कृत रूप मे जन्म देने का श्रेय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र को है और उसको व्याकरण से सुव्यवस्थित करने का श्रेय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को है। इसके अतिरिक्त आचार्य जी ने भिन्न-भिन्न शैलियो का आदर्श भी लेखको के सामने रखा। इसके पश्चात् हिन्दी-साहित्य दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति करने लगा। मुन्शी प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद और पं०रामचन्द्र शुक्ल प्रभृति लेखको ने हिन्दी भाषा और साहित्य को समृद्ध करने मे अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है। इन महानुभावो के सतत प्रयत्न से हिन्दी गद्य-साहित्य के प्रत्येक अंग समालोचना इतिहास, नाटक, उपन्यास, कहानी और निबन्ध आदि की पर्याप्त उन्नति हुई, और आज भी हो रही है। इस प्रकार एक ओर तो हिन्दी-भाषा ने गद्य-साहित्य के रूप मे प्रगति की और दूसरी ओर अपनी पद्य-धारा के प्रभाव को भी तीव्र गति से आगे बढ़ाया। १६ वी शताब्दी के अन्त मे खडी बोली मे कविता होनी प्रारम्भ हुई। यों तो पहले भी खडी बोली के प्राचीन रूप हमे कविता मे मिलते है, किन्तु अब उसने पद्य-साहित्य मे भी अपना अधिकार जमा लिया।

अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रा-नन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा प्रभृति कवियों ने खड़ी बोली की पद्य-धारा को पर्याप्त विकास दिया और आज इन्हीं प्रतिभाशाली कवियों की तपस्या से खड़ी बोली का काव्य माधुर्य, लालित्य सौन्दर्य, ओज आदि गुणों से सम्पन्न दिखाई दे रहा है।

इसी बीच सन् १६३८ का द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया, जिसकी प्रतिक्रिया साहित्य पर भी हुई। साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्तियों का भी साहित्य पर विशेष प्रभाव पड़ा। इसके परिणाम स्वरूप साहित्य में संघष तथा तत्कालीन परिस्थितियों के चित्रण का दर्शन हुआ। साहित्य में आर्थिक वैषम्य तथा मजदूर, किसान और रोटी के प्रश्न को उठाकर उसे सामान्य जनता के जीवन के निकट लाया गया। इसके परिणाम-स्वरूप साहित्य में प्रगतिवादी धारा का अवतरण हुआ। यह हर्ष की बात है कि आज हिन्दी-भाषा का साहित्य अपने विविध रूपों के साथ, संसार की अन्य समृद्ध भाषाओं के साहित्य के समान ही सर्वतोमुखी उन्नति कर रहा है।

ऊपर हमने हिन्दी-भाषा और साहित्य की प्रगति के क्रमिक विकास का जिन परिस्थितियों के अन्तर्गत वर्णन किया है, उसी दृष्टि से हमारे विद्यार्थियों को प्रस्तुत इतिहास का अध्ययन करना चाहिए।

हिन्दी-साहित्य और उसकी प्रगति

हिन्दी भाषा का जन्म

वैदिक सस्कृत भारत की सबसे प्राचीन भाषा है। इसका प्रमाण ससार का सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद है। ऋग्वेद की भाषा वैदिक सस्कृत है। यह उस समय आर्यो की मातृ-भाषा थी। उस समय का साहित्य भी इसी मे रचा गया, जो वैदिक साहित्य कहलाता है। समय के साथ-साथ वैदिक संस्कृत मे भी परिवर्तन हुआ। उसे शुद्ध करके, उसका सस्कार करके सस्कृत भाषा बनाई गई। जब सभ्य और शिक्षित जनता सस्कृत बोलती थी तो ग्रामीण जनता में उसका विकृत रूप प्रचलित था। धीरे-धीरे इसी विकृत रूप ने सभ्य और शिक्षित वर्ग में महत्त्व का स्थान प्राप्त कर लिया। यही भाषा 'पाली' या 'प्रथम प्राकृत' कहलाई।

जब प्रथम प्राकृत भाषा जन साधारण मे प्रचलित हो गई तब शिक्षित वर्ग ने उसे व्याकरण के नियमो मे बाँधकर साहित्योपयोगी बना दिया। जैसे विद्वानो ने प्राकृत भाषा के लिए पाणिनि के समान ही सूत्र-बद्ध व्याकरण तैयार कर दिया। उस समय का जैन-साहित्य और बौद्ध-साहित्य इसी प्राकृत भाषा मे ही लिखा गया। पाली या प्रथम प्राकृत के शिक्षित वर्ग की भाषा होने पर तत्कालीन बोल-चाल की भाषा ने जन-मन मे स्थान बनाया, यह 'दूसरी प्राकृत' कहलाई। यह प्राकृत भाषा भी उस समय चार भागो मे विभक्त थी—महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और अर्धमागधी।

जब दूसरी प्राकृत का विकास अपनी चरम सीमा को पहुँच गया तो वह भी केवल शिक्षित समुदाय की भाषा बन गई। सर्वसाधारण की

भाषा मे परिवर्तन होने लगा। प्राकृत के शुद्ध रूप में प्रान्तिक और प्रादेशिक शब्दो की भरमार होने लगी। इस नवीन रूप को 'अपभ्रश' का नाम दिया गया। उपर्युक्त प्राकृत के चारो रूपो से अपभ्रश के अनेक रूपों का जन्म हुआ। पर तीन अपभ्रश प्रमुख थी—नागर, उपनागर और ब्राचड। इनमे नागर-अपभ्रश से हिन्दी का जन्म हुआ। अत अपभ्रश भाषा को ही हिन्दी की जननी कहा जायगा।

हिन्दी-साहित्य का आविर्भाव (अपभ्रंश काल)

वस्तुत· अपभ्रश भाषाओ की मूल प्रवृत्ति जन साधारण की अभि-व्यक्ति से साक्षात् सम्बन्ध रखने वाली है। अत. हिन्दी-साहित्य का आविर्भाव अपभ्रशावस्था से ही माना जाता है। जनश्रुति के अनुसार तो सं०७७० मे पुष्य नामक एक बन्दी-जन ने इस भाषा मे एक अलकार-ग्रन्थ लिखा, किन्तु वह अब प्राप्त नही। दसवी शताब्दी मे इसके कुछ उदाहरण मिलते है। और ग्यारहवी शताब्दी मे तो इसका विशेष प्रचार हो गया था।

सं० ६६० मे देवसेन नामक एक जैन ग्रन्थकार ने 'श्रावकाचार' नामक एक पुस्तक लिखी। इसमे अपभ्रश का अधिक प्रचलित रूप दिखाई देता है। उसका एक दोहा इस प्रकार है.

जे जिण सासण भाषियउ, सो मई कहियउ सार।
जो पालेउ सहभाउ करि सौ तरि पावइ पार॥

इसी प्रकार सहजिया-सम्प्रदाय की कुछ पोथियों में इस भाषा के कुछ नमूने मिलते हैं। उसमें से 'कान्ह' की एक कविता का पद यह है :

भणइ 'कान्ह' मन कहवि न फुहई।
निच्चल पवन घर णधर बत्तई॥

इन धर्म-ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्यत्र भी अपभ्रंश काल के साहित्य के नमूने मिलते हैं। बारहवी शताब्दी में गुजरात के राजा सिद्धराज जयसिंह के समय में जैनाचार्य हेमचन्द हुए। उन्होंने सिद्ध 'हेमचन्द

शब्दानुशासन' नाम का एक व्याकरण-ग्रन्थ लिखा। उसमे भी अपभ्रंश के 'दूहो' का सग्रह था। एक 'दूहा' यह है

भल्ला हुआ जो मारिआ, बहिणि महारा कंतु।
लज्जेजं तु वयंसिअहु, जइ भग्गा घरु एन्तु॥

इसके पश्चात् स० १२४१ मे सोमप्रभु सूर ने 'कुमारपाल प्रतिबोध' नामक एक काव्य लिखा। उसमे कुछ प्राचीन अपभ्रंश काव्य के नमूने और कुछ उनके ही बनाये हुए दूहो (दोहो) के नमूने मिलते है। जैनाचार्य मेरुतुङ्ग द्वारा रचित 'प्रबन्ध चिन्तामणि' मे भी अपभ्रश के बहुत से दोहे मिलते है। उदाहरणार्थ एक दोहा देखिये

जा मति पच्छई संपजइ, सा मति पहिली होइ।
मुंज भणइ, मृणालवइ। विघन न बेढ़इ कोइ॥

चौदहवी शताब्दी के अन्तिम चरण में शार्ङ्गधर ने 'शार्ङ्गधर-पद्धति' की रचना की। विद्यापति की 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' भी अपभ्रश भाषा के अन्तर्गत है। विद्यापति के समय मे हम हिन्दी का परिष्कृत रूप पाते है। उस समय व्यवहार मे कहीं-कही अपभ्रश का प्रचार नही रहा था, हाँ साहित्य मे यत्र-तत्र इसकी झलक दिखाई दे जाती थी।

अपभ्रंशोत्तर हिन्दी-साहित्य का काल-विभाग

हिन्दी-साहित्य के इतिहास पर एक दृष्टि डालने से हमे पता चलता है कि समय और परिस्थितियों के साथ-साथ साहित्य मे भी परिवर्तन होता रहा है। जिस समय जैसी परिस्थिति देश की थी, वैसी ही विचार-धारा काव्य में भी प्रस्फुटित हुई। क्योंकि साहित्य तो मानव-समाज की विचार-धाराओं का प्रतिबिम्ब होता है। अतः साहित्य का निर्माण भी समयानुसार हुआ। देश के विप्लवकारी वातावरण में यदि वीर रस प्रधान साहित्य लिखा गया, तो अशाति और दुःख के समय मे शाति प्राप्त करने के लिए भक्ति-विषयक रचनाओं का सृजन हुआ। इसी प्रकार जब शाति और सुख के समय मे जनता की रुचि प्रेम और शृङ्गार की ओर

प्रवृत्त हुई तो उस समय शृङ्गारिक साहित्य का निर्माण हुआ। और जब देश में विभिन्न विषम परिस्थितियाँ समान रूप से जनता के सामने आई तो साहित्य का रूप भी बहुमुखी हो गया।

इन भिन्न-भिन्न विचार-धाराओं को दृष्टि मे रखते हुए हिन्दी-साहित्य के इतिहास को चार युगो मे विभक्त किया गया है।

१. वीर-प्रशस्ति युग—स० १०५० से १३७५ तक
२. भक्ति युग— स० १३७५ से १७०० तक
३. शृङ्गार युग— स० १७०० से १६०० तक
४. नव चेतना युग— स० १६०० से आज तक

प्रत्येक युग का नामकरण उस युग की प्रमुख प्रवृत्तियों के आधार पर ही हुआ है। जैसे आदि काल में वीर-रस-सम्बन्धी रचनाओ की प्रधानता रही तो उसका नाम वीर-प्रशस्ति युग पड़ा। प्रमुख प्रवृत्ति के आधार पर युग का नामकरण भी स्वर्गीय श्री आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सर्व प्रथम किया था। यह नामकरण इस बात का द्योतक है कि किस युग मे किस प्रकार की कविताएँ अधिक लिखी गई और कवियो की प्रवृत्ति किस दिशा मे चलती रही, किन्तु इससे यह परिणाम निकालना सर्वथा भ्रमपूर्ण होगा कि वीर-प्रशस्ति युग मे विशुद्ध या एक-मात्र वीर-प्रशस्ति की ही काव्य-धारा प्रवाहित होती रही या भक्ति युग में शृङ्गार या वीर रस का काव्य नही रचा गया। वीर-प्रशस्ति युग के साहित्य के अनुशीलन से विदित होता है कि इस युग में शृङ्गार रस की धारा उतनी ही वेगवती थी जितनी वीर-प्रशस्ति की। किन्तु वीर-प्रशस्ति का क्षेत्र तथा काव्य-सृजन की प्रवृत्ति का मूल उत्स उत्साह और बलिदान भाव में था, अतः इस युग को वीर-प्रशस्ति युग कहा जाता है। इसका यह तात्पर्य नही, है कि उस युग मे एक ही प्रकार के साहित्य का सृजन होता रहा, अन्य प्रकार की रचना हुई ही नही। हमारा आशय उस समय की प्रधान प्रवृत्तियो से है। जैसी रचनाओं का बाहुल्य जिस युग में रहा, वैसा ही उसका नाम भी पड़ा।

१

वीर-प्रशस्ति युग

(सं० १०५०–१३७५)

सातवी शताब्दी के पश्चात् भारतवर्ष का अखंड साम्राज्य पारस्परिक सघर्ष और गृह-कलह के कारण छिन्न-भिन्न होना प्रारम्भ हो गया था। देश मे छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गए थे। इन भिन्न-भिन्न वश के राजाओ मे पारस्परिक सद्भाव और प्रेम-भावना नष्ट हो गई थी और इसके विपरीत ईर्ष्या तथा द्वेष की अग्नि सुलग रही थी। छोटे-छोटे प्रदेश के राजा होते हुए भी ये अपने को सबसे बढकर शक्तिशाली और अधिपति समझते थे और एक-दूसरे को घृणा की दृष्टि से देखते थे। छोटी-छोटी बातो पर ही तलवारे खिच जाती थीं, अपनी वीरता की धाक जमाने के लिए ही एक-दूसरे पर आक्रमण कर बैठना उनके लिए एक मामूली बात थी। सक्षेप मे तत्कालीन भारत गृह-युद्ध का अखाडा बना हुआ था।

इसी समय उत्तर-पश्चिम की ओर से भारत पर मुसलमानों के आक्रमण होने लगे थे। इनकी टक्कर भारत के उत्तर-पश्चिम प्रात के निवासियो को लेनी पड़ी, जहाँ हिन्दुओ के बड़े-बड़े राज्य प्रतिष्ठित थे। गुप्त साम्राज्य के समाप्त होने पर भारत का पश्चिमी भाग ही भारतीय सभ्यता और बल-वैभव का केन्द्र था। कन्नौज, दिल्ली, अजमेर, अन्हलवाड़ा आदि बड़े-बडे रजवाडे उधर ही प्रतिष्ठित थे। उधर की भाषा ही शिष्ट भाषा मानी जाती थी और साहित्य का सृजन भी उसी भाषा में होता था। प्रारम्भिक काल के साहित्य का आविर्भाव प्रायः

उसी भू-भाग में हुआ है, इसलिए उस साहित्य पर उस भू-भाग की जनता की चित्त-वृत्ति का नैसर्गिक प्रभाव पड़ा। निरन्तर मुसलमान आक्रान्ताओं से टक्कर लेने तथा आपसी युद्ध के कारण जनता की प्रवृत्ति भी युद्ध की ओर झुक गई थी। जो राजा शक्तिशाली सिद्ध होते थे वे मृगया, विवाह (स्वयवर) आदि के द्वारा भी अपने पौरुष की धाक दूसरो पर जमाने के लिए वीर-कार्य करने में तत्पर रहते थे। फलत जिस समय हमारे साहित्य का अभ्युदय होता है, वह लडाई-भिडाई तथा पराक्रम-प्रदर्शन का समय था, वीरता के गौरव का समय था। उस समय किसी को वीरता के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही नहीं था, इसलिए उस समय अधिकाश वीर रस-प्रधान साहित्य का ही निर्माण हुआ।

एक बात और। उस समय राजपूत राजाओ के दरबार मे अनेक चारण या भाट रहते थे। ये लोग बडी ओजस्वी भाषा म अपने स्वामी के बल-विक्रम का बखान करते थे। यह वह समय नहीं था कि राज-दरबार में खडे होकर राजा की दानशीलता का वर्णन करके लाखो रुपये का पुरस्कार प्राप्त कर लिया जाय, बल्कि उस समय तो जो भाट या चारण किसी राजा के पराक्रम, विजय आदि का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन करता था तथा रण-क्षेत्रो मे जाकर अपनी ओजपूर्ण कविता द्वारा वीरों के हृदय में उमगे भरता था, वही सम्मान पाता था। इन लोगो ने फुट-कल काव्य भी बनाये और प्रबन्ध रूप मे वीर-प्रशस्तियाँ भी लिखी। अतः यह समय वीर-प्रशस्तियो का था, इसीलिए इस युग को 'वीर-प्रशस्ति युग' कहते है।

इस युग मे दो प्रकार की रचनाएँ हुई—एक प्रबन्ध-काव्य के रूप मे और दूसरी वीर-गीतों के रूप में। सबसे प्राचीन ग्रन्थ चन्दबरदाई का 'पृथ्वीराज रासो' है। इसके अतिरिक्त दलपति विजय ने 'खुमान रासो' और जगनिक ने 'परमाल रासो' लिखा। वीर-गीत के रूप मे सबसे पुरानी पुस्तक नरपति नाल्ह का 'बीसलदेव रासो' है।

खुमान रासो—दलपति विजय ने इस ग्रन्थ की रचना की। इसमें

चित्तौड के राजा खुमान द्वितीय और खलीफा अलमामूँ के युद्ध का वर्णन है। इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता मे आजकल सन्देह किया जाता है। क्योकि खुमान द्वितीय का समय स० ८७० से ९०० तक था। और आजकल जो 'खुमान रासो' मिलता है, उसमे महाराणा प्रतापसिह तक का वर्णन है। ऐसा जान पडता है कि बाद का वर्णन अन्य कवियो ने उसमे मिला दिया है।

बीसलदेव रासो—इस ग्रन्थ की रचना स० १२१२ में नरपति नाल्ह ने की। यह एक वीर-गीतिकाव्य है। 'बीसलदेव रासो' की भाषा राजस्थानी (डिगल) है। यह एक साहित्यिक काव्य न होकर साधारण वर्णनात्मक गीत-मात्र है। इसमे साँभर के राजा बीसलदेव का भोज परमार की पुत्री राजमती से विवाह, उडीसा-प्रस्थान, राजमती का विरह-वर्णन आदि का सजीव उल्लेख है। निम्न लिखित पद्य से उसकी वर्णन-शैली और भाषा का परिचय हमें मिलता है

> **जाइ सिंघासण बइठो छइ राइ।**
> **डोरो छोरी, जुहारी छइ माइ॥**
> **सेज पधारी राव की।**
> **अतिरंग स्वामी सूँ मीली राति॥**
> **बेटी राजा भोज की।**
> **राजमंती रंग बीसल राव॥**

पृथ्वीराज रासो—इस महाकाव्य की रचना महाकवि चन्दबरदाई ने की है। चन्दबरदाई हिन्दी के प्रथम महाकवि कहे जाते है और 'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी का प्रथम महाकाव्य। यह जनश्रुति के आधार पर कहा जाता है कि चन्दबरदाई दिल्ली के सम्राट् महाराजा पृथ्वीराज के राज-कवि, सखा और सामन्त थे। इनका जन्म स० १२२५ मे लाहौर में हुआ। ये भट्ट जाति के अन्तर्गत जगत गोत्र के थे। कहते है कि पृथ्वीराज और चन्द का जन्म एक ही तिथि को हुआ और मृत्यु भी दोनो की एक ही दिन एक साथ-साथ हुई। चन्द जीवन-पर्यन्त पृथ्वीराज के साथ

रहे और सच्ची मित्रता का अपूर्व परिचय दिया। ऐतिहासिक प्रमाणो के आधार पर चन्दबरदाई का जीवन-वृत्त अभी तक स्थिर नही हो सका है, अतः प्रामाणिक रूप से हम भी कुछ नही कह सकते, किन्तु साहित्यिक दृष्टि से हम 'रासो' का मूल्याङ्कन अवश्य कर सकते हे।

'पृथ्वीराज रासो' की रचना स० १२२५ से १२४६ के भीतर हुई। इसकी भाषा राजस्थानी-मिश्रित है। छन्दो मे प्राचीन कवित्त, दोहा, तोमर, तोटक, और आर्या आदि का प्रयोग किया गया है। इसमे निग्ग्र कुल के क्षत्रियो की उत्पत्ति से लेकर पृथ्वीराज के पकडे जाने तक का सविस्तर वर्णन है। रासो का अन्तिम भाग चन्द के पुत्र जल्हन द्वारा पूरा किया गया है। रासो मे लिखा है

पुस्तक जल्हन हत्थ दै, चलि गंजन नृप काज।

रासो के एक पद्य का उदाहरण नीचे दिया जाता है जिससे उसकी भाषा का आभास मिलता है :

प्रिय प्रिथिराज नरेस जोग लिषि कग्गर दिन्नौ।
लगन बरग रचि सरब दिल द्वाद्दस ससि लिन्नौ॥
सै ग्यारह अरु तीस साष संवत परमानह।
जो पित्री-कुल सुद्ध बरन, बरि रक्खहु प्रानह॥

युद्ध-वर्णन का एक पद्य देखिए·

बज्जिय घोर निसान रान चौहान चहौं दिस।
सकल सूर सामंत सबरि बल जन्त्र मन्त्र तिस॥
उट्ठिराज पृथिराज बाग मनो लग्ग वीर नट।
कढ़त तेग मनबेग लगत मनो बीजु भट्टघट॥
थकि रहे सूर कौतिक गगन, रंगन मगन भई शौन घर।
हृदि हरषि बीर जग्गे हुलसि, हुरेउ रंग नवरत्त वर॥

कई विद्वानों का कहना है कि 'पृथ्वीराज रासो' चन्दबरदाई का लिखा हुआ नहीं है। वे यह प्रमाण देते हैं कि रासो मे आये हुए संवत् शिला-लेखादि से मेल नहीं खाते। इसकी अनेक घटनाएँ इतिहास के विरुद्ध है

और अनेक स्थानो पर भाषा भी उस समय की भाषा से भिन्न है। इसके विरुद्ध कई विद्वानो का मत है कि सम्पूर्ण ग्रन्थ प्रामाणिक नही, प्रत्युत कुछ स्थान, जो पीछे के लोगों द्वारा जोडे गए है, अप्रामाणिक है। प० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या ने रासो की प्रामाणिकता के सम्बन्ध मे यह उक्ति दी है कि रासो मे एक अन्य सवत् का प्रयोग हुआ है, जिसमें विक्रमी सवत् से ६० वर्ष का अन्तर है। रासो के संवत् ६० वर्ष कम करने से ऐतिहासिक सवत् से मेल खा जाते है। अभी इस बात पर विद्वानो मे मतभेद ही बना हुआ है।

'रासो' शब्द का अर्थ

'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति तथा अर्थ के विषय मे भी विद्वानो मे पर्याप्त मतभेद है। विभिन्न विद्वान् विभिन्न स्रोतो से इस शब्द का विकास मानते हैं। फ्रेंच लेखक गार्सी दॅतॉसी ने 'रासो' शब्द की उत्पत्ति **'राजसूय'** शब्द से मानी है। मिश्रबन्धुओं ने **'रहस्य'** शब्द को रासो का रूप दिया है। आचार्य शुक्ल भी ने **रसायरग** शब्द को रासो का बीज स्वीकार किया है। राजस्थानी भाषा के विद्वान् रासो शब्द का मूल **'रासक'** कहते है। इस 'रासक' शब्द का ही रूपान्तर अपभ्रश तथा राजस्थानी भाषा मे **'रासउ'** हुआ, कुछ लोगों के विचार से यह 'रासउ' ही रासो बन गया। प्राचीन राजस्थानी में 'रासक' शब्द का अर्थ है—कथा-काव्य। व्रजभाषा में भी प्रेम-कथा के लिए कही-कहीं यह शब्द व्यवहृत हुआ है। गुजराती और राजस्थानी में अनेक रासो-ग्रंथ लिखे गए है। हो सकता है आगे चलकर यह रासो शब्द वीर-रसात्मक, युद्ध-कथापूर्ण ऐतिहासिक काव्य में रूढ हो गया हो। कुछ विद्वान् रासो को रासौ, रसडा, रास्सा आदि के साम्य से भी ढूँढकर युद्ध-कथा के अर्थ में उचित समझते है।

रासो की भाषा

रासो की भाषा के सम्बन्ध मे भी विद्वानों का पर्याप्त मतभेद दृष्टि-गत होता है। जैसा ग्रंथ की प्रामाणिकता का प्रश्न है वैसा ही

भाषा का भी। रासो की विषय-वस्तु को देखकर जिस प्रकार यह निर्णय नही हो पाता कि यह बारहवी शताब्दी की रचना है उसी प्रकार यह भी कहना कठिन है कि इसमे उसी शताब्दी को भाषा का प्रयोग है। यदि अन्तिम रूप से यह निर्णय हो जाय कि रासो १७ वी शताब्दी की रचना है तो भाषा की स्थिति का निर्णय कठिन होगा। भाषा-विज्ञान की कसौटी पर भाषा की परख करने से यह किसी एक काल की भाषा प्रतीत नही होती। भाषा की प्रकृति को दृष्टि मे रखकर इसी कारण इसका काल-निर्धारण भी कठिन है। यो रासो का काल यदि तेरहवी शताब्दी माना जाय तो निश्चय ही उसकी भाषा उस काल की न होकर परवर्ती युग की ठहरती है। अपभ्रंश तथा तत्कालीन प्राकृतो के जो रूप साहित्य मे प्रचलित थे उनका शुद्ध रूप रासो म नही है। रासो मे तत्सम शब्दो की प्रधानता के साथ-साथ अपभ्रश, प्राकृत, राजस्थानी, अरबी, सधुक्कडी, फारसी आदि अनेक भाषाओ का सम्मिश्रण मिलता है। स्वय कवि चन्द ने अपनी भाषा को छै भाषाओ की खिचडी कहा है :

'षट् भाषा कुरानं च पुराणं च कथितं मया।'

रासो की भाषा के विषय में मूल प्रश्न यह है कि इसका मूल ढाँचा व्रजवाषा का है या डिंगल भाषा का। कुछ समीक्षक रासो की भाषा को पिंगल—अर्थात् व्रजभाषा का प्राचीन रूप मानते हैं।[1] और कुछ राजस्थानी विद्वान् रासो की भाषा को डिंगल कहते हैं। डिंगल भाषा के विषय में भी विद्वानो में मतैक्य नही है। डॉ० टैसीटैरी के अनुसार डिंगल का अर्थ है—अनियमित (Irregular)। पं० हरप्रसाद शास्त्री के मत में डिंगल शब्द डगलट (मिट्टी का ढेला) से निकला है। जो भाषा मिट्टी के अनगढ़ ढेले के समान हो वह डिंगल है। कुछ लोग ध्वनि-साम्य से डमरू की ध्वनि के समान ध्वनि वाली भाषा को डिंगल कहते है। दूसरे विद्वान् 'डीग मारने वाली' भाषा को डिंगल कहते हैं। राजस्थानी विद्वान् डिंगल का अर्थ दुरूह भाषा करतें है।

१. देखो डॉ० श्यामसुन्दरदास का 'हिन्दी-साहित्य'।

संक्षेप में, रासो की भाषा अपभ्रंश भाषा के अति निकट की डिंगल भाषा का रूप है जिसमें बाद के युग में प्रक्षिप्तांश मिलने से पिंगल, नन्सन अरबी फारसी आदि अनेक रूपों का समवाय हो गया। राजस्थानी भाषा की प्रचुरता भी निस्सन्देह परवर्ती काल का ही परिणाम है। शुक्ल जी ने अपने इतिहास में इस प्रश्न का समाधान इस प्रकार किया है—**"अपभ्रंश के योग से शुद्ध राजस्थानी भाषा का जो साहित्यिक रूप था वही डिंगल कहलाता था।"** भाषा-विज्ञान की कसौटी पर रासो की भाषा शौरसेनी अपभ्रंश और आधुनिक हिन्दी के बीच की कडी है। रासो की भाषा मे तत्कालीन प्रायः सभी प्रचलित भाषाओ के शब्दो का प्रयोग कवि ने किया है। व्याकरण की दृष्टि से डिंगल को ही हम रासो की भाषा कह सकते हैं।

रासो की प्रामाणिकता का विवेचन

आज से कुछ वर्ष पूर्व तक यह ग्रन्थ सर्वथा प्रामाणिक इतिहासिक रचना के रूप मे स्वीकार किया जाता रहा, किन्तु इधर कुछ समय से इसकी प्रामाणिकता व इतिहासिकता के सम्बन्ध मे एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विवाद उठ खडा हुआ है।

श्रीयुत महामहोपाध्याय श्यामलदास व श्रीयुत रायबहादुर महामहोपाध्याय प० गौरीशकर हीराचन्द ओझा-जैसे विख्यात ऐतिहासिक विद्वानो ने अपने अनेक अकाट्य प्रमाणो द्वारा इसे अप्रामाणिक या संदिग्ध सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। ओझाजी के तर्कों का सार इस प्रकार है :

(१) इसमें दिये गए सवत् सर्वथा असत्य है, क्योकि इसमे पृथ्वीराज का जन्म ११११५ मे, दिल्ली मे गोद आना ११२२ मे और कन्नौज पर आक्रमण ११५१ मे तथा शहाबुद्दीन के साथ युद्ध ११५८ मे बताया गया है, किन्तु पृथ्वीराज के चार, जयचन्द के बारह और परमर्दीदेव के ६ प्राप्त शिलालेखो मे पृथ्वीराज का समय सवत् १२२४ से १२५८ तक

का दिया हुआ है, फारसी की तवारीखो (इतिहासो) मे भी शहाबुद्दीन का पृथ्वीराज पर आक्रमण सवत् १२४८ में ही लिखा है।

(२) 'पृथ्वीराज रासो' मे दी गई घटनाएँ भी सर्वथा कपोल-कल्पित तथा असत्य है, क्योकि हाँसी के शिला-लेख और काश्मीरी कवि जयानक-रचित 'पृथ्वीराज-विजय' नामक सस्कृत महाकाव्य के आधार पर कहा जा सकता है कि न तो सोमेश्वर का विवाह दिल्ली के राजा अनगपाल की लड़की से हुआ था और न जयचन्द ही पृथ्वीराज का मौसेरा भाई था। इनका आपस मे किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध न था। साथ ही पृथ्वी-राज का अपने नाना के गोद जाना भी कल्पना-मात्र है। इसके अतिरिक्त आबू के अग्नि-कुण्ड से चार क्षत्रिय-कुलो की उत्पत्ति की कथा भी ऐति-हासिक नही कही जा सकती, क्योकि चोहान, सोलंकी आदि राजपूत अपने-आपको सूर्य या चन्द्रवशी ही कहते है न कि अग्निवशी। शहाबुद्दीन भी पृथ्वीराज के हाथो शब्दबेधी बाण से नही मारा गया था। इसी प्रकार और भो कई अनैतिहासिक घटनाएँ इस ग्रन्थ मे भरी पडी हैं।

(३) इसमे दिये गए व्यक्तियो के नाम भी ठीक नहीं है, क्योकि 'पृथ्वीराजरासो' में पृथ्वीराज की माता का नाम 'कमला देवी' दिया गया है, किन्तु 'पृथ्वीराज-विजय' काव्य तथा शिला-लेखो में उसका नाम 'कर्पूर देवी' मिलता है।

(४) पृथ्वीराज से बहुत समय पश्चात् होने वाले चगेजखाँ, तैमूरलग आदि अनेकों व्यक्तियो के नाम भी इसमे पाये जाते है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर ओझा जी ने 'पृथ्वीराज रासो' को एक सर्वथा अप्रामाणिक सोलहवीं शताब्दी मे रचा हुआ 'भाट भणन्त'-मात्र सिद्ध किया है।

ओझाजी के सिद्धान्तों का खण्डन

इसके विपरीत अनेक विद्वानो ने उक्त युक्तियों का खण्डन करके 'पृथ्वीराज रासो' को प्रामाणिक ठहराने का प्रयत्न किया। इन विद्वानों मे

उदयपुर के मोहनलाल विष्णुलाल पण्डचा, काशी के श्री डॉक्टर श्याम-सुन्दरदास बी० ए० और सोलन के महामहोपाध्याय राजगुरु श्री पं० मथुराप्रसाद जी दीक्षित विशेष उल्लेखनीय है।

मोहनलाल विष्णुलाल पण्डचा ने सवतो के सम्बन्ध में बतलाया कि 'पृथ्वीराज रासो' मे दिये गए सवतो मे सच्चे संवतो से लगभग ९०-९१ वर्षों का अन्तर पडता है, सो ऐसा जान-बूझकर हुआ है, क्योकि :

'एकादस सै पंचदह, विक्रम साक अनंद।
तिहि रिपुजय पुरहरन को भए पृथिराज नरिन्द'॥

उक्त दोहे में 'अनद' शब्द का अर्थ—अ = शून्य, नद = नौ अर्थात् नव्वे (वर्ष कम) किया गया है। किन्तु इस सम्बन्ध मे विचारणीय बात यह है कि—प्रथम तो 'अनद' का अर्थ ९० हो नही सकता, फिर भी यदि 'वादीतोष न्याय' से यह अर्थ मान भी लिया जाय तो भी 'वर्ष' और 'कम' किन शब्दो के अर्थ है ? केवल 'नव्वे' कहने से ही तो कुछ काम नही चल सकता और दूसरी बात यह है कि किसी प्रचलित सवत् मे से नव्वे वर्ष कम क्यो किये जायें ? 'नन्दों' के शूद्र राज्य के नव्वे वर्षों को भाटो ने द्वेषवश अपने सवत् मे से निकाल दिया, यह कहना तो बड़ा ही हास्यास्पद है। क्योकि एक तो आज तक ऐसा कभी हुआ नही, दूसरे नदो का राज्य विक्रम से पूर्व ही समाप्त हो चुका था, इसलिए उसके नव्वे वर्षो को विक्रम-सवत् मे से निकालने की कल्पना सर्वथा अमान्य ही है। साथ ही संवतो के अतिरिक्त अधिकांश घटनाएँ, जो इतिहास-विरुद्ध भरी पडी है उनका कुछ सन्तोषजनक समाधान नही दिया जा सकता। इसी प्रकार डॉक्टर श्यामसुन्दरदास जी ने भी कोई बुद्धिग्राह्य अकाटच तर्क रासो के पक्ष मे उपस्थित नही किया। उनके कथन का सार भी यही है कि महाभारत और पुराणों की भाँति 'पृथ्वीराज रासो' मे भी समय-समय पर बहुत-कुछ प्रक्षेप होता रहा, अत. उसमें नवीन नाम व अनैतिहासिक घटनाएँ आ गई। असली व प्राचीन 'पृथ्वीराज रासो' अवश्य पृथ्वीराज के समय मे बना होगा।

जगनिक—इनका जन्म सवत् १२३० है। ये कालिजर के राजा परमाल के यहाँ भाट थे। इन्होने 'आल्ह खड' की रचना की है, जिसमें महोबा के प्रसिद्ध वीर आल्हा और ऊदल के वीर-चरित का विस्तृत वर्णन है। इनके वीर-गीत आज भी उत्तर भारत मे उत्साह से गाये जाते है। 'आल्ह खड' की भाषा वर्तमान कालिक बैसवारे की है, इसलिए उसे जगनिक-कृत नहीं माना जाता। कुछ विद्वानो का मत है कि जगनिक की वास्तविक कृति 'परमाल रासो' थी, जो अब उपलब्ध नही है। बाद मे उसी के आधार पर 'आल्ह खड' के वीर-गीत बनाये गए। आल्हा का प्रचार देश के अनेक प्रातो मे आज भी है। वर्तमान युग के आल्हा-गीतो पर नवीन युग की छाप तो है पर वे गीत प्राचीन भाषा का स्वरूप प्रस्तुत नही करते। यहाँ हम पहले जगनिक के आल्हा-गीत का एक उदाहरण प्रस्तुत करके बाद में आधुनिक आल्हा-गीत भी प्रस्तुत करेगे। जगनिक के आल्हा-गीत की कुछ पक्तियाँ निम्न है :

मुर्चा लौटो तब नाहर को, आगे बढ़े पिथौरा राय।
नौ सौ हाथिउ के हलका मां, अकले घिरे कनौजी राय ॥
सात लाख से चढ़चो पिथौरा नदी बेतवा के मैदान।
आठ कोस लौं चले सिरोही, नाही सूझै अपुन बिरान ॥

वर्तमान युग के आल्हा-गीत का यह उदाहरण भी पठनीय है :

पटक पादुका पहनो प्यारे, बूट इटाली का लुकदार।
डालो डबल वाच पाकट में, चमके नैन कंचनी चार ॥
रख दो गाँठ गठीली लकुटी, छाता बेंत बगल में यार।
मुरली तोड़ मरोड़ बजाओ, बाँकी बिगुल सुने संसार ॥
वैनतेय तज व्योम-यान पर, करिये चारों ओर विहार।
फक-फक फूं-फूं फूँको चुरटें, उगले गाल धुएँ की धार ॥
यों उत्तम पदवी फटकारो, माधो मिस्टर नाम धराय।
बाँटो पदक नई प्रभुता के, भारत जाति-भक्त हो जाय ॥

(शंकर)

केदार भट्ट (१२२४-१२४२)—जिस प्रकार चन्द ने पृथ्वीराज को कीर्तिमान किया है, उसी प्रकार केदार भट्ट ने कन्नौज-नरेश जयचन्द का यश गाया है। इन्होने 'जयचन्द-जस-चद्रिका' नामक महाकाव्य बनाया है।

अन्य फुटकल रचनाएँ

वीर-प्रशस्ति युग के अन्त मे हमें जनता की बहुत-कुछ असली बोल-चाल और पद्यो की भाषा के वास्तविक रूप का पता चलता है। इस काल के दो कवियों—खुसरो और विद्यापति—की रचनाओ मे हमे इसका आभास मिलता है। पश्चिम की बोल-चाल, गीत, मौखिक पद्य आदि का नमूना अमीर खुसरो की कृति मे मिलता है और पूरब का नमूना विद्यापति की पदावली मे। इसके पश्चात् फिर भक्ति युग के कवियों ने प्रचलित देश-भाषा और साहित्य के बीच पूरा-पूरा सामजस्य स्थापित करके हिन्दी-साहित्य का चरम विकास किया।

खुसरो—ये दिल्ली के रहने वाले थे। इनका रचना-काल स० १३४० के आस-पास माना जाता है। ये फारसी और अरबी के भी बडे विद्वान् थे। इन्होने हिन्दी मे भी कविता की। इनकी पहेलियाँ और मुकरनियाँ बहुत प्रसिद्ध है। सबसे पहले इन्ही की कविता मे शुद्ध खडी बोली का आभास मिलता है। कुछ पहेलियो का नमूना देखिए :

एक थाल मोती से भरा, सबके सर पर औंधा धरा।
चारों ओर वह थाल फिरे, मोती उससे एक न गिरे॥
(आकाश)

आदि कटे से सबको पाले, मध्य कटे से सबको घाले।
अन्त कटे से सबको मीठा, सो खुसरो मै आँखों दीठा॥
(काजल)

इनके शृङ्गार-रस के दोहे और गीत भी देखिए :

खुसरो रैन सुहाग की, जागी पी के संग।
तन मेरो मन पीउ को, दोऊ भरा इक रंग॥

दोहे और गीतों मे ब्रजभाषा का प्रयोग किया गया है :

मोरा जोबना नवेलरा भयो है गुलाल।
कैसे गर दीनी बलम मोरी माल॥
सूनी सेज डरावन लागे, बिरहा अग्नि मोहि डस-डस जाय।

विद्यापति—ये तिरहुत (बिहार) के राजा शिवसिह के राज-कवि थे। इनका रचना-काल स० १४६० के आस-पास माना जाता है। इन्होने हिन्दी के अतिरिक्त अपभ्रश मे भी 'कीर्तिलता' और 'कीर्ति-पताका' नामक दो पुस्तके लिखी। 'विद्यापति की पदावली' एक अत्यन्त मधुर गीति-काव्य है। इस रचना के कारण ही ये 'मैथिल कोकिल' कहलाए। 'पदावली' की रचना शृङ्गारिक काव्य की दृष्टि से की गई है। 'विद्यापति' ने यों तो १४ ग्रथो का प्रणयन किया, किन्तु उनकी कीर्ति को अमर बनाने मे उनकी पदावली ही प्रधान है। 'विद्यापति की पदावली' को देखकर आलोचको ने उनकी भक्ति-भावना को शृङ्गारी भावना से ओत-प्रोत पाया है। जयदेव कवि ने जिस प्रकार सस्कृत के कृष्ण-काव्य को माधुर्य-पूर्ण बनाकर मधुरा-भक्ति का सृजन किया, ठीक उन्ही पद-चिह्नो पर विद्यापति ने भी लोक-भाषा में राधा-कृष्ण की भक्ति प्रस्तुत करके अपने हृदय के मधुरतम भावो को व्यक्त किया। फलत. शृङ्गारमयी प्रवृत्ति की उसमे छाप आ गई। इनके पदों का नमूना नीचे दिया जाता है .

माधव की कहब सुन्दरि रूपे।
कतेक जतन बिहि आनि समारल
देखल नयन सरूपे॥
पल्लवराज चरन-जुग सोभित
गति गजराज क भाने।
कनक-कदलि पर सिंह समारल
ता पर मेरु समाने॥
मेरु उपर दुई कमल फुलायन
नाल बिना रुचि पाई।
मनि-मय हार धार बहु सुरसरि
तओ नहिं कमल सुखाई॥

सरस बसन्त समय भल पावलि, दछिन पवन बह धीरे।
सुमनहु रूप वचन इक भाषिय, मुख से दूरि करु चीरे ॥
तोहर बदन सम चाँद होत नहिं, कैयो जतन बिह केला।
कै बेरि काटि वनावल नव कै, तैपो तुलत नहिं मेला ॥
लोचन तुग्र कमल नहि भय सब, से जग के नहिं जाने।
से फिर जाय लुकैलन्ह जल भएँ, पंकज निज अपमाने ॥

२

भक्ति युग

(सं० १३७५–१७००)

सामान्य परिचय

हिन्दी का वीर-प्रशस्ति युग एक युद्ध-कालीन संघर्षमयी परिस्थितियो का युग था। देश मे अशान्ति और लडाई-झगडे का वातावरण व्याप्त था। किन्तु युद्ध और सघर्ष की तीन शताब्दियो के बाद मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना हो जाने पर राजनैतिक वातावरण में अपेक्षाकृत शान्ति उपस्थित हुई। जनता को शान्ति और सन्तोष की साँस लेने की घडी आई। उधर राजपूत राजाओ की शक्ति भी क्षीण हो चुकी थी; उनकी वीरता की गाथाएँ गाने का समय समाप्त हो चुका था। परस्पर लड़ने वाले स्वतन्त्र राज्य भी अब नही रह गए थे। विदेशी शासन की स्थापना के कारण हिन्दुओं के ऊपर एक आतंक और निराशा का साम्राज्य छा गया था। मुसलमान शासक उन पर मनमाना अत्याचार करते थे। उनके सामने उनके देव-मन्दिर गिराए जाते, मूर्तियाँ तोड़ी जाती, और पूज्य-पुरुषो का अपमान होता था। वे विवश थे, असमर्थ थे और एकदम निराश थे। इस भीषण राजनैतिक परिवर्तन से हिन्दू जाति पर बहुत दिनों तक उदासीनता छाई रही। हिन्दू जाति विषण्ण भाव से भक्ति का अवलम्बन लेने के सिवा और कुछ आश्रय न खोज सकी। अपने गौरव से हताश जनता ने भगवान् का सहारा लिया। वही तो है निर्बल का बल। इसके अतिरिक्त संतप्त हिन्दू जनता और कर भी क्या सकती थी?

हिन्दू जाति में भक्ति-भावना का चिर अनादि से प्राधान्य रहा है, अत. उसी भक्ति को इस संकट-वेला में भी अपना अवलम्ब बनाकर हिन्दुओं ने भगवान् का स्मरण प्रारम्भ किया।

इस राजनैतिक परिवर्तन ने जनता का ध्यान भक्ति की ओर आकर्षित करने के साथ-साथ भक्त कवियो को भी जन्म दिया। अथवा यों कहिए कि वीर-प्रशस्ति युग के वीर महात्माओं ने भक्त महात्माओ के रूप में ही जैसे अवतार लिया हो। इन भक्त कवियों ने दुखी जनता को धैर्य देकर उसे सुख-शान्ति का भक्ति का मार्ग दिखाया। भक्ति के इस आन्दोलन मे कुछ ईश्वर-भक्त मुसलमानो ने भी योग दिया। इन लोगों का उद्देश्य भक्ति-मार्ग द्वारा हिन्दू-मुसलमानो के बीच उत्पन्न हुई वैमनस्य-भावना को दूर करना था। भक्ति का यह आन्दोलन विभिन्न धाराओं के रूप मे प्रारम्भ हुआ। दक्षिण मे स्वामी माधवाचार्य (स० १२४५-१३२३) ने अपना द्वैतवादी वैष्णव सम्प्रदाय चलाया। उधर पूर्व भाग में जयदेव जी कृष्ण-प्रेम की धारा बहा रहे थे। उत्तर में स्वामी [illegible] के अनुयायी स्वामी रामानन्द जी रामोपासना पर जोर दे रहे थे। दूसरी ओर श्री वल्लभाचार्य ने कृष्णोपासना मे जनता को रसमग्न कर दिया। इस प्रकार रामोपासक एवं कृष्णोपासक वैष्णव सम्प्रदायो की भक्ति-क्षेत्र में नीव पडी। ये भक्त कवि राम और कृष्ण के सगुण रूप की उपासना मे विश्वास करते थे, अत. ये सभी सगुणोपासक कहलाते है।

यह तो हुई सगुणोपासना की बात। दूसरी ओर निर्गुणोपासना का क्षेत्र तैयार हो रहा था। वीर-प्रशस्ति युग से ही वज्रयानी सिद्ध और कापालिक आदि देश के पूर्वी भागो मे और नागपंथी जोगी पश्चिमी भाग मे अपना प्रचार कर रहे थे। इन लोगो मे जाति-पाँति का भेद-भाव न होने के कारण विद्वान् अनुयायियो का अभाव था। ये अपनी सिद्धियों और रहस्यमयी वाणियो द्वारा साधारण जनता पर मोहक प्रभाव डालने में समर्थ थे। इन लोगो का कहना था कि अर्थ-शून्य बाह्य विधि-विधान,

पूजा-पाठ, तीर्थाटन, पर्व-स्नान आदि सब व्यर्थ है तथा अन्त. साधना से सर्व व्यापक परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है। आगे चलकर कबीर पर इन्ही लोगो का प्रभाव पडा। औपचारिक बाह्य साधना-पद्धति की अवहेलना करके शुद्ध ज्ञान पर इन्होने बल दिया। अत इस सम्प्रदाय को हम ज्ञानाश्रयी सम्प्रदाय कह सकते है। ज्ञान द्वारा ईश्वर-प्राप्ति इस सम्प्रदाय का उद्देश्य था।

निर्गुणोपासना की एक दूसरी धारा भी चली। इन योगियों के साधना मार्ग मे रागात्मक भक्ति-भावो का अभाव था, इसलिए य निराश जनता की चित्त-वृत्ति को आकर्षित नही कर सकते थे। इसी समय महाराष्ट्र के एक प्रमुख भक्त नामदेव ने हिन्दू और मुसलमान दोनो के लिए ईश्वर-भक्ति का एक सामान्य मार्ग खोजा—प्रेम द्वारा निराकार ईश्वर की प्राप्ति। सूफी मत के मुसलमान भक्त भी इसी प्रेम-मार्ग के अनुयायी थे। सूफी सम्प्रदाय मे प्रेम द्वारा ईश्वर-प्राप्ति का वर्णन उसी प्रकार किया गया है जिस प्रकार सासारिक प्रेम का वर्णन किया जाता है, अत सूफी भक्त निर्गुण धारा के प्रेम-मार्गी भक्त कवि है। ये ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी निर्गुण मार्ग एकेश्वरवाद की नीव पर खड़े हुए थे। सगुणोपासक भक्त ईश्वर को साकार मानकर उसकी भक्ति करते थे। इस प्रकार भक्ति की दो धाराएँ इन चार शाखाओ मे एक साथ प्रवाहित हुईं—

१—निर्गुण धारा—(ज्ञानमार्गी और प्रेममार्गी)।
२—सगुण धारा—(रामोपासक और कृष्णोपासक)।

निर्गुण धारा : ज्ञानमार्गी

गोरखनाथ- ये नाथ पथियो मे बडे प्रसिद्ध सिद्ध हुए है। इनके उपदेश तात्कालिक हिन्दी-गद्य मे ही है, साथ ही इन्होने कुछ पद्य भी लिखे है। गोरखनाथ जी खडी बोली के प्रथम लेखक थे। इन्होने ४० के लगभग ग्रन्थ लिखे है। गोरखनाथ की रचनाओ का समय १४०७ के

लगभग माना जाता है। इनका 'सिष्ट-प्रमाण' खडी बोली गद्य का प्रथम ग्रन्थ था। इनकी भाषा का नमूना नीचे दिया जाता है—

"श्री गुरु परमानन्द तिनको दंडवत है। है कैसे वे परमानन्द, आनन्दसरूप है शरीर जिन्हके नित्य गाये ते चेतन्नि अरु आनन्दभाव होतु है। ......स्वामी तुम्ह सतगुरु, अम्ह तो सिय। सबद एक पूछिबा, दया करि कहिबा, मनि न करब रोष।"

कबीरदास—निर्गुण धारा की ज्ञानमार्गी शाखा के प्रतिनिधि कवि कबीर अपनी नूतन साधना-पद्धति और क्रान्तिकारी विचार-धारा के कारण मध्य युग के सबसे अधिक प्रखर प्रतिभा वाले विचारक, तत्त्ववेत्ता, सुधारक और पथ-प्रदर्शक व्यक्ति है। इनका जन्म सवत् १४५६ मे और मृत्यु १५७५ मे हुई। इनके जन्म के सम्बन्ध मे किवदन्ती है कि ये एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से महात्मा रामानन्द के आशीर्वाद के फलस्वरूप उत्पन्न हुए थे। लोक-लाजवश माता ने शिशु को एक तालाब के किनारे फेक दिया। दैवात् नीरू नाम का जुलाहा अपनी स्त्री सहित उधर आ निकला तथा वह इन्हे उठाकर घर ले गया और उसने इनका पालन-पोषण करके बडा किया।

बाल्य-काल से ही ये विरक्त थे। बचपन मे ही इनके मन में राम-नाम के प्रति प्रेम का अंकुर उत्पन्न हो गया था। बडे होने पर इन्होंने रामानन्द जी को अपना गुरू बनाकर उनसे ही राम-नाम का मन्त्र लिया, जो इनके जीवन की निधि हो गई। कबीर कोरे अनपढ थे, किसी पाठशाला मे बैठकर कबीर ने अक्षराभ्यास तक भी नही किया था। पढने-लिखने को वे जीवन की चरम सफलता के लिए आवश्यक भी नही समझते थे—अपने अशिक्षित होने के विषय में उन्होने स्वय लिखा है—**"मसि कागद छूई नहीं, कलम गही नहि हाथ।"** किन्तु अक्षराभ्यास के बिना भी वे पूरे ज्ञानी और तत्त्व-दर्शी थे। इस तत्त्व-ज्ञान का कारण उनका 'बहुश्रुत' होना था। साधुओ की सगति से इन्होने अपार ज्ञान सचय कर लिया और हिन्दू-मुसलमानो को सामान्य रूप से उपदेश देने

में आजीवन संलग्न रहे। बहुत से लोग इनकी मृत्यु के बाद इनके अनुयायी हो गए, जो 'कबीर-पथी' कहलाए।

कबीर जाति-पॉति और रूढिवाद के कट्टर विरोधी थे। इन्होने हिन्दू और मुसलमान दोनो को उनकी संकीर्णता पर खूब फटकारा ह। इन्होने मूर्ति-पूजा, मिथ्या आडम्बर और छूत-छात का जोरदार खण्डन किया था। मूर्ति-पूजा के लिए इन्होने कहा है :

कबिरा दुनिया बावरी, पाथर पूजन जाय।
घर की चाकी कोई न पूजै, जाका पीसा खाय॥

कबीर की दृष्टि मे [illegible]ग का भेद-भाव न था, वे मानव-मात्र की एकता मे विश्वास करते थे और उसको दृष्टि मे रखकर वे अपने मन्तव्यो को जनता के सामने रखते थे। इसको ध्यान में रखकर ही उन्होने एकेश्वरवाद का उपदेश दिया :

एक निरंजन अल्लह मेरा।
हिन्दू तुरक दोउ नहिं तेरा॥
राखूँ बरत न मुहरम जाना।
तिस ही सुमिरौ जो रहे निदाना॥

कही वे पण्डित को ललकारते नजर आते है तो कही मुल्लाओ पर गरम होते है ·

पॉडे कौन कुमति तोहि लागी।
तू राम न जपहि अभागी॥

कबीर स्पष्टवक्ता थे, इसलिए उनसे पण्डित और मुल्ला सभी नाराज़ थे। इसका यह अर्थ नही है कि उनके हृदय में प्रेम की भावना नही थी। वे भावुक भी थे। अपने दोहों मे उन्होने प्रेम के सूक्ष्म तत्त्वों का मार्मिक वर्णन भी किया है :

प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देय ले जाय॥

ईश्वर, जीव और ससार के रहस्यो का उद्घाटन करने के लिए कबीर

ने बाह्य साधना का प्रचार नही किया, किन्तु आभ्यन्तर साधना और आचरण की पवित्रता पर जोर देकर उन्होने आत्म-तत्त्व के रहस्य को सुलझाने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया। इस प्रयत्न में ईश्वरीय तत्त्वो का जो बोध हुआ वह इनकी अटपटी वाणी से अभिव्यक्त होकर जनता तक आया, किन्तु वह वाणी ऐसी विशृङ्खल तथा अस्पष्ट थी कि उसमें अभिव्यंग्य का बोध सरलता से नही होता था। यथार्थ में जब मानव अपने सीमित ज्ञान के आधार पर उस असीम, अगोचर तथा सर्वशक्तिमान् का वर्णन करता है तो उसकी यही दशा हो जाती है। उस वाणी को ही रहस्यमयी वाणी कहने लगते है। परमात्मा की उस अनुभूति को मानव अपनी स्थूल वाणी से कह ही नही सकता—वह तो गूँगे का गुड़ हो जाती है।

कबीर की वाणी में रहस्यवाद का पुट भी मिलता है :

लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मै गई, मै भी हो गई लाल॥
सपने में प्रीतम मिले, सोता लिया जगाय।
आँख न खोलूँ डरपता, मत सपना ह्वै जाय॥

कबीर की वाणी 'बीजक' नामक ग्रन्थ मे सगृहीत है। इसके तीन भाग है—सब्द, साखी और रमैनी। इनकी भाषा में खड़ी बोली, अवधी, पूर्वी आदि कई भाषाओं का सम्मिश्रण है। कही-कही ब्रजभाषा का भी समावेश है। कबीर की रचनाएँ साहित्यिक दृष्टि से ऊँची नही है। फिर भी उनमे भावपक्ष की प्रधानता है। इनकी कविता का चमत्कार काव्य के ऊपरी नियमों मे नही, वरन् इनकी हृदय की सचाई और तीव्र अनुभूति मे निहित है। ईश्वरीय सम्बन्ध की रहस्यमयता को इन्होंने बड़ी सूक्ष्मता से व्यक्त कर दिखाया है।

कबीर की मृत्यु सं० १५७५ में मगहर में हुई। इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि इन्होने जान-बूझकर काशी में मरना उचित नही समझा और मगहर चले गए, क्योकि वहाँ मरने से नरक मिलता है।

वे मरते समय तक अंध-विश्वासो को चुनौती देते रहे और उन पर सक्रिय चोट भी करते रहे। उनकी मृत्यु के सम्बन्ध मे यह दोहा प्रचलित है .

पन्द्रह सौ पिचहत्तरैं, कियो मगहर को गौन।
ज्येष्ठ सुदी एकादशी, मिली पौन मे पौन॥

रैदास—ये जाति के चमार थे और रामानन्दजी के शिष्यो मे थे। **'कह रैदास खलास चमारा'**। इनको मीराबाई का गुरु कहा जाता है। इनकी वाणी 'गुरु ग्रन्थ साहब' मे सगृहीत है। कबीर की भाँति इनका भी सम्प्रदाय है। इनकी कविता का नमूना देखिये .

प्रभु जी तुम चन्दन हम पानी, जाकी अँग-अँग बास समानी।
प्रभु जी तुम वन-घन हम मोरा, जैसे चितवत चंद चकोरा॥
प्रभु जी तुम माली हम बागा, जैसे सोनहिं मिलत सुहागा।
प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भक्ति करै 'रैदासा'॥

धर्मदास—ये जाति के वैश्य थे। बचपन से ही इनकी प्रवृत्ति भक्ति की ओर थी। बाद मे ये कबीरदास के शिष्य हो गए। उनकी मृत्यु के पश्चात् ये ही उनकी गद्दी के अधिकारी हुए। कबीर की साधना-पद्धति को धर्मदास ने अपनी रचनाओ तथा पन्थ द्वारा पर्याप्त प्रोत्साहन दिया। इन्होंने अनेक पद रचे है। इनकी रचनाओ पर कबीर की ऐसी गहरी छाप है कि दोनों को पृथक्-पृथक् करके देखना कहीं-कही कठिन हो जाता है। उनका निम्न पद इसका ज्वलन्त उदाहरण है :

झरि लागे महलिया गगन घहराय।
खन गरजै, खन बिजुली चमकै, लहरि उठै सोभा बरनि जाय।
सुन्न महल से अमृत बरसै, प्रेम आनन्द ह्वै साधु नहाय॥
खुली किवरिया मिटी अँधरिया, धन सतगुरु जिन दिया लखाय।
'धरमदास' बिनवै कर जोरी, सतगुरु चरन मे रहत समाय॥

गुरु नानक—इनका जन्म स० १५२६ मे लाहौर जिले के अन्तर्गत तलवण्डी नामक ग्राम मे हुआ था। इनके पिता का नाम कालूराम था और

वे जाति के खत्री थे। ये बचपन से ही विरक्त थे और अपना अधिकाश समय भगवद्भजन तथा साधुओ की सगति में बिताते थे। बाद मे ये घर-बार छोडकर साधु हो गए। गुरु नानक ने भी एक पंथ चलाया, जो 'सिख-सम्प्रदाय' के नाम से प्रसिद्ध है। कबीर के बाद सम्प्रदाय-प्रवर्तन मे गुरु नानक का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। नानक संत-साधना के अन्तर्गत अपना विशिष्ट स्थान इसलिए भी रखते है कि आपकी शिष्य-परम्परा मे जो दस गुरु हुए उन्होने भोग-विलास को तिलांजलि देकर भारतीय गौरव की रक्षा के लिए विदेशी शासको से लोहा लिया और अपने शौर्य-पराक्रम का अच्छा परिचय दिया। गुरु नानक ने देशाटन द्वारा अपनी वैराग्य-भावना की धाक दूर-दूर तक जमाई थी। नानक कवि नही साधक थे, अत काव्य के अभाव मे भी उनकी वाणी मे आत्म-तेज है। इनकी मृत्यु सवत् १५९६ मे हुई। इनके दो दोहे नीचे दिये जाते है

हिरदे जिनके हरि बसे, से जन कहियहि सूर।
कही न जाई 'नानका', पूरि रह्या भरपूर॥
मन की दुविधा ना मिटै, मुक्ति कहाँ ते होय।
कउड़ी बदले 'नानका', जन्म चल्या नर खोय॥

दादूदयाल—इनका जन्म गुजरात के अन्तर्गत अहमदाबाद मे हुआ था। कबीर की भाँति इनके नाम से भी 'दादू पथ' प्रचलित है। दादू-पन्थी निराकार के उपासक है और 'सत्तनाम' कहकर अभिवादन करते है। दादू की वाणी हिन्दी के अतिरिक्त राजस्थानी, गुजराती और पजाबी मे भी पाई जाती है। इनकी भाषा पश्चिमी हिन्दी है, जिसमे राजस्थानी का अच्छा पुट है। इन्होने कबीर की तरह खडन-मडन नही किया प्रत्युत सीधी-सादी वाणी मे अपनी बात जनता से कहते रहे। इनकी रचना का उदाहरण देखिए

छवि दूध मे रम रहा, व्यापक सब ही ठौर।
दादू बकता बहुत है, मथि काढ़ें ते और॥

दादू दीया है भला, दिया करो सब कोय।
घर मे धरा न माहरा, जो कर दिया न होय ॥

सुन्दरदास—इनका जन्म स० १६५३ मे जयपुर राज्य के अन्तर्गत दौसा नगर में हुआ था। ये जाति के खंडेलवाल वैश्य थे। इन पर दादू-दयाल का बहुत प्रभाव पडा था। सुन्दरदास अन्य सत कवियों की भाँति अनपढ़ नही थे। ये काव्य-रीति से भी परिचित थे। 'सुन्दर विलास' इनका प्रसिद्ध ग्रंथ है। इनकी रचनाएँ साहित्यिक और सरस है। इनकी रचनाओ मे चमत्कार और अनुप्रास आदि अलंकार भी मिलते है। इन्होने 'चित्र-काव्य', 'छत्र-प्रबन्ध', 'कमल-प्रबन्ध' तथा 'नाग-बन्ध' आदि ग्रन्थ लिखे है, जो इनके काव्य-रीति से अभिज्ञ होने के निदर्शन है। इनकी रचना का नमूना नीचे दिया जाता है :

पुरुष प्रकृति संयोग, जगत उपजत है ऐसे।
रवि-दर्पण दृष्टान्त अग्नि उपजत है वैसे।
सुई होय चैतन्य यथा चुम्बक के संगा।
यथा पवन संयोग उदधि मे उठइ तरंगा॥
अरु यथा सूर संयोग पुनि, चक्षु रूप को गहत है।
यों जड़ चेतन सयोग से, सृष्टि उपजती रहत है ॥

मलूकदास—ये इलाहाबाद जिले के कड़ा नामक ग्राम के निवासी थे। अन्य सन्त कवियों की अपेक्षा इनकी भाषा शुद्ध और सुसंस्कृत थी। इन्हें भी छन्दो का ज्ञान था। इन्होने 'रत्न खान' और 'ज्ञान बोध' नामक दो पुस्तकें लिखी है। आलसियो तथा अहदियों के सम्बन्ध मे इनका यह दोहा बड़ा प्रसिद्ध है :

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास 'मलूका' यूँ कहें, सबके दाता राम ॥

अक्षर अनन्य—इनका जन्म संवत् १७१० के आस-पास बताया जाता है। ये दतिया रियासत के अंतर्गत सेनुहरा ग्राम के कायस्थ थे। कुछ दिनों तक ये दतिया के राजा पृथ्वीचन्द के दीवान रहे, फिरविरक्त

होकर चले गए। महाराजा छत्रसाल ने इन्ही से दीक्षा ली थी। इन्होने योग और वेदान्त पर कई ग्रन्थ लिखे है, जिनमे 'राज योग','विज्ञान योग', 'ध्यान योग','सिद्धान्त बोध' और 'ब्रह्म ज्ञान' उल्लेखनीय है। इन्होने 'दुर्गा सप्तशती' का पद्य में अनुवाद भी किया है। सन्त कवियो मे अक्षर अनन्य अपनी विद्वत्ता और शास्त्र-ज्ञान के लिए प्रसिद्ध है। काव्य-रीति से परिचित होने की अपेक्षा आप शास्त्रो से अधिक परिचित थे।

इनके अतिरिक्त ज्ञानमार्गी शाखा में जगजीवन साहब, पलटूदास, तोंबरदास, तुलसी साहब, भीखा साहब आदि अनेक सन्त हुए हैं। इनमे से कोई वेदान्त का, कोई साधना-तत्त्व का और कोई प्रेम-तत्त्व का अनुयायी हुआ। यद्यपि साहित्यिक दृष्टि मे इन सन्त कवियो की रचनाओ का कोई महत्त्व नही है तथापि हिन्दू-मुस्लिम-सांस्कृतिक-सघर्ष काल मे इनकी शान्तिमयी वाणी ने सबको प्रेम से प्लावित किया। निम्न श्रेणी की जनता पर इनका अधिक प्रभाव पड़ा। इनके द्वारा दलित जातियो के जीवन मे उत्साह और शक्ति का संचार हुआ। इस दृष्टि से इन सन्त कवियों का हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे अपना विशिष्ट स्थान है। सन्त कवियों की परम्परा का विश्लेषण करते समय हमें यह अवश्य ध्यान मे रखना चाहिए कि ये सन्त कवि काव्य-रचना में लीन होकर उपदेश और साधना में लीन रहते थे। इनका उद्देश्य काव्य-साधना नही था। अतः काव्य-शास्त्र की कसौटी पर इनकी कृतियाँ भले ही प्रथम श्रेणी की सिद्ध न हों, किन्तु भावना और भक्ति की कसौटी पर वे प्रथम श्रेणी की ही है।

सूफी मत : प्रेममार्गी

सूफी मत का प्रचलन मुहम्मद साहब से प्रायः दो सौ वर्ष बाद हुआ। सूफी शब्द का अर्थ है ज्ञानी। सूफी लोग पीर (गुरु) को अधिक मानते है। ये ईश्वर और जीव मे प्रेम का सम्बन्ध मानते है। सूफी फकीर संगीत के प्रेमी होते है। सूफी शब्द से श्वेत या सफेद का भी आभास

मिलता है, यह भी इस बात का द्योतक है कि सफेद ऊन के शुभ्र वसन धारण करके सूफी फकीर अपने अन्त करण की शुभ्रता का बाह्य परि-धान मे भी परिचय देना चाहते है। जिस प्रकार उनका बाह्य वेश सफेद और स्वच्छ है वैसे ही उनका अन्तःकरण भी स्वच्छ और दोष-रहित निर्मल है। इनमे अन्य मुसलमानो की भाँति कट्टरता नही। भारत मे सूफी कवियो की रचनाओ मे ईश्वरीय प्रेम का वर्णन होता है। जिसका बाह्य रूप लौकिक प्रेम के रूप मे आभासित होता है। इनकी शैली फारसी की मसनबियो के ढग की होती है। नीचे कुछ सूफी कवियो का उल्लेख किया जाता है—

शेख कुनबन—इनका समय सवत् १५५० के समीप माना जाता है। ये चिश्ती वंश के शेख बुरहान के शिष्य थे। इन्होने संवत् १५५८ मे 'मृगावती' काव्य की रचना की। इसमे चन्द्रनगर के राजा गणपतिदेव के राजकुमार और कचनपुर की राजकुमारी की प्रेम-कथा का वर्णन है। कथा के बीच-बीच मे प्रेम-मार्ग की कठिनाइयो का अच्छा चित्रण किया है। कई स्थानो मे रहस्यवाद की झाँकी मिलती है। इसकी भाषा अवधी है।

मंझन—इनका रचना-काल सं०१५५० से १५९५ तक माना गया है। इन्होने 'मधु मालती' नामक आख्यान-काव्य लिखा है। इसमे कनेसर नगर के राजा सूरजभान के पुत्र मनोहर का महारस नगरी की राजकुमारी मधुमालती के साथ पारस्परिक प्रेम और वियोग का वर्णन है। यह काव्य बडा सुन्दर और सरल है। इसकी भाषा जायसी के 'पद्-मावत'-जैसी है। इसमें विरह-वर्णन का अच्छा ढग है :

रतन कि सागर सागरहिं, गज मोती गज कोइ।
चन्दन वन-वन ऊपजै, विरह के तन-तन होइ॥

मालिक मोहम्मद जायसी—प्रेममार्गी कवियो में इनका सबसे उच्च स्थान है। इनके जन्म-सवत् का ठीक-ठीक पता नही चलता। ये प्रसिद्ध सूफी फकीर शेख मुहीउद्दीन के शिष्य थे और जायस में रहते थे।

'पद्मावत' में इन्होने स्वयं बताया है :

> **जायस नगर धरम अस्थानू ।**
> **जहाँ कीन्ह कवि कथा बखानू ॥**

'पद्मावत' इनका महाकाव्य है, जिसका रचना-काल सं० १५५७ है। 'पद्मावत' मे चित्तौड़ के राजा रतनसेन और सिहल द्वीप की राज-कन्या पद्मावती की प्रेम-गाथा का विस्तृत वर्णन है । यह प्रेममार्गी गाथाओ मे सबसे श्रेष्ठ काव्य माना जाता है । इसमे विरह-वियोग का बड़ा मार्मिक वर्णन है :

> **नहिं पावस उहि देसड़ा, नहिं हेमन्त बसन्त ।**
> **नहिं कोयल न पपीहड़ा, जेहि सुन आवै कन्त ॥**

'पद्मावत' का विषय आध्यात्मिक है, किन्तु इसे सूफियो की शैली के अनुसार लौकिक प्रेम-गाथा के रूप मे लिखा गया है । इस रहस्य का वर्णन अन्त मे मिलता है :

> **तन चित उर मन राजा कीन्हा ।**
> **हिय सिहल बुधि पद्मिनी चीन्हा ॥**
> **गुरु सूआ जेहि पन्थ दिखावा ।**
> **बिन गुरु जगत का निरगुन पावा ॥**
> **नागमती यह दुनिया धन्धा ।**
> **बाँचा सोइ न एहि चित बन्धा ॥**
> **राघव दूत सोइ सैतानू ।**
> **माया अलाउदीन सुलतानू ॥**

प्रेममार्गी सूफी शाखा के कवियो मे जायसी का स्थान प्रवन्ध-काव्य की रचना करने के कारण बहुत प्रसिद्ध है । प्रबन्ध-काव्य के लिए जिन तत्त्वो की अनिवार्य आवश्यकता होती है वे सभी गुण जायसी के 'पद्मावत' में उपलब्ध होते है । कथानक के साथ समासोक्ति-पद्धति को स्वीकार करके कवि ने अपनी सूझ-बूझ का अच्छा परिचय दिया है । महाकाव्य के लिए आवश्यक ऋतु-वर्णन, बारहमासा, नख-शिख, संयोग-

वियोग, शृङ्गार, प्रकृति के आलम्बन तथा उद्दीपन पर रूपों का वर्णन 'पद्मावत' में प्रचुर परिमाण मे मिलता है। कवि का ध्यान हृदय के रागात्मक सम्बन्धो की ओर भी पूर्ण रूप से रहा है और उसने मनुष्य-जीवन के उन सभी पहलुओ पर ध्यान दिया है जो प्रबन्ध-काव्य को सर्वांगपूर्ण बनाने के साथ-साथ कथानक को भी चमत्कारपूर्ण बनाने मे सफल होते है।

उसमान—ये गाजीपुर के निवासी थे। इनके पिता का नाम शेख हुसैन था। ये शाह निजामुद्दीन चिश्ती की शिष्य-परम्परा मे बाबा हाजी के शिष्य थे। इनका उपनाम 'मान' था। इन्होंने १६७० में 'चित्रावली' की रचना की। इसमे नेपाल के राजकुमार धरनीधर का चित्रावली के साथ विवाह का वर्णन है। इनकी भाषा 'पद्मावत' से [illegible] है।

शेख नबी—ये मऊ जिला जौनपुर के निवासी थे। इन्होने स० १६७६ में 'ज्ञान दीप' नामक आख्यान-काव्य की रचना की। इसमे राजा ज्ञानदीप और रानी देतजानी की कथा है।

नूर मोहम्मद—ये जौनपुर और आजमगढ की सीमा पर स्थित सबरहद नामक स्थान के रहने वाले थे। इन्होने स० १८०१ में 'इन्द्रावती' नामक आख्यान-काव्य लिखा है, जिसमें कालिजर के रामकुमार राज-कुँवर और आगमपुर की राजकुमारी इन्द्रावती की प्रेम-कथा है।

सगुण-धारा : राम-भक्ति

हमारे देश मे ईश्वरोपलिब्ध अथवा मोक्ष-प्राप्ति के तीन मार्ग आदि-काल से प्रचलित है—भक्ति, ज्ञान और कर्म। इन तीनो मे भक्ति-मार्ग सबसे अधिक आकर्षक और मानव-प्रकृति के अनुकूल है। ज्ञान-मार्ग की नीरस और कठिन साधनाओ को प्रत्येक मनुष्य नही कर सकता। कर्म-मार्ग का तो निर्णय करना भी कठिन कहा गया है। भक्ति-मार्ग एक प्रेम का मार्ग है, इसलिए वह अधिक लोकप्रिय हुआ। भक्ति-मार्ग के प्रवर्त्तक स्वामी रामानुजाचार्य थे, जिनका जन्म स० १०७३ बताया जाता

है। उन्होंने संसार की सत्यता स्थापित करके विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय चलाया और रामानुजाचार्य ने अपनी उद्देश्य-पूर्ति करते हुए 'ब्रह्मसूत्र' पर 'श्रीभाष्य' लिखा और जगत् की सत्यता और ईश्वर की सगुणता का पाण्डित्यपूर्ण प्रतिपादन किया। उन्होंने ज्ञान और कर्म की अपेक्षा भक्ति-मार्ग पर अधिक जोर दिया। दक्षिण मे रामानुजाचार्य की भक्ति-परम्परा का अच्छा प्रचार हुआ।

श्री रामानुजाचार्य बड़ी उदार प्रकृति के मानव थे। वे शूद्रों का भी आदर करते थे, किन्तु फिर भी उसके सिद्धान्त वर्णाश्रम धर्म के पोषक श्री रामानुज की शिष्य-परम्परा मे सम्वत् १३५६ मे स्वामी रामानन्द का जन्म हुआ। इन्होंने जाति-पाँति का भेद-भाव मिटाकर भक्ति का द्वार सबके लिए खोल दिया। कबीर तथा रैदास आदि अछूतो को भी वैष्णव धर्म आश्रय दिया। उनकी परम्परा मे कबीर-जैसे निर्गुणवादी सन्त और तुलसी-जैसे सगुणवादी भक्त सम्मिलित है। रामानन्द ने लोगो को राम-नाम का पाठ पढाया, उन्होने नारायण के स्थान पर राम को प्रतिष्ठित किया। रामानन्द की शिष्य-परम्परा में ही गोस्वामी तुलसी-दासजी आते है जो राम-भक्ति को सगुण भक्ति के क्षेत्र में सर्वाधिक व्यापक बना सके।

भक्त कवियों की विशेषताएँ

भक्त कवि विष्णु भगवान् के सगुण और साकार रूप के उपासक थे। रामकृष्णादि को विष्णु का अवतार मानकर उन्हे ब्रह्म से भी अधिक प्रधानता देते थे। अपने इष्टदेव का गुण-गान करना उनका परम कर्त्तव्य था। वे कथा-कीर्तन द्वारा भी अपने स्वामी को रिझाते थे। इसमे उनके हृदय का उल्लास और आत्म-निवेदन भी सम्मिलित रहता था। इन्होने अपने कर्मो और गुणो की अपेक्षा भगवान् की कृपा को अधिक महत्ता दी थी।

भक्त कवि-कविता को अभिव्यक्ति का साधन-मात्र मानते थे और

उन्होंने उसको कभी साध्य नही माना। इन्होने श्रृङ्गारयुगीन कवियों की भाँति कविता और कला को मुख्यता नही दी। वे जो कुछ लिखते थे, 'स्वान्तः सुखाय' अथवा 'लोकहितार्थं' लिखते थे। इन्होने आश्रय की परवाह नही की। श्रृङ्गारयुगीन कवियो की भाँति ये दरबारी कवि नही थे, अपितु जनता के कवि थे।

भक्त कवियो की सगुण भक्ति ने प्रचार द्वारा ईश्वर और मानव के बीच जो दूरी है उसे पाटने का सरल मार्ग खोज निकाला। इन भक्तो की दृष्टि मे ईश्वर की सत्ता का अनुभव हम इसी लोक मे उसके अवतारी रूप मे कर सकते है। राम और कृष्ण के अवतार मे भक्ति-कवियो ने विष्णु के दिव्य स्वरूप की झाँकी प्रस्तुत करके जन-साधारण के लिए ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग को सुगम और सुलभ बनाया।

भक्ति के क्षेत्र मे प्रेम और माधुर्य के सम्मिश्रण से भक्ति की जटिलता और ज्ञान-मार्ग की दुरूहता दूर हुई और मानव-मात्र के लिए भगवत्-भक्ति का पथ प्रशस्त हुआ। साथ ही जनता ने भगवान् को अपने दु ख का साथी और सहायक अनुभव करके एक प्रकार से शान्ति और सुख की साँस ली।

भक्त कवियो मे आत्म-निर्भरता पूर्ण रूप से व्याप्त थी, वे किसी राजा या नवाब की सेवा मे पारितोषिक-प्राप्ति के लिए कवित्त-सवैये पढने नही जाते थे, अत उनकी वाणी मे तेज और ओज का होना सहज स्वाभाविक है। इन भक्त कवियो की ऊर्जस्वित वाणी का ही यह प्रभाव है कि आज हिन्दी-भाषा और साहित्य की चर्चा करते हुए हमे गौरव और अभिमान का अनुभव होता है। सूर, कबीर और तुलसी की कला को हम काव्य, साहित्य, दर्शन, धर्म और अध्यात्म सभी क्षेत्रो की सर्व श्रेष्ठ-कला कहकर परितुष्ट हो सकते है। यथार्थ मे यह भक्ति युग ही हिन्दी-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ या स्वर्णिम काल है। इसके बाद तो श्रृङ्गार और विनोद के लिए कवियो ने रचना करना स्वीकार कर लिया था। नीचे कुछ प्रमुख भक्त कवियों का उल्लेख किया जाता है :

गोस्वामी तुलसीदास—तुलसीदास के जन्म-संवत् एव स्थान के विषय में अभी तक पर्याप्त मतभेद है। डॉ० ग्रियर्सन तथा प० रामगुलाम द्विवेदी आदि ने इनका जन्म स० १५८९ माना है। परन्तु वेणीमाधव-कृत 'गोसाई-चरित्र' के अनुसार उनका जन्म स० १५५४ माना जाता है

पंद्रह सै चौवन विषै, कालिंदी के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी धरयो सरीर॥

इनके जन्म-स्थान के विषय मे भी बहुत मतभेद है। कोई कहता है कि इनका जन्म राजापुर मे हुआ था, कोई चित्रकूट के पास हाजीपुर को इनका जन्म-स्थान बताता है। किसी ने यह स्थान शूकर क्षेत्र अर्थात् सोरो बताया है। फिर भी बहुमत के अनुसार इनका जन्म-स्थान राजापुर ही माना जाता है। ये सरयूपारीण ब्राह्मण थे, इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। जनश्रुति के अनुसार ये अमागलिक घडी मे पैदा हुए, इसलिए माता-पिता ने इन्हे त्याग दिया था, तब मुनिया नाम की दासी ने इनका पालन-पोषण किया। पाँच वर्ष के पश्चात् जब मुनिया की भी मृत्यु हो गई, तब ये घर-बार छोडकर भिक्षाटन करते हुए राम के भजन गाते फिरने लगे। कालान्तर मे ये बाबा नरहरिदास की मडली मे सम्मिलित हो गए। उनकी सत्सगति से ये पक्के राम-भक्त और साधु हो गए। एक बार ये अपने गुरु के साथ काशी आए और पंच गगा के घाट पर रामानन्दजी के पास रहने लगे। यहाँ इन्होंने एक परम विद्वान् शिव सनातनजी से वेद-वेदाग, इतिहास, पुराणादि की पूर्ण शिक्षा प्राप्त की।

पन्द्रह वर्ष तक अध्ययन करने के पश्चात् गोस्वामाजी पुन अपनी जन्म-भूमि राजापुर लौट आए वहाँ एक भारद्वाज गोत्रीय दीनबन्धु पाठक ने इनकी विद्वत्ता और तेजस्विता पर मुग्ध होकर अपनी लडकी रत्नावली का विवाह इनके साथ कर दिया। तुलसीदासजी अपनी पत्नी पर इतने अनुरक्त थे कि एक बार उसके मायके चले जाने पर वे रात्रि के समय अन्धकार, तूफान और आँधी को चीरते हुए, एक बडी नदी को पार

करके उससे मिलने घर जा पहुँचे। इस पर उनकी स्त्री ने उन्हे बहुत लज्जित किया और कहा :

लाज न आवत आपको, दौरे आयहु साथ।
धिक्-धिक् ऐसे प्रेम को, कहा कहहुँ हौं नाथ॥
अस्थि-चरममय देह मम, ता में ऐसी प्रीत।
होती जो श्रीराम महँ, होति न तो भव-भीति॥

यह सुनकर वे तुरन्त लौट पडे और विरक्त हो गए। आपने संवत् १५९७ में वैराग लिया और १६ वर्ष तक देशाटन और तीर्थ-यात्रा करते रहे। अपने इस भ्रमण मे ये काशी, अयोध्या, चित्रकूट, जगन्नाथ-पुरी, रामेश्वर, द्वारिका आदि होते हुए बद्रिकाश्रम पहुँचे और वहाँ से कैलाश तथा मानसरोवर तक निकल गए। सवत् १६३१ मे इन्होने अयोध्या मे 'राम चरित मानस' की रचना प्रारम्भ की और २ वर्ष १ मास मे उसे पूर्ण किया। 'मानस' का कुछ अश काशी में भी लिखा गया है। 'मानस' के पूर्ण हो जाने पर वे काशी मे ही रहने लगे।

'मानस' के अतिरिक्त गोस्वामीजी के 'दोहावली', 'कवितावली', 'गीता-वली', 'रामाज्ञा प्रश्नावली', 'विनय पत्रिका', 'रामलला नहछू', 'पार्वती मगल', 'जानकी मगल', 'बरवै रामायण', 'वैराग्य-सदीपिनी' और 'कृष्ण गीतावली' आदि ग्यारह और प्रामाणिक ग्रन्थ है।

'रामचरित मानस' गोस्वामीजी का सबसे अधिक प्रसिद्ध महाकाव्य है। गोस्वामीजी मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी के अनन्य भक्त थे, वे समस्त संसार को 'सियाराममय' देखते थे। उन्होंने भक्ति और प्रेम की पिपासा मे चातक को आदर्श माना है। मर्यादा के अनुकूल वे अन्य देवी-देवताओ की भी उपासना करते थे, किन्तु उनसे राम-भक्ति की याचना करके अपनी अनन्यता की रक्षा के लिए ही। तुलसीदासजी की भक्ति-सेव्य-सेवक-भाव की थी। सेवक पद को ही वे ऊँचा मानते थे :

सेवक पद सुनकर सदा, दुखी सेव्य पद जान।
यथा विभीषण रावनहिं, तुलसी समझ प्रमान॥

'मानस' में उन्होंने जीवन के सभी पहलुओं पर प्रकाश डाला है। विद्वानों के मत से 'मानस' की टक्कर का महाकाव्य अभी तक हिन्दी में तो क्या विश्व की किसी भी भाषा मे नही लिखा जा सका है। काव्य की दृष्टि से भी यह सर्वाङ्गपूर्ण तथा उत्कृष्ट ग्रन्थ है। ऐसा कोई रस नही, जिसका परिपाक इसमे न हुआ हो। ऐसा कोई भाव नही, जिसकी व्यंजना इसमें नही हुई हो। गोस्वामीजी की रचना-शैली अत्यन्त प्रौढ और सुव्यवस्थित है। वे शब्द-चमत्कार के चक्कर मे नही फँसे और न उन्होने व्यर्थ के अलकारो की भरमार ही की है। अपनी रचनाओं मे उन्होने छन्द-रचना की सभी प्रणालियो को अपनाया है। उन्होंने अपने काव्यों में कभी मर्यादा का उल्लघन नही किया। जिस समय साहित्य मे उच्छृङ्खलता और मर्यादा का उल्लघन करना एक साधारण बात थी, उस समय वे अपने ग्रन्थो मे कभी भी असयमित नही हुए।

गोस्वामीजी के ग्रन्थो मे मानव-प्रकृति की अत्यन्त सूक्ष्म ग्रहण-शीलता तथा सम्पूर्ण मनोविकारो के प्रति संवेदनशीलता का चित्रण है। वास्तव मे गोस्वामीजी हिन्दी-साहित्य के सिरमौर भक्त-शिरोमणि और हिन्दू जाति के धर्म-रक्षक है। ऐसे समय मे जब कि विधर्मियो द्वारा हिन्दू जनता का धर्म सकटमय था, मानव-जीवन की सारी आवश्यकताएँ, समस्त हिन्दू आदर्श और मानव-धर्म की पराकाष्ठा मानव मे सगृहीत करके इन्होने हिन्दू-धर्म की रक्षा की।

'रामचरित मानस' के अतिरिक्त 'विनय-पत्रिका' की रचना करके गोस्वामीजी ने अपनी समन्वय-भावना का आदर्श प्रस्तुत किया है। धर्म, दर्शन तथा काव्य सभी क्षेत्रो मे गोस्वामीजी अपनी सामजस्य-भावना के लिए अप्रतिम है।

गोस्वामी जी की मृत्यु स० १६८० में हुई। इनकी मृत्यु के सम्बन्ध मे यह दोहा प्रचलित है

संवत् सोलह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर॥

गोस्वामी तुलसीदास राम के अनन्य भक्त थे, अत. स्थान-स्थान पर उन्होने अपने ग्रन्थो में उन्ही की महिमा का वर्णन भक्ति के अगाध मानस मे आकण्ठ निमग्न होकर किया है। इस सम्बन्ध में हम उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'राम चरित मानस' और 'विनय-पत्रिका' से दो उदाहरण देना उपयुक्त समझते है। इससे उनकी भक्ति का प्रत्यक्ष परिचय पाठकों को मिल जायगा :

बंदौं राम-नाम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥
विधि-हरि-हर-मय वेद प्रान सों। अगुन अनूपम गुन निधान सों॥
महा मन्त्र जोइ जपत महेसू। कासी मुकुति हेतु उपदेसू॥
महिमा जासु जान गन राऊ। प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ॥
जान आदि कवि नाम-प्रतापू। भयउ शुद्ध करि उलटा जापू॥
सहस नाम सम सुनि सिव-बानी। जपि जेई पिय संग भवानी॥
हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तिय-भूषन ती को॥
नाम प्रभाउ जान सिव नीको। काल कूट फल दीन्ह अमी को॥

(रामचरित मानस)

राम रावरो नाम मेरो मातु-पितु है।
सुजन सनेही गुरु साहब सखा सुहृद
राम-नाम-प्रेम-पन अविचल वितु है॥
सत कोटि चरित अपार दधि-निधि मथि
लियो काढ़ि वामदेव नाम-घृतु है।
नाम को भरोसो बल, चारिहू फल को फल,
सुमिरिए छाँड़ि छल, भलो कृतु है॥
स्वारथ-साधक परमारथ-दायक नाम
राम नाम सारिखो न और हितु है।

'तुलसी' सुभाय कही, साँचिये परैगी सही
सीतानाथ-नाम चितहू को चितु है ॥

(विनय-पत्रिका)

स्वामी अग्रदास—ये रामानन्द की शिष्य-परम्परा में तीसरी पीढी मे हुए है। इन्होने 'हितोपदेश उपखान बावनी', 'ध्यान मजरी', 'रामध्यान मजरी' और 'कुडलिया' नामक चार पुस्तके लिखी है। इनका रचना-काल स० १६३२ के आस-पास माना है। इनकी कविता का एक नमूना देखिये :

कुंडल ललित कपोल जुगल अस परम सुदेसा।
तिनको निरखि प्रकास लजत राकेस दिनेसा॥
मेचक कुटिल विसाल सरोरुह नैन सुहाए।
मुखपंकज के निकट मनो मृगछौना आये॥

नाभादास—ये स्वामी अग्रदास जी के शिष्य थे। ये बडे भक्त और साधु-सेवी थे। इनका समय स० १६५७ के लगभग माना जाता है। तुलसीदास जी की मृत्यु से पीछे तक ये जीवित रहे है। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भक्तमाल' है, जिसमे २०० भक्तो के चमत्कारपूर्ण चरित्र लिखे गए है। इनका एक छप्पय देखिए :

त्रेता काव्य निबन्ध करी सत कोटि रमायन।
इक अक्षर उच्चरै ब्रह्म इत्यादि परायन॥
अब भक्तन सुख दैन बहुरि लीला विस्तारी।
रामचरण रस मत्त रहत अहनिस व्रतधारी॥
संसार अपार के पार को, सुगम रूप नौका लियो।
कलि-कुटिल जीव निस्तार-हित, वाल्मीकि तुलसी भयो॥

प्राणचन्द चौहान—इन्होने स० १६६७ मे 'रामायण महानाटक' लिखा। इनकी शैली केवल सवाद रूप की है। रचना का ढग नीचे दिया जाता है :

कातिक मास पच्छ उजियारा।
तीरथ तुण्य सोम कर वारा॥

ता दिन कथा कीन्ह अनुमाना ।
शाह सलेम दिलीपति थ्याना ।।
संवत् सोरह सो सत साठा ।
पुण्य प्रकास पाप भय नाठा ।।

हृदयराम—ये पंजाब के निवासी कृष्णदास के पुत्र थे । इन्होंने सं० १६२० में 'हनुमन्नाटक' को रचना की । इनकी कविता बड़ी सुन्दर और परिमार्जित है । इसमे कवित्त और सवैयो मे बड़े अच्छे संवाद है । इनकी रचना का उदाहरण नीचे दिया जाता है :

देखन जो पाऊँ तौ पठाऊँ जमलोक हाथ,
दूजो न लगाऊँ वार करौं एक वर कौं ।
मीजि मारौं उर तें उखारि भुजदंड, हाड़,
तोरि डारौं बर अवलोक रघुबर को ।।
कासों राम द्विज को, रिसात महारात राम,
अति महरात गात लागत है घर को ।
सीता को संताप मेटि प्रगट प्रताप मानो,
को है वह आप चाप तोरयो जिन हर को ।।

राम-भक्ति-शाखा के कवियों में संख्या की दृष्टि से अधिक कविगण नहीं हुए, किन्तु तुलसीदास की काव्य-प्रतिभा ने इस राम-भक्ति का प्रचार उत्तरीय भारत में जिस प्रबल रूप से किया वह इस बात का प्रमाण है कि संख्या की दृष्टि से व्यक्तित्व की अधिक प्रधानता है ।

सगुण धारा : कृष्ण-भक्ति

जिस प्रकार राम-भक्ति-शाखा के प्रवर्तक स्वामी रामानुजाचार्य थे, उसी प्रकार कृष्ण-भक्ति-शाखा के प्रवर्तक स्वामी वल्लभाचार्य थे । भक्ति-मार्ग के लिए प्रेम और श्रद्धा दोनों को आपने आवश्यक माना है । प्रेम-भक्ति की साधना के लिए इन्होंने प्रेम को प्रधानता दी है, श्रद्धा उसकी सहायक है । इन्होंने प्रेम-साधना में लोक-मर्यादा और वेद-मर्यादा दोनो

का त्याग विधेय ठहराया है । इनका कहना था कि प्रेम-लक्षरण-भक्ति की ग्रोर जीव की प्रवृत्ति तभी होती है जब भगवान् का ग्रनुग्रह होता है। इस ग्रनुग्रह को उन्होंने पोषरण या पुष्टि कहा है। इसी कारण उन्होंने अपने मार्ग का नाम 'पुष्टि मार्ग' रखा है ।

स्वामी वल्लभाचार्य ने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पूर्व मीमासा भाष्य', 'उत्तर मीमासा भाष्य','श्रीमद्भागवत की दो सूक्ष्म टीका' और 'तत्त्वदीप-निबध' तथा १६ छोटे-छोटे प्रकरण-ग्रन्थ लिखे है । इन्होने भारत के अनेक स्थानों का भ्रमरण किया और अनेक विद्वानों से शास्त्रार्थ करके अपने मत का प्रचार किया। अन्त में इन्होने मथुरा में जाकर अपनी गद्दी स्थापित की और 'वल्लभ-सम्प्रदाय' के नाम से अपना मत चलाया । इस सम्प्रदाय की उपासना व सेवा-पद्धति में भोग-राग-विलास की प्रभूत सामग्री के प्रदर्शन की प्रधानता रही। अत. उक्त सम्प्रदाय के भक्तों ने प्रेम-सगीत की जो धारा बहाई, उसने हिन्दू जनता के जीवन को रसमय और प्रफुल्लित कर दिया। अन्य सम्प्रदायो के कृष्ण-भक्त भी इसी प्रेम-धारा मे बह गए। ये लोग भागवत मे वर्णित कृष्ण की ब्रज-लीला को ही लेकर चले । महाभारत के नीति-परायण पराक्रमी कृष्ण पर उनकी दृष्टि नही पडी। क्योकि उन्हे तो अपनी प्रेम-लक्षरण-भक्ति के लिए कृष्ण के मधुर रूप की ही आवश्यकता थी। इसलिए उन्होने कृष्ण के लोक-रक्षक और धर्म-सस्थापक स्वरूप को जनता के सामने नही रखा। कृष्ण-भक्ति-शाखा के कवियो मे शृङ्गारात्मक मूर्ति और भावना का ही प्रभाव रहा और उनके काव्य मे भी उसी का विकास हुआ।

इन्ही दिनो दक्षिण के मन्दिरों मे एक विलक्षण प्रथा प्रचलित थी, जिसे देवदासी-प्रथा कहते थे । माता-पिता लडकियों को मन्दिरों में चढ़ा आते थे, वहाँ उनका विवाह भी ठाकुर जी के साथ हो जाया करता था। इस प्रथा ने भी राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला के प्रचार में सहायता दी । श्री वल्लभाचार्य तथा उनके पुत्र श्री विट्ठलनाथ के शिष्यो में आठ शिष्य प्रमुख थे, जो 'अष्ट छाप' के नाम से प्रख्यात थे। ये सभी कवि थे।

इनके नाम है—सूरदास, कुम्भनदास, गोविन्द स्वामी, चतुर्भुजदास, छीत स्वामी, नन्ददास, कृष्णदास और परमानन्ददास। इन भक्त-कवियो के काव्य मे ब्रजभाषा का बडा विकास हुआ।

सूरदास – सूरदास जी का जन्म स० १५४० में आगरा के निकट रुनकता नामक ग्राम मे हुआ। कुछ लोग इनका जन्म-स्थान दिल्ली के पास सीही नामक ग्राम को मानते हैं। यह सारस्वत ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम रामलाल था। कुछ लोगो का मत है कि ये ब्रह्मभट्ट थे और चद बरदाई इनके पूर्व पुरुषो में से थे। सूरदास आगरा और मथुरा के बीच 'गऊ घाट' पर रहा करते थे। उस समय वे साधु हो चुके थे और भगवद्-भजन करते तथा शिष्य बनाया करते थे। एक बार श्री बल्लभाचार्य वहाँ आये। वे सूरदास जी की भक्ति पर बड़े प्रसन्न हुए और इन्हें अपना शिष्य बना लिया।

सूरदास जी के सम्बन्ध मे एक किंवदन्ती प्रचलित है कि इनका वास्तविक नाम बिल्वमगल था। ये तिलोत्तमा नामक एक सुन्दरी पर आसक्त हो गए थे। जब इन्हे ज्ञान हुआ तो पश्चात्ताप-स्वरूप अपने दोनो नेत्र फोड़ लिए थे। इन्होने अपने नेत्रों को ही मन के विचलित होने का कारण समझा था। इस सम्बन्ध में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'सूरदासेर प्रार्थना' नामक बडी सुन्दर और भावपूर्ण कविता लिखी है।

जो कुछ भी हो, यह तो स्वीकार करना ही होगा कि सूरदासजी बडे भावुक पुरुष थे। इनकी रचनाओ से ऐसा प्रकट होता है कि ये जन्मान्ध नही थे, क्योकि उनके वर्णन ऐसे सजीव हैं कि वे बिना निजी अनुभव के नही लिखे जा सकते। उन्होने बाल-कृष्ण के सोते हुए अधर-पुट हिलने का अथवा गोपियो की क्रीडा तथा रास-लीला का जो वर्णन किया है वह ऐसा नही है कि किसी से सुनकर लिख दिया गया हो। विविध रगो और दृश्यों का वर्णन भी जन्मान्ध व्यक्ति के लिए संभव नही। साथ ही उनकी आँखे फोड़ने की घटना भी कुछ जँचती नही।

यदि अपने-आप आँखें फोडते तो वह भगवान् को अपने अन्धे होने का उलाहना न देते :

मित्र सुदामा कौन अयाचक, प्रीति पुरानी जानि ।
'सूरदास' सों कहा निठुराई, नैनन हू की हानि ॥

सूरदास की प्रसिद्ध रचना 'सूरसागर' है, जो 'श्रीमद्भगवत' के आधार पर तत्कालीन ब्रजभाषा मे लिखा गया है । सूर की रचना शृङ्गार और वात्सल्य से पूर्ण है। 'सूरसागर' में सबसे मर्मस्पर्शी अश 'भ्रमर गीत' है, जो गोपिकाओं की वचन-वक्रता और वाग्-विदग्धता से युक्त है । ऐसा सुन्दर उपालम्भ अन्यत्र कही नही मिलता । इसमें उद्धव और गोपियो के सवाद द्वारा सगुण भक्ति की स्थापना और निर्गुण ब्रह्म-निरूपण की नीरसता का वर्णन किया गया है । यह सूर की सूक्ष्म अनुभूति का द्योतक है ।

सूरदास की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है । उसमें कही-कही सस्कृत का भी पुट है । कही-कहीं ब्रजभाषा के ठेठ ग्रामीण शब्दो का भी प्रयोग हो गया है । उनकी भाषा माधुर्य गुण से युक्त है । सूर के शब्दो मे बड़ी सुन्दर व्यजना रहती है । इन्होंने मुहाविरो का भी सार्थक प्रयोग किया है । इनकी कविता मे प्राचीन आख्यान और कथाओं का भी सुन्दर हवाला दिया गया है ।

इनकी भाषा और रचना का उदाहरण नीचे देखिए :

देखि री ! हरि के चंचल नैन !
खंजन मीन मृगज चपलाई, नहिं पटतर इक सैन ॥
राजिवदल, इंदीवर, शतदल, कमल कुशेशय जाति ।
निसि मुद्रित प्रातहि वे बिगसत, ये बिगसे दिन-राति ॥
अरुन असित सित झलक पलक प्रति, को बरनै उपमाय ।
मनो सरस्वति गंग-जमुन मिलि, आगम कीन्हो आय ॥

'सूरसागर' के अतिरिक्त इनके—'सूर सारावली', 'साहित्य लहरी', 'नल-दमयन्ती', 'ब्याहलो' आदि चार ग्रन्थ और है । सूरदास जी हिन्दी

के हिन्दी के उच्च कोटि के कवियो में थे, वात्सल्य रस के वर्णन में तो वे अद्वितीय है।

इसका एक उदाहरण देखिए :

मैया मेरी, मै नहिं माखन खायो।
भोर भयो गैयन के पाछे मधुबन मोहि पठायो।
चार पहर बंसीबट भटक्यो साँझ परे घर आयो॥
मै बालक बहियन को छोटो छीको किस विध पायो।
ग्वाल बाल सब बैर परे है, बरबस मुख लपटायो॥
तू जननी मन की अति भोरी, इनके कहे पतियायो।
जिय तेरे कछु भेद उपजि है जान परायो जायो॥
यह ले अपनी लकुट कमरिया बहुतहिं नाच नचायो।
'सूरदास' तब बिहँसि जसोदा ले उर कण्ठ लगायो॥

इनकी मृत्यु सं० १६२० के लगभग पारसौली नामक ग्राम में हुई। उस समय श्री विट्ठलनाथजी वही उपस्थित थे। उनकी उपस्थिति में सूरदासजी ने निम्न लिखित पद गाया था :

खंजन नैन रूप रस माते।
अतिसय चारु चपल अनियारे, पल-पिंजरा न समाते॥
उड़ि-उड़ि जात निकट स्रवननि के, उलट-पलट ताटंक फँदाते।
'सूरदास' अंजन गुन अटके नतरु अबहिं उड़ि जाते॥

नन्ददास—कृष्ण-भक्ति-शाखा के कवियों में सूरदास के बाद नन्द-दास का स्थान है। ये सूरदास जी के समकालीन थे। इनका रचना-काल स० १६२५ माना गया है। इन्होने अपने प्रसिद्ध काव्य 'रास-पचाध्यायी' की रचना रोला छन्द में की है। इनकी कविताओं की भाषा बडी सजीव और प्रवाहमयी है। 'पचाध्यायी' के अतिरिक्त इनके 'भ्रमर गीत', 'अनेकार्थ मंजरी', 'रस मंजरी', 'स्याम सगाई' तथा 'रुक्मिणी-मगल' आदि ग्रंथ भी बडे प्रसिद्ध हैं। इनमें 'भ्रमर गीत' अधिक लोकप्रिय है। इनकी भाषा की गति और सजीवता देखिए :

छवि सों निर्तनि, पटकनि लटकनि, मंडल डोलनि ।
कोटि अमृत सम मुसकनि, मंजुलता थेई थेई बोलनि ।।

कृष्णदास—ये जाति के शूद्र थे । ये भी वल्लभाचार्य के शिष्य और अष्ट-छाप मे थे । शूद्र होते हुए भी ये आचार्य की कृपा से मन्दिर के मुखिया हो गए थे । उन्होने 'भ्रमरगीत', 'जुगल मान-चरित', और 'प्रेम तत्त्व-निरूपण' नामक ग्रथो की रचना की है ।

इनके अतिरिक्त अष्टछाप के परमान्ददास, कुम्भनदास, चतुर्भुजदास, छीत स्वामी और गोविन्द स्वामी भी अपनी अनन्यता और तन्मयता की दृष्टि से अच्छे कवि हुए हैं । ब्रजभाषा पर इन लोगो का पूर्ण अधिकार था । अपने हृदय की अनुभूति से प्रेरित होकर ये अपने भावों को सगीतमयी भाषा मे अभिमन्त्रित करते थे । इन्होने अपनी मधुर स्वर-लहरी से समस्त ब्रज को आप्लावित कर दिया । ये लोग स्वान्तः सुखाय ही कविता करते थे । इन्हे किसी सम्मान या राज्याश्रय की चाहना नही थी । एक बार कुम्भनदास जी को अकबर बादशाह ने सीकरी बुलाया था, वहाँ उनका बडा सम्मान किया, परन्तु उस सम्मान से भी उन्हे ग्लानि ही रही । बाद मे उन्होने कहा था :

सतन को कहा सीकरी सों काम ।
आवत जात पनहियाँ टूटीं, बिसर गयो हरि नाम ।।
जिनको मुख देखे दुख उपजत, तिनको करिबै पड़ी सलाम ।

हित हरिवंश—इनका जन्म मथुरा जिले के अन्तर्गत सादाबाद गाँव मे स० १५५९ मे हुआ । ये 'राधा-वल्लभ' सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे । रचना-काल स० १६०० से १६४० तक माना जाता है । इनके सम्प्रदाय में राधिका जी को स्वय भगवान् श्रीकृष्ण से भी अधिक प्रधानता दी गई है । कारण, भगवान् अपनी प्रवृत्ति के ही वशीभूत रहते है । राधा जी की कृष्ण की शक्ति की प्रतीक है, अतः शक्ति की पूजा-अर्चना से भगवान् कृष्ण स्वय परितुष्ट होकर मन पर अनुग्रह करते है । इनके सरस और मधुर पद्यो का सग्रह 'हित चौरासी' नाम से प्रसिद्ध है । 'राधा सुधानिधि'

नाम से संस्कृत मे भी इन्होने एक सुन्दर ग्रथ लिखा है। इनकी कविता का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है .

आजु बन नीको रास रचायौ।
पुलिन पवित्र सुभग जमुना-तट, मोहन बेनु बजायौ।
कल कंकन किंकिनि नूपुर-धुनि, सुनि खग-मृग सचु पायौ।।
जुवतिन मंडल मध्य श्यामघन, सारँग राग जमायौ।
ताल मृदंग उपंग मुरज डफ, मिलि रस-सिन्धु बढ़ायौ।।

गदाधर भट्ट - ये गौडिया सम्प्रदाय के कवियो मे प्रमुख थे। ये दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे और चैतन्य महाप्रभु के शिष्य थे। इन्होने कृष्णजी की वन्दना के साथ-साथ नन्द-यशोदा की वन्दना भी की है। इनकी रचना सस्कृत-गर्भित भाषा मे होती थी। इनकी रचना का नमूना देखिए .

जयति श्री राधिके, सकल सुख साधिके,
तरुनि मनि नित्य नवतन किसोरी।
कृष्णतन लीन-मन रूप की चातकी,
कृष्ण मुख हिम-किरण की चकोरी।।

मीराबाई—ये मेडतिया के राठौर रतनसिह की सुपुत्री थी। इनका जन्म सवत् १५७३ में चौकडी नामक ग्राम मे हुआ था। इनको बचपन से ही कृष्ण का इष्ट हो गया था और वे अपने को उन्ही से विवाहित समझती थी। वैसे इनका सासारिक विवाह चित्तौड़ के राणा साँगा के पुत्र भोजराज से हुआ था। विवाह के कुछ दिन उपरान्त ही ये विधवा हो गई। ये प्रायः सन्तो की सगति मे रहती थी, और मन्दिरो मे जाकर कृष्ण की मूर्ति के सामने नाचती और गाती थी। इनके इस व्यवहार से राज-कुल के लोग इनसे रुष्ट रहते थे। इन्हें मारने की चेष्टा मे कई बार विष तक दिया गया, किन्तु भगवत्कृपा से इन्हे कुछ न हुआ .

'राणा जी ने भेजो विष का प्याला, सो अमृत कर पीज्यो जी।'

मीरा-रचित चार ग्रथ बतलाये जाते है—'नरसी का मायरा', 'गीत गोविन्द टीका', 'राम गोविन्द' और 'राग सोरठ'।

मीरा की वाणी का गुजरात में बहुत आदर है। इन्होंने राजस्थानी और ब्रजभाषा दोनों में ही रचना की है। इनके पदों से इनकी तीव्रानुभूति तथा हार्दिकता का परिचय मिलता है। उनमें निजी प्रेम-पीड़ा है। उन्होंने गोपियों का विरह-वर्णन न करके अपना विरह-वर्णन किया है। इनका एक पद्य देखिए :

बसौ मेरे नैनन में नन्दलाल।
मोहिनी मूरति, साँवरि सूरति, नैना बने बिसाल।
अधर सुधा रस मुरली राजति, उर बैजन्ती माल॥
छुद्र घण्टिका कटि तट सोभित, नूपुर शब्द रसाल।
'मीरा' प्रभु सन्तन सुखदाई, भक्त-बछल गोपाल॥

स्वामी हरिदास—ये निम्बार्क-सम्प्रदाय के अन्तर्गत टट्टी सम्प्रदाय के संस्थापक थे। ये अकबर के समय में एक सिद्ध भक्त और संगीताचार्य माने जाते थे। इनका कविता-काल संवत् १६०० से १६१७ माना जाता है। कहते हैं कि स्वयं अकबर और प्रसिद्ध गायक तानसेन इनके संगीत पर मुग्ध थे। इनके पद कठिन राग-रागिनियों में गाने योग्य हैं, पढ़ने में कुछ बेढंगे से लगते हैं। पद-विन्यास भी और कवियों की भाँति कोमल और मधुर नहीं है। हाँ, भाव अच्छे हैं। इनके पदों के संग्रह—'हरिदासजी के ग्रंथ', 'हरिदासजी की बानी' और 'स्वामी हरिदासजी के पद' के नामों से मिलते हैं। इनका निम्न लिखित पद पठनीय है :

ज्यों ही ज्यों तुम राखत हो त्यों ही त्यों ही रहियत हौ, हे हरि !
और अपरचै पाय धरौ सुतौ कहौ कौन के पैंड भरि॥
जदपि हौं अपनो भायो कियो चाहौं, कैसे करि सकौं जो तुम राखो पकरि।
कहैं 'हरिदास' पिंजरा के जनावर लौं तरफाय रह्यौ उड़िबे को कितोऊ करि॥

हरिराम व्यास—ये ओरछा-नरेश मधुकर साह के राजगुरु थे। पहले ये गौड सम्प्रदाय के वैष्णव थे, बाद में हित हरिवंशजी के शिष्य होकर राधावल्लभी हो गए। इनका रचना-काल संवत् १६२० के आस-

। इनकी कविता का नमूना देखिए

आज कछु कुञ्जन में वरषा सी।
बादल दल में देखि सखी री, चमकति है चपला सी॥
मंद मंद गरजिनि सी सुनियतु, नाचत मोर सभा सी।
इन्द्र धनुष बा पंगति डोलति, बोलति कोक कला सी।
इन्द्र बधू छबि छाइ रही मनु, गिरि पर अरुन घटा सी॥

रसखान—ये दिल्ली के एक पठान सरदार थे। इनका जन्म लगभग सवत् १६१५ में हुआ, इनका वास्तविक नाम सैयद इब्राहीम था। कहते है कि ये एक बनिए के लडके से प्रेम करते थे। एक बार वृन्दावन जाने पर स्वामी विट्ठलनाथ जी के उपदेश से इन्हे ज्ञान प्राप्त हुआ। तब से श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त हो गए और इनका नाम 'रसखान' पड गया। इनकी रचनाओ के दो संग्रह—'प्रेम वाटिका' और 'सुजान रसखान' नाम से मिलते है। जिनमे श्रीकृष्ण की अनन्य भक्ति का प्रदर्शन किया गया है।

रसखान की रचना अत्यत सरस, कोमल और भावगर्भित है। इन्होने बडे मार्मिक शब्दो में प्रेम की अभिव्यजना की है। इनकी रचनाओ मे भगवान् कृष्ण के प्रति आत्म-समर्पण, अनन्य प्रेम और तल्लीनता ही दिखाई देती है। भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है। इनका एक सवैया देखिए :

मानुस हों तो वही रसखान, बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जौ पसु हों तो कहा बसु मेरो, चरौं नित नंद की धेनु मँझारन॥
पाहन हों तो वही गिरि को जो कियो हरि छत्र पुरंदर-धारन।
जौ खग हों तो बसेरो करौं मिलि, कालिंदी-कूल कदंब की डारन॥

ध्रुवदास—कहते है कि ये स्वप्न ने श्री हितहरिवशजी के शिष्य हो गए थे। ये वृन्दावन में रहा करते थे। इनका रचना-काल सवत् १६६० से १७०० तक माना जाता है। इन्होने पदो के अतिरिक्त दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया आदि अनेक छन्दो मे भक्ति और प्रेम तत्त्व का वर्णन किया है। इन्होंने छोटे-छोटे सब मिलाकर ८० के लगभग ग्रथ लिखे है। इनकी रचना का नमूना देखिए .

बहु बीती थोरी रही, सोऊ बीती जाय।
हित ध्रुव वेगि विचार कै, बसि वृन्दावन आय॥
बसि वृन्दावन आय त्याग लाजहि अभिमानहि।
प्रेम लीन ह्वै दीन आपको तृन सम जानहि॥
सकल सार को सार, भजन तू करि रस रीती।
रे मन सोच-विचार, रही थोरी, बहु बीती॥

कृष्ण-भक्ति-शाखा के भक्त-कवियो की सख्या इतनी विशाल है कि उसका उल्लेख स्थान-सकोच के कारण नही किया जा सकता। राधा-वल्लभ, निम्बार्क और वृन्दावनस्थ गौडीय सम्प्रदाय मे ऐसे अनेक कवि हुए है, जिनका साहित्य वृन्दावन के मन्दिरो में हस्तलिखित पुस्तकों मे भरा पडा है। राधावल्लभ सम्प्रदाय की हस्तलिखित सैकडो उच्चकोटि की रचनाएँ आज भी प्रकाश मे नही आई हैं। हिन्दी-प्रेमी विद्वानों को उनको प्रकाश में लाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

अकबर-दरबार के कवि

रहीम—इनका पूरा नाम अब्दुल रहीम खानखाना था। इनके पिता खानखाना बैरमखाँ थे। इनका जन्म स० १६१० में हुआ था। रहीम सम्कृत, अरबी और फारसी के पूर्ण विद्वान् थे। भाषा पर इनका पूरा अधिकार था। ये प्रकृति के बडे दयालु थे। दानशील भी पूरे थे और वीरता में भी भरपूर थे। रहीम के दोहो मे 'तुलसी' की सी मार्मिकता और भावुकता के दर्शन होते है। तुलसीदासजी से उनकी घनिष्ठ मित्रता थी। एक बार ये अपना सब-कुछ लुटाकर फकीर हो बैठे। मॉगने वालो ने फिर भी पीछा न छोड़ा तो इन्होंने यह दोहा कहा :

यारो यारी छोड़ दो, वे रहीम अब नाँय।
वे रहीम निर्धन भये, मॉग मधुकरी खाँय॥

रहीम के दोहो में कही-कहीं हास्यरस भी मिलता है :

कमला थिर न रहीम कह, जानत है सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय॥

मुसलमान होने पर भी रहीम ने हिन्दू-धर्म और सस्कृति का अच्छा परिचय प्राप्त किया था। उन्होने हिन्दू-धर्म के अनेक रीति-रिवाजो का अपने दोहो मे उल्लेख किया है। भाषा की दृष्टि से भी रहीम को अद्भुत सफलता प्राप्त हुई है। रहीम की भाषा सरलता, सुबोधता और प्राजलता के कारण 'टकसाली' बन गई थी, जो आज तक बोल-चाल मे उद्धृत की जाती है।

रहीम ने नायिका-भेद-सम्बन्धी बडे सरस बरवै लिखे है। ये बरवै अवधी भाषा में है। इन्हें बरवै छन्द का जन्मदाता माना जाता है। इन्होने 'रहीम दोहावली', 'बरवै नायिका भेद', 'शृङ्गार सोरठ', 'मदनाष्टक' और 'रास पचाध्यायी' की रचना की है। इनकी मृत्यु सवत् १६८३ मे हुई।

नरहरि और गंग—ये दोनो अकबर के दरबार के श्रेष्ठ कवि थे। नरहरि का जन्म १५६२ मे और मृत्यु १६६७ मे हुई। अकबर ने इन्हे महापात्र की उपाधि से विभूषित किया था। इनके रचित ग्रन्थ ये है—'रुक्मिणी मंगल', 'छप्पय नीति' और 'कवित्त सग्रह'। इनका एक छप्पय बडा प्रसिद्ध है, जिस पर अकबर ने गो-वध बन्द कर दिया था :

अरिहु दन्त तिनु धरै ताहि नहिं मार सकत कोइ।
इक सतत तिनु चरहिं, बचन उच्चरहिं हीन होइ॥
अमृत पय नित स्रवहिं, बच्छ महि थंभन जावहिं।
हिंदुहि मधुर न देहि, कटुक तुरकहिं न पियावहिं॥
कह कवि 'नरहरि' अकबर सुनौ, विनवत गउ जोरे करन।
अपराध कौन मोहि मारियत, मुएहु चाम सेवइ चरन॥

गग कवि के जन्म-काल का ठीक पता नही चलता। गग ने शृङ्गार और वीर दोनो रसो की कविता की है। गंग की तुलना तुलसीदासजी से की जाती है। इस सम्बन्ध में एक दोहा प्रचलित है

तुलसि गग दोऊ भये, सुकविन के सरदार।
इनके काव्यन में मिलै, भाषा विविध प्रकार॥

कहते है कि किसी राजा या नवाब की आज्ञा से इन्हे हाथी से रौदवा डाला गया था। उस समय मरने से पहले इन्होने यह पद कहा था

सब देवन को दरबार जुरयो तहँ पिंगल छन्द बनाय के गायो।
जब काहु तै अर्थ कह्यौ न गयो, तब नारद एक प्रसंग चलायो।।
मृतलोक में है नर एक गुनी, कवि 'गंग' को नाम सभा मे बतायो।
जब चाह भई परमेश्वर को तब गंग को लेन गनेस पठायो।।

वास्तव मे गग अपने समय के प्रधान कवियो मे थे। इनकी कविता मे सरसता के अतिरिक्त वाग्वैचित्र्य भी प्रचुर मात्रा में होता था। घोर अतिशयोक्तिपूर्ण वस्तु-व्यजना-पद्धति पर इन्होने विरह-ताप का वर्णन भी किया है। एक कविता का नमूना देखिये

बैठी थी सखीन सग, पिय को गवन सुन्यो,
सुख के समूह मे वियोगि आगि भरकी।
'गग' कहै त्रिविधि सुगंध लै पवन बह्यौ,
लागत ही ताके तन भई बिथा जरकी।।
प्यारी को परसि पौन गयो मानसर कहँ,
लागत ही औरै गति भई मानसर की।
जलचर जरे और सेवार जरि छार भये,
जल जरि गयो, पंक सूख्यो, भूमि धरकी।।

नरोत्तमदास—ये सीतापुर जिले के बाड़ी नामक कस्ब के रहने वाले थे। इनका रचना-काल स० १६०२ के आस-पास बताया जाता इनका 'सुदामा चरित' बडा सुन्दर और प्रसिद्ध प्रबन्ध काव्य है। यह शुद्ध ब्रजभापा मे है। छोटा सा काव्य होते हुए भी सरसता और भावुकता से परिपूर्ण है। इनकी 'सुदामा-चरित' के अतिरिक्त अन्य कोई पुस्तक नही मिलती। 'सुदामा-चरित' मे सुदामा जी की दरिद्रता, श्रीकृष्ण की आदर्श मित्रता आदि का सुन्दर और चित्ताकर्षक वर्णन है। प्रवाहमयी सरस अभिव्यक्ति की दृष्टि से 'सुदामा-चरित' हिन्दी का एक अच्छा काव्य है।

वाग्-वैदग्ध्य और रोचक कथा-तत्त्व के कारण 'सुदामा चरित' के बहुत से अंश जनता में पर्याप्त प्रसिद्ध हो गए हैं। इनकी कविता का उदाहरण देखिए :

सीस पगा न झगा तन में, प्रभु जानें को आहि बसै केहि ग्रामा।
धोती फटी-सी लटी दुपटी अरु, पाँय उपानहुँ को नहिं सामा॥
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल देख, रह्यो चकिसो बसुधा अभिरामा।
पूछत दीनदयाल को धाम, बतावत आपुनो नाम सुदामा॥

सेनापति—इनका जन्म सं० १६४६ के लगभग अनूपशहर में हुआ था। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। पहले इनका राज-दरबार से सम्पर्क था, बाद में संन्यास धारण कर लिया। ये बडे सहृदय कवि थे, इन्होंने ऋतु-वर्णन बडा ही सुन्दर किया है। इनके ऋतु-वर्णन में प्रकृति-निरीक्षण पाया जाता है और पद-विन्यास भी इनका ललित है। भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार था। यमक और अनुप्रास की प्रचुरता होते हुए भी इनकी रचनाओं में कही भी भद्दापन नही आया है। सारांशतः ये अपने समय के श्रेष्ठ कवि थे 'कवित्त रत्नाकर' और 'काव्य-कल्पद्रुम' इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। इनकी रचना का नमूना नीचे दिया जाता है :

दूरि जदुराई सेनापति सुख दाई देखो,
आई ऋतु पावस न पाई प्रेम पतियाँ।
धोर जलधर की सुनत धुनिधर की औ,
दरकी सुहागिन की छोह भरी छतियाँ॥
आति सुधि बरकी, हिये में आनि खरकी,
तू मेरी प्रानप्यारी यह प्रीतम की बतियाँ।
बुई औधि आवन की, लाल मनभावन की,
डग भई बावन की सावन की रतियाँ॥

बनारसीदास—इनका जन्म सं० १६४३ में हुआ। ये जौनपुर के निवासी तथा जैन धर्मावलम्बी थे। पहले से शृङ्गार-रस की कविता किया करते थे। पीछे ज्ञान होने पर इन्होने वे सब कविताएँ गामती

नदी में फेंक दी और ज्ञानोपदेशपूर्ण कविताएं करने लगे । इन्होने 'अर्द्ध कथानक' के नाम से अपनी आत्म-कथा भी लिखी है। पुराने हिन्दी-साहित्य में यह प्रथम आत्म-चरित था । इससे इसका महत्त्व बहुत अधिक है। इसके अतिरिक्त इन्होने 'बनारसी-विलास', 'नाम माला', 'बनारसी-पद्धति', 'कल्याण-मन्दिर-भाषा', 'मोक्षपदी' आदि ग्रन्थों की भी रचना की है ।

मुबारक—इनका जन्म सं० १६४० में हुआ। इनका कविता-काल सं० १६७० से पीछे का माना जाता है। सस्कृत, फारसी और अरबी के अच्छे विद्वान् होने के अतिरिक्त ये हिन्दी के सहृदय कवि थे । इन्होनें अधिकतर श्रृङ्गारिक कविता की है। इन्होने नायिका-भेद पर बडी सुन्दर कविता की है। इनके रचित ग्रन्थ 'अलक शतक' और 'तिलाशतक' है, जिसमे नायिका के एक-एक अग को लेकर दसो अंगो पर सौ-सौ दोहे लिखे गए है। इनके कुछ दोहे नीचे दिये जाते है :

परी मुबारक तिय-बदन अलक ओप अति होय।
मनो चन्द की गोद में, रही निसा सी सोय ॥
चिबुक कूप में मन परचो, छबि जल तृषा विचारि।
कढ़ति मुबारिक ताहि तिय, अलक डोरि सी डारि ॥

३

शृङ्गार युग

(सं० १७००–१६००)

सामान्य परिचय

शृङ्गार युग के साहित्य का गम्भीर अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रमुख भक्त कवियों के बाद के छोटे-छोटे कवियों की कविता में भक्ति-तत्त्व की अपेक्षा शृङ्गारिक भावना का पुट अधिक हो चला था। इसका एक कारण यह था कि उस समय राम-काव्य की अपेक्षा कृष्ण-काव्य का अधिक विस्तार हुआ। कृष्ण-चरित्र का जो रूप तत्कालीन कवियों ने काव्य-साधना के क्षेत्र में स्वीकार किया वह लोक-रक्षक न होकर मन-रंजक एवं सौंदर्य की अमित आभा से ओत-प्रोत था, राम-चरित्र के लोक-रंजक-लोक-साधक भाव का उसमें अपेक्षाकृत बहुत न्यून समावेश हुआ था। कृष्ण के माधुर्य ने जनता और कवियों का ध्यान सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। कृष्ण-काव्य में भक्ति और शृङ्गार का अद्भुत सम्मिश्रण हुआ था। कृष्ण-भक्त कवियों ने भक्ति और प्रेम के वशीभूत होकर ही शृङ्गार का वर्णन किया था। उस शृङ्गार में एक जीवन-संगीत था, जिसने मृत हिन्दू-जनता में जीवन संचार किया था। जिस शृङ्गार की मदिरा ने भक्ति युग में औषध का काम किया था वही पीछे से एक घातक व्यसन बन गई। कला-पक्ष में जब तक जीवन का सम्बन्ध रहेगा वह उन्नतिशील रहेगा, किन्तु जब कला की ही पूजा होने लगती है तो जीवन का स्रोत सूखने

लगता है। पहले भक्त कवि शृङ्गारिक कविता अपने इष्टदेव की भक्ति का एक अंग मानकर करते थे, किन्तु पीछे के कवियों के हाथों में वह एक वाणी-विलास या व्यसन बनकर रह गई। राधा और कृष्ण-शृङ्गारिक कविता के आलम्बन-मात्र रह गए। उन्होंने नायक-नायिकाओं का स्थान ले लिया। शृङ्गारिक कविता में अब भक्ति-भावना की अपेक्षा विलासमयी वासना की तृप्ति होने लगी। पीछे के कवियों में कवित्व (कला पक्ष) का प्राधान्य हो गया और भक्ति की ओट में उनकी विलासमयी भावनाएँ पोषण पाने लगीं।

दूसरी बात यह कि उस समय देश में लड़ाई-झगड़े प्रायः समाप्त हो चुके थे। रात-दिन सब आमोद-प्रमोद में ही अपना समय बिताते थे। सुख-शान्ति की शीतल छाया में नारी-सौंदर्य ने अपने मोहक आकर्षण का जादू डालना प्रारम्भ कर दिया था। अतः अपने आश्रयदाताओं की भाँति कवियों की मनोवृत्ति भी विलासमयी हो गई। अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए वे नारी-सौंदर्य के नग्न रूप उनके सामने प्रकट करने लगे। इसलिए शृङ्गारिक कविताओं की बाढ़-सी आ गई। जन-साधारण से हटकर इस समय की कविता राज-दरबार की वस्तु बन गई थी। कवि लोग धन-प्राप्ति के लिए अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में छन्द बनाने लगे। इनकी प्रशंसा में तथ्य का अभाव सा ही रहता था, हाँ जमीन-आसमान के कुलाबे खूब मिलाये जाते थे। संक्षेप में काव्य-प्रतिभा फरमाइश के रूप में प्रकट होकर दामों पर बिकने लगी। चमत्कार-पूर्ण ढंग के प्रशंसात्मक एवं शृङ्गारिक कवित्त बनाने के लिए नई-नई रीतियों और अलंकारों का प्रयोग होने लगा। ब्रजभाषा की एकरूपता नष्ट हो गई और छन्दोपयोगी बनाने के लिए भाषा को खूब तोड़ा-मरोड़ा जाने लगा। अरबी-फारसी के शब्द भी ठूँसे गए। विषय-वस्तु की दृष्टि से भी काव्य पर गहरा प्रभाव पड़ा। कविगण किसी उदात्त एवं शाश्वत विषय को स्वीकार करके काव्य-रचना करने के स्थान में राजा-महाराजाओं की प्रशंसा तक ही सीमित हो गए और किसी ऐतिहासिक, धार्मिक या

नैतिक आख्यान को वे अपने काव्य का विषय न बना सके। फलतः प्रबन्ध-काव्य-रचना की परम्परा समाप्त हो गई और स्फुट छन्दों में मुक्तक प्रणाली का प्रचार हो गया।

इस काल में काव्य-कला का अधिक प्रदर्शन होने के कारण हिन्दी में रीति-ग्रन्थो का भी निर्माण हुआ। इन रीति-ग्रन्थो के निर्माण के लिए हिन्दी-कवियो ने सस्कृत के ग्रन्थो का सहारा लिया। किन्तु संस्कृत के इस 'सहारे' ने उनकी स्वतंत्र प्रतिभा के विकास का मार्ग कुण्ठित कर दिया। उनके सामने सस्कृत आचार्यों के लक्षण-ग्रन्थ उपस्थित थे, इसलिए उन्हे रीति-ग्रन्थों, रस और अलकार आदि विषयो की पुस्तकों के सम्बन्ध मे अधिक परिश्रम नही करना पड़ा। बहुत से हिन्दी के कवियो ने तो सस्कृत के ग्रन्थो का सहारा लेकर पुस्तकों की रचना की और स्वतंत्र अथवा मौलिक रूप से इस क्षेत्र मे कुछ भी कार्य नही किया। यदि हिन्दी वाले उतना विवेचन और करते तो हिन्दी-साहित्य का यह अंग अधिक प्रौढ़ और पूर्ण हो जाता। किन्तु इस समय आचार्यों ने विवेचना की परिपाटी त्यागकर पद्यों मे सक्षिप्त तथा कभी-कभी अपूर्ण और काम चलाऊ मात्र लक्षण और परिचय देकर उनके उदाहरण-निर्माण में अधिक प्रतिभा लगाई। परिणाम यह हुआ कि इस युग का निर्माण, उदाहरणो की दृष्टि से ललित होने पर भी शास्त्रीय दृष्टि से अपरिपक्व एवं अप्रौढ़ ही रहा।

पर इतना तो अवश्य कहा जायगा कि शास्त्रीय विवेचन को दृष्टि से महत्त्वहीन होने पर भी ललित काव्य-रचना की दृष्टि से (चाहे उनका निर्माण उदाहरण के लिए ही क्यों न हुआ हो) यह युग पर्याप्त समृद्ध रहा है। शृङ्गार रस की अति सरस एवं लालित्यपूर्ण रचनाओं के विपुल साहित्य का इस काल में निर्माण हुआ है। देव, बिहारी, मतिराम, पद्माकर आदि की अनेक रचनाएँ अत्यन्त स्मरणीय है।

इस युग मे दो प्रकार के कवि हुए—एक तो वे, जिन्होंने काव्य-लक्षण लिखकर उदाहरण दिये है, इनमे भूषण, देव आदि है। दूसरे

वे, जिन्होने केवल उदाहरण दिये हैं, उनमें बिहारी आदि है। यद्यपि केशवदास से पूर्व कृपाराम आदि रीति-ग्रन्थ लिख चुके थे, किन्तु उनका प्रचार तथा लक्षण-निर्माण मे प्रयोग प्राय. बहुत कम हुआ, इसलिए केशवदास ही रीति-ग्रन्थो के सर्वप्रथम आचार्य माने जाते है। अब हम इस युग के प्रमुख कवियो और उनकी रचनाओ का उल्लेख करेंगे।

केशवदास—आचार्य केशवदास का जन्म स० १६१२ में और मृत्यु १६७४ मे हुई। काल की दृष्टि से केशव का समय भक्ति युग ठहरता है, किन्तु विषय तथा काव्य-शैली की दृष्टि से हम इनको रीति-काल का प्रवर्त्तक मानते है, अतः इनका उल्लेख शृङ्गार युग में किया जा रहा है। ये ओरछा नगर के सनाढ्य ब्राह्मण पडित काशीनाथ के पुत्र थे और ओरछा-नरेश महाराज रामसिह के भाई इन्द्रजीतसिंह के आश्रित थे। ये सस्कृत के अच्छे पडित थे। संस्कृत का ज्ञान इन्हे पैतृक सम्पत्ति के रूप में ही मिला था। स्वय केशवदास ने अपने कुल की परम्परा के विरुद्ध हिन्दी मे कविता करने के लिए खेद प्रकट किया है :

भाषा बोलि न जानहि, जिनके कुल के दास।
तिन भाषा कविता करी, जड़मति केशवदास॥

यद्यपि इनसे पूर्व शृङ्गार-काव्य की रचनाएँ आरम्भ हो चुकी थीं, तथापि इन्होने 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' में काव्यागों का जैसा शास्त्रीय विवेचन किया है, वैसा अब तक किसी ने नही किया। केशव ने दण्डी और रूपक का आधार लेकर प्राचीन काल की अवस्था का प्रतिपादन किया था। उस अवस्था मे अलकार्य (विषय) और अलंकारादि का भेद न था। इन्होने रस को भी अलकार ही माना था। किन्तु उनकी 'कविप्रिया' में अलकार का अर्थ व्यापक था। उनके रचे इस समय सात ग्रन्थ प्राप्त है—'कविप्रिया', 'रसिकप्रिया', 'रामचन्द्रिका', 'विज्ञान गीता,' 'वीरसिंह देव चरित', 'रतन बावनी' और 'जहाँगीर जसचन्द्रिका'।

'रामचन्द्रिका' एक प्रबन्ध-काव्य है, किन्तु प्रबन्ध-काव्य में जिस शृङ्खला की अपेक्षा की जाती है, उसका इसमें अभाव है। जगह-जगह

पर शृङ्खला विशृङ्खल होती रहती है। सुहृद कवि न होने के कारण उनकी रचना मे भावुकता और सहृदयता नही। अलकारो की इतनी भरमार है कि उनके आगे भाव का अस्तित्व लुप्त सा हो गया है। एक दरबारी कवि होने के कारण केशवदास जी ने बाहरी तडक-भडक और कृत्रिम दृश्यावली अथवा राजसी ठाट-बाट का ही वर्णन अधिक किया, प्राकृतिक दृश्यो का नही। 'राम चन्द्रिका' मे अपने पाडित्य का प्रदर्शन करने के कारण वे प्रबन्ध-काव्य की आवश्यकताओ का भी ध्यान न रख सके, अत· 'राम चन्द्रिका' को महाकाव्य बनाने मे वे सर्वथा असफल रहे। वास्तव मे प्रतिभा-सम्पन्न कवि की दृष्टि से उनका स्थान इतना ऊँचा नही, जितना आचार्यत्व की दृष्टि से है। उनकी रचना का नमूना देखिए :

राघव की चतुरंग चमू चम, को गनै केसव राज समाजन।
सूर तुरंगन के उरझें पग तुंग पताकिन की पट साजन॥
टूट परै तिनके भुक्ता, धरनी उपमा बरनी कवि राजन।
बिन्दु किधौ मुख फेनन के किधौं राजसिरी स्रवै मंगल लाजन॥

चिन्तामणि—इनका जन्म १६६६ में कानपुर जिले के अन्तर्गत तिकवाँपुर नामक ग्राम मे हुआ था। इनके पिता का नाम पडित रत्नाकर था। ये प्रसिद्ध कवि भूषण और मतिराम के भाई थे। इनके बनाये हुए पाँच ग्रन्थ उपलब्ध है—'काव्य-विवेक','काव्य-प्रकाश', 'कवि-कुल-कल्पतरु', 'रामायण' और 'छन्द विचार'। चिन्तामणि ने काव्य के प्राय· सभी अंगों पर ग्रन्थ रचना की। इनकी कविता बडी सरस तथा अलकारपूर्ण है। ये मकरन्दशाह के आश्रित थे। शाहजहाँ और रुद्रशाह सोलकी से इन्हे अतुल धन मिला था। चिन्तामणि की गणना तत्कालीन उत्कृष्ट कवियो में की जाती है। उनकी कविता का नमूना देखिए

आँखन मूँदिबे के मिस आनि अचानक दीठि उरोज लगावै।
कै हूँ कहूँ मुसकाय चितै अँगराय अनूपम अंग दिखावै॥

नाह छुई छल सों छतियाँ, हँस भौंहि चढ़ाय आनन्द बढ़ावै।
जोबन के मद मत्त तिया हित सों पति को नित चित्त चुरावै॥

महाराज जसवन्तसिंह—मारवाड के प्रतापी नरेश महाराज जसवन्तसिंह का जन्म सं० १६८३ मे हुआ था। ये साहित्य के अच्छे मर्मज्ञ और तत्त्व-ज्ञान-सम्पन्न पुरुष थे। इन्होंने स्वय भी अनेक ग्रन्थ लिखे तथा दूसरे विद्वानो से भी लिखवाये। इनका 'भाषा-भूषण' नामक अलकार-ग्रन्थ बहुत प्रचलित है। 'भाषा-भूषण' के अतिरिक्त इन्होने तत्त्व-ज्ञान-सम्बन्धी और भी ग्रन्थ लिखे है। इनकी विशेषता यह है कि इन्होने अपने को आचार्य-कोटि तक ही सीमित रखा। इन्हे कवि-कोटि मे नही रखा जा सकता। 'चन्द्रा लोक' की छाया पर अपना 'भाषा-भूषण' ग्रन्थ रचकर इन्होने अलंकारो की सुन्दर पाठ्य-पुस्तक तैयार की।

बिहारीलाल—इनका जन्म सं० १६६० मे ग्वालियर के निकट बसुवा गोविन्दपुर नामक ग्राम मे हुआ। ये माथुर चोबे थे। ये जयपुर के महाराज जयसिंह के दरबार मे रहा करते थे। इन्होने अधिकतर रचना दोहो मे की है। ये शृङ्गार-रस के उत्कृष्ट कवि थे। कहते है कि महाराज जयसिंह इनके सरस दोहो पर मुग्ध होकर इन्हे प्रत्येक दोहे पर एक-एक अशर्फी देते थे। इन्होने 'बिहारी सतसई' की रचना की है, जिसमे शृङ्गार-रस के सात सौ दोहो का सग्रह है।

'बिहारी सतसई' हिन्दी-साहित्य का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इस पर अनेक विद्वानो ने टीकाएँ की है। बिहारी की रचना की विशेषता यह है कि वे अपनी वाग्-विदग्धता और शब्द-चमत्कार से एक-एक दोहे में बडी ऊँची उडान भरते थे। उनका काव्य 'गागर मे सागर' के समान है। फिर भी बिहारी की कविता मे शृङ्गार की प्रधानता है, प्रेम की अनाविल उच्च भूमि पर वे नही पहुँचे है।

बिहारी की विशेषता इसमे है कि उन्होने हिन्दी का सबसे लघु छन्द दोहा अपनाया और उसमे प्रवाह तथा मादकता का पूर्ण रूप से समावेश करके कवित्त तथा सवैये-जैसी व्यापकता पैदा कर दी। गागर

अनियारे दीरघ दृगनि, किती न तरुनि समान।
वह चितवन औरै कछू, जिहि बस होत सुजान॥
सखी सिखावत मान विधि, सैननि बरजति बाल।
हरुए कहि मो हिय बसत, सदा बिहारीलाल॥
मेरी भव बाधा हरो राधा नागरि सोय।
जा तन की झाँई परै स्याम हरित दुति होय॥

मतिराम—ये शृङ्गार युग के प्रमुख कवि तथा भूषण और चिन्तामणि के भाई थे। इनका जन्म सं० १६७४ के लगभग तिकवाँपुर (जिला कानपुर) मे हुआ। ये बूँदी के महाराज भावसिह के आश्रित थे। 'ललित ललाम' इनका प्रसिद्ध अलकार-ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त 'छन्द-सार', 'रस राज', 'साहित्य सार' और 'लक्षण शृङ्गार' भी इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इन्होने 'बिहारी सतसई' के ढग पर 'मतिराम सतसई' भी लिखी, किन्तु उसमे बिहारी-जैसी सरसता नही आ सकी।

मतिराम की रचना की विशेषता यह है कि उसकी सरसता अत्यन्त स्वाभाविक है। उसमे न तो भावो की कृत्रिमता है और न भाषा की। उनकी भाषा आडम्बर-हीन है। केवल चमत्कार दिखाने के लिए उन्होने दोहो के अतिरिक्त कवित्त और सवैये भी लिखे है। उनकी रचना का उदाहरण नीचे दिया जाता है :

दोऊ अनन्द सों आँगन माँझ बिराजै असाढ़ की साँझ सुहाई।
प्यारी के बूझत और तिया को अचानक नाम लियौ रसिकाई॥
आई उनै मुँह मे हँसि कोहि, तिया पुनि चाप सी भौंह चढ़ाई।
आँखन तें गिरे आँसू के बूँद, सुहास गयो उड़ि हंस की नाईं॥

भूषण—शृङ्गारयुगीन परम्परा मे वीर रस का प्रवर्तन करने वाले आप सर्वश्रेष्ठ कवि है। इनका जन्म सं० १६७० मे तिकवाँपुर में हुआ। चित्रकूट के सोलकी राजा रुद्र ने इन्हे कवि भूषण की उपाधि दी थी, तभी से ये भूषण के नाम से प्रसिद्ध हुए : **'कवि भूषण पदवी दई, हृदय राम सुत रुद्र।'** भूषण कई राजाओ के यहाँ रहे है, अन्त में इन्होने

अपने वीर काव्य का नायक छत्रपति शिवाजी को बनाया। शिवाजी ने इन्हे एक-एक छन्द पर लाखो रुपए दिए। पन्ना के महाराज छत्रसाल के यहाँ भी भूषण का बडा मान हुआ। कहा जाता है कि छत्रसाल ने इनकी पालकी मे अपना कन्धा लगाया था। तभी इन्होने कहा था

शिवा को बखानों कि बखानों छत्रसाल को।

भूषण की विशेषता यह है कि उन्होने ऐसे काल मे, जब कि शृङ्गार के अतिरिक्त लोगो को कुछ सूझता ही नही था, वीर-रस की कविता को अपनाया। साथ ही उनके वीर-रस-पूर्ण उद्गार सारी जनता के हृदय की सम्पत्ति बने। कारण, उन्होंने जिन दो वीर नायको की वीरता को अपने काव्य का विषय बनाया, वे अन्याय-दमन मे तत्पर, हिन्दू-धर्म के सरक्षक और और इतिहास-प्रसिद्ध वीर थे। इनके प्रति जनता की पूरी सहानुभूति थी। भूषण की कविता मे झूठी खुशामद या प्रशसा नही है, वरन् एक सत्यता है, तभी वह इतनी लोकप्रिय हो गई। भूषण को हिन्दी-साहित्य का प्रारम्भिक जातीय या राष्ट्रीय कवि भी कहा जाता है। भूषण ने मुगल-साम्राज्य की स्थापना के बाद भी भारतीय गौरव, सस्कृति, सभ्यता, धर्म और भाषा को प्रतिष्ठित करने वाले वीर हिन्दू राजाओ को प्रोत्साहित किया और छत्रपति शिवाजी तथा छत्रसाल की प्रशसा करके हिन्दू, हिन्दी और हिन्द की रक्षा का प्रयत्न किया।

भूषण रचित तीन ग्रन्थ—'शिवराज-भूषण', 'शिवा बावनी' और 'छत्रसाल-दसक' मिलते है। इनमे क्रमश शिवाजी और छत्रसाल की वीरता का वर्णन किया गया है। भूषण की कविता वीर-रस का साकार रूप है। उनके युद्ध-वर्णन मे युद्ध का साक्षात् दृश्य आँखो के सामने आ जाता है। उनकी रचना का उदाहरण नीचे दिया जाता है :

छूटत कमान और गोली तीर बानन के,
मुशकिल होत मुरचान हू की ओट में।

ताहि समय सिवराज हाँकि, मारि हल्ला कियो,
दावा बाँधि परै सल्ला वीर वर जोट में॥
'भूषण' भनत तेरी हिम्मत कहाँ लौं कहै,
किस्मत जहाँ लगि है जाकी भट ओट मे।
ताव दै-दै मूँछन, कँगूरन पै पाँव दै-दै,
अरि मुख घाव दै-दै, कूद पड़े कोट मे॥

कुलपति मिश्र—ये महाकवि बिहारीलाल के भानजे थे और आगरा के रहने वाले थे। ये जाति के चौबे थे और इनके पिता का नाम परशुराम मिश्र था। ये महाराज जयसिह के पुत्र रामसिह के दरबारी कवि थे। इन्होने 'रस-रहस्य' नामक रस-सम्बन्धी ग्रन्थ लिखा है। 'रस-रहस्य' की रचना मम्मटाचार्य के 'काव्य-प्रकाश' की छाया लेकर की गई है। इसके अतिरिक्त इनके 'द्रोण-पर्व','मुक्ति-तरंगिणी', 'नख-शिख', 'सग्रह-सार', 'गुण-रस-रहस्य' नामक ग्रन्थो का और पता चलता है। मिश्रजी का कविता-काल सवत् १६२४ से १७४३ के बीच माना जाता है।

देवदत्त (देव)—महाकवि देव इटावा के रहने वाले थे। **द्यौसरिया कवि देव को, नगर इटावा वास।** ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका जन्म-सं० ११३० के आस-पास माना जाता है। शृङ्गार युग के कवियो मे देव का ऊँचा स्थान है। जितने ग्रथ देव ने लिखे है, उतने तत्कालीन किसी कवि ने नही लिखे। इन्होने सोलह वर्ष की अवस्था मे 'भाव-विलास' की रचना की थी। इन्होने लगभग ७२ ग्रन्थ लिखे है। इनके रीति-ग्रन्थो मे 'काव्य-रसायन' और 'शब्द-रसायन' प्रसिद्ध है। हिन्दी के रसवादी कवियो मे देव का स्थान सर्व-श्रेष्ठ माना जाता है। प्रेम का लक्षण, स्वरूप, महत्त्व, तथा विविध रूपो का वर्णन करने मे देव ने जिस सूक्ष्म पैठ का परिचय दिया है वैसा और कोई कवि नही दे सका। नायिका-भेद और 'नख-शिख' पर और देव की रचनाओं की तुलना कोई कवि नही कर सकता।

शृङ्गारिक चमत्कार के साथ उनके काव्य में ज्ञान और वैराग्य का भी पुट दीख पडता है। कदाचित् वृद्धावस्था मे उनकी वृत्तियाँ वैराग्योन्मुख हो गई होंगी और उसी के फलस्वरूप उन्होने भक्ति, ज्ञान और वैराग्य के पद लिखे हों। देव की भाषा प्राजलप्रौढ, कोमल और प्रभावपूर्ण है। ब्रजभाषा का माधुर्य और लोच उसमें भरा पडा है। शब्दों की नैसर्गिक छटा और पदो की तरलता को देखकर लगता है कि ब्रजभाषा को इन्होने सिद्ध कर लिया था। अलंकार और गुणो का अपने काव्य में उन्होने आचार्य होने के कारण इतना प्रचुर परिणाम में समावेश किया है कि वह इनके पाडित्य की छाप डाले बिना नही रहता। श्रुति-कटु और दुष्ट शब्द इनकी रचनाओं मे नही मिलते। शृङ्गार युग का पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व करने वाले प्रतिभा-सम्पन्न लेखको में देव का स्थान उल्लेखनीय है। उनमें शृङ्गार युगीन काव्य-परम्परा की समस्त शक्तियाँ और कमजोरियाँ एक साथ देखने को मिलती है।

देव कोरे कवि ही नही थे, आचार्य भी थे। इनके रीति-ग्रन्थों में काव्यांगों का बडा सुन्दर निरूपण किया गया है। इनकी कविता में इनकी सूक्ष्म प्रतिभा, मौलिकता और पाण्डित्य के दर्शन होते है। इन्होंने शाब्दिक उड़ानें नही भरी है, बल्कि भावो की गहराई तक पहुँचकर कविता को स्वाभाविक बना दिया है। इनकी भाषा ब्रजभाषा थी। देव और बिहारी को लेकर हिन्दी-जगत् में जो वाद-विवाद चला था, वह सर्व विदित है। मिश्रबन्धुओं ने 'देव और बिहारी' नाम का बहुत सुन्दर आलोचना-ग्रन्थ लिखा है, जिसमें देव को बिहारी से ऊँचा स्थान दिया गया है। इनकी कविता का उदाहरण दिया जाता है :

धार में ज.य धँसी निराधार ह्वै, जाय फँसी उकसी न अँधेरी।
री! अँगराई गिरी गहरी, गहि फेरि फिरी न घिरी नहिं घेरी॥
'देव' कछू अपनो बसु ना, रस लालच लाल चितै भई चेरी।
बेग ही बूड़ि गई पखियाँ, अँखियाँ मधु की मखियाँ भईं मेरी॥

भिखारीदास—इनका कविता-काल सं० १७८५ से १८०७ तक

माना जाता है। ये जाति के कायस्थ और प्रतापगढ के पास डोंगा नामक ग्राम के निवासी थे। दास जी की गणना उच्चकोटि के कवियोंमे की जाती है। इन्होंने अपनी कविता में विषय का प्रतिपादन और भाव-प्रदर्शन बड़ा सुन्दर किया है। इनकी भाषा शब्दाडम्बर और चमत्कार से रहित है। इनका 'काव्य-निर्णय' नामक ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। जिसमें प्रायः सभी काव्यांगों का विवेचन किया गया है। इसमें काव्य के गुण तथा शब्द की शक्ति पर भी विचार किया है।

'काव्य-निर्णय' के अतिरिक्त दास जी के 'रस साराश,' 'छन्दार्णव-पिंगल', 'शृङ्गार-निर्णय', 'नाम प्रकाश,' 'छन्द प्रकाश,' 'अमर प्रकाश,' 'पुराण-भाषा,' और 'शतरंज शतक' नामक ग्रन्थो का भी पता चलता है।

श्रीपति—ये कवि होने के साथ-साथ ऊँचे दर्जे के आचार्य भी थे। इन्होने 'काव्य-सरोज' नामक रीति-ग्रन्थ बनाया, जिसका रचना-काल स० १७७७ माना जाता है। इसके अतिरिक्त इनके ६ काव्य-ग्रन्थ और है, जिनके नाम ये है—'कवि-कल्पद्रुम', 'रस-सागर', 'अलंकार गगा', 'सरोज कलिका', 'अनुप्रास-विनोद', और 'विक्रम-विलास'।

श्रीपति के ग्रन्थो में काव्य के प्रत्येक अग का विशद निरूपण किया गया है। इन्होंने काव्य के दोष भी दिखाए है और दोषो के उदाहरण मे केशवदास के बहुत से दोषयुक्त पद्य रखे गए है। इससे ज्ञात होता है कि ये साहित्य का सम्यक् ज्ञान रखने वाले, स्पष्ट-बोधी तथा स्वतन्त्र विचार रखने वाले आचार्य थे। यदि उस समय गद्य में व्याख्या की पारिपाटी चल गई होती तो वास्तव मे इनका आचार्यत्व और भी अधिक पूर्णता के साथ प्रकट होता।

तोष निधि—ये शृङ्गवेरपुर के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम चतुर्भुज शुक्ल था। इन्होने स० १६६१ मे रस-भेद और भाव-भेद-सम्बधी 'सुधानिधि' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इसके अतिरिक्त इन्होने 'विनय-शतक' और 'नख-शिख' नाम से दो पुस्तके और लिखी है।

इनके लक्षण बडे सुलभ और शास्त्रयुक्त है। ये बडे सहृदय थे।

रसलीन—ये हरदोई जिले के अन्तर्गत बिलग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम गुलाम नबी था। इन्होने स० १७९४ मे 'अंग-दर्पण' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इसके अतिरिक्त इन्होने 'रस-प्रबोध' की रचना भी की, जिसमे रसो का निरूपण दोहो में किया गया है। इनकी कविता म सूक्तियो का चमत्कार बडा सुन्दर होता है। इनके दोहे वास्तव मे बिहारी की टक्कर के होते थे। उदाहरण के लिए देखिए

अमिय हलाहल मद भरे, स्वेत स्याम रतनार।
जियत-मरत झुकि-झुकि परत, जेहि चितवत इक बार॥

दूलह—ये उदयनाथ कवीन्द्र के पुत्र थे। इनका रचना-काल स० १८०० से १८२५ के लगभग माना जाता है। दूलह ने कवित्त और सवैयो मे 'कवि-कुल कण्ठाभरण' की रचना की। इस ग्रन्थ मे अलकारो का स्पष्ट और सुबोध विवेचन किया गया है। इन्होने एक ही छन्द मे लक्षण और उदाहरण दिए है। दूलह के सम्बन्ध मे यह प्रसिद्ध है: **'और बराती सकल कवि, दूलह दूलहराय'**। इनकी रचना मधुर, मार्मिक और प्रौढ होती थी। उदाहरण देखिए

माने सनमाने तेइ माने सनमाने सन,
माने सनमाने सनमान पाइयतु है।
कहै कवि 'दूलह' अजाने अपमाने,
अपमान सों सदन तिनही को छाइयतु है॥
जानत है जेऊ तेऊ जात है बिराने द्वार,
जानि-बूझि भूले तिनको सुनाइयतु है।
काम बस परे कोऊ गहत गरूर तो वा,
अपनी जरूर जा जरूर जाइयतु है॥

बेनी बन्दीजन ये बेती के रहने वाले थे और अवध के प्रसिद्ध वजीर महाराज टिकैतराय के आश्रय मे रहते थे। उन्ही के नाम पर

इन्होने 'टिकैतराय-प्रकाश' नामक अलंकार-ग्रन्थ बनाया। इसका रचना-काल स० १८४९ है। इनका दूसरा ग्रन्थ 'रस-विलास' है, जिसमें रसो का निरूपण किया गया है। ये हास्य-रस के प्रसिद्ध कवि थे। इनकी हास्यरस की रचनाएँ 'भडौवा सग्रह' मे संगृहीत है। इनका रचना-काल १८४९ से १८८० तक माना जाता है। इनके हास्य रस का उदाहरण देखिए :

आध पाव तेल में तैयारी भई रोशनी की,
आध पाव रुई में पोशाक भई वर की।
आध पाव छाले के गिनौरा दियो भाइन को,
माँगि-माँगि लायौ है पराई चीज घर की॥
आधी-आधी जेरि 'बेनी कवि' की बिदाई कीनी,
ब्याह आयौ जब तै न बोले बात थिर की।
देखि-देखि कागद तबीयत सुमादी भई,
सादी कहा भई बरबादी भई घर की॥

बेनी प्रवीन—ये लखनऊ के वाजपेयी ब्राह्मण थे। इन्होंने सं० १८७४ मे 'शृङ्गार-भूषण' नाम का ग्रन्थ बनाया। इसके पश्चात् 'नवरस-तरग' की रचना की, जिसमें रसो के निरूपण के साथ-साथ शृङ्गार और नायिका-भेद का भी वर्णन है। इनकी भाषा बहुत साफ-सुथरी और प्रवाहमयी है। ये ब्रजभाषा के मतिराम-जैसे कवियों के समकक्ष है। और भाषा तथा भाव के माधुर्य मे कही-कही तो ये पद्माकर से भी बढ़ गए है। इनकी कविता का नमूना देखने ही योग्य है

घनसार पटीर मिलै-मिलै नीर चहै तन लावै-न-लावै चहै।
न बुझै बिरहागिनि झार-झरी हू चहै घन लावै-न-लावै चहै॥
हम टेरि सुनावतीं 'बेनी प्रवीन' चहै मन लावै-न-लावै चहै।
अब आवै बिदेस तै पीतम गेह, चहै धन लावै-न-लावै चहै॥

पद्माकर—इनका जन्म स० १८१० मे बाँदा नामक स्थान पर हुआ और मृत्यु १८९० में हुई। इनके पिता का नाम मोहनलाल भट्ट

था। शृङ्गारयुगीन परम्परा मे ये सर्वोत्कृष्ट कवि हुए है। इनका 'जगद्विनोद' नामक ग्रन्थ बडा प्रसिद्ध है। इनकी कविता में भावुकता और कल्पना दोनो का मधुर मिलन है। भाषा के प्रत्येक रूपों पर इनका पूर्ण अधिकार था।

'जगद्विनोद' के अतिरिक्त इनके–'पद्माभरण', 'हितोपदेश', 'राम-रसायन', 'प्रबोध पचासा' और 'गगा लहरी' आदि अच्छे ग्रन्थ है। इनकी कविता की बानगी लीजिए :

फागु की भीर अभीरन मे गहि, गोंविदै लै गई भीतर गोरी।
भाई करी मन की 'पद्माकर', ऊपर नाई अबीर की झोरी॥
छीनि पीतम्बर कम्मर तै, सुविदा दई मीड़ि कपोलन रोरी।
नैन नचाय कही मुसुकाय, 'लला फिर आइयो खेलन होरी'॥

ग्वाल—ग्वालि कवि मथुरा-निवासी थे। इनके पिता का नाम सेवाराम भट्ट था। ये ब्रजभाषा के अच्छे कवि थे। इन्होने ऋतु-वर्णन अच्छा किया है, साथ ही शृङ्गार के भी सुन्दर चित्र खीचे है। ग्वाल कवि-रचित 'रसिकानन्द,' 'रस-रंग',' कृष्णजू का नख-शिख' और 'कृष्ण-दर्पण' नामक चार ग्रन्थ है। इनके अतिरिक्त 'यमुना-लहरी', 'गोपी-पचासा' आदि और भी छोटे-छोटे ग्रन्थो की रचना की है।

वृन्द—ये मेडता (जोधपुर) के निवासी थे और हरणगढ-नरेश महाराज राजसिंह के गुरु थे। इन्होने सं० १७५१ में 'वृन्द-सतसई' की रचना की, जिसमे नीति के सात सौ सुन्दर दोहो का सग्रह है। इसके अतिरिक्त 'शृङ्गार-शिक्षा' और 'भाव-पचासिका' नाम की पुस्तकें भी इन्हीं की बनाई हुई है।

प्रतापसाहि—आपका जन्म-सवत् आपके कविता-काल के आधार पर १८३० के आस-पास ठहरता है। आपका ग्रन्थ-रचना-काल सवत् १८५२ से १९०० तक है। आप चरखारी राज्य के अधिपति महाराज विक्रमशाह के यहाँ रहते थे। इन्होंने 'व्यग्यार्थ-कौमुदी' और 'काव्य-विलास' नामक दो प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थो की रचना की। इनके अतिरिक्त 'शृङ्गार-

मजरी', 'अलकार-चिन्तामरिण', 'काव्य-विनोद', 'रत्नचन्द्रिका' आदि इनके और भी कई रीति-ग्रन्थ उपलब्ध होते है। इनकी कविता मे आचार्यत्व का समावेश बहुत उच्च-कोटि का है। कवित्व के साथ-साथ आचार्यत्व का निर्वाह करने मे इनकी गणना शृङ्गारयुगीन श्रेष्ठ कवियो मे की जाती है। भाषा में सरसता, प्रवाह और माधुर्य इतने नैसर्गिक रूप मे है कि हम कह सकते है शृङ्गार युगीन दो-तीन कवियो को छोडकर किसी मे भी वैसा प्रवाह उपलब्ध नही होता। पदो के अन्तिम चरण तो बहुत ही गठे हुए, सुथरे और गतिपूर्ण होते है—एक उदाहरण देखिये।

चंचला-चपला चारु चकमत चारों ओर,
झूमि-झूमि पुरवा धरनि परसत है।
सीतल समीर लागै दुखद वियोगन्हि,
संयोगन्हि समाजसुख-साज सरसत है॥
कहै 'परताप' अति निबिड़ अँधेरों माँहि,
मारग चलत नाँहि नेकु दरसत है।
घुमड़ि झलान चहुँ कोप तें उमड़ि आज,
धाराधर धारन अपार बरसत है॥

बनवारी—इनका समय सं० १६९० से १७०० के आस-पास माना जाता है। इन्होने अमरसिह राठौर की बडी प्रशसा की है। इनका कोई ग्रन्थ उपलब्ध नही है। हाँ, स्फुट कविताएँ अवश्य मिलती है, जिनसे इनकी भाषा और भावों की सुन्दरता का परिचय मिलता है।

सबलसिंह चौहान—इन्होंने महाभारत की कथा दोहा-चौपाइयो में लिखी है। जिसका रचना-काल १७१८ से १७८१ तक माना गया है। भाषा सरल और सुबोध है। कविता जन-साधारण के मतलब की है।

गुरु गोविन्दसिंह—ये सिखो के दसवे और अन्तिम गुरु थे। वीर सैनिक होते हुए भी ये बडे साहित्य-प्रेमी थे। स्वय भी अच्छी कविता करते थे। इनका रचा हुआ 'चण्डी-चरित' प्रसिद्ध है, जिसकी रचना बड़ी ओजपूर्ण है। ये बड़ी शुद्ध और साहित्यिक ब्रजभाषा लिखते

थे। 'चण्डी-चरित' के अतिरिक्त इनके 'सुमति प्रकाश,' 'सर्वलोह,' 'प्रेम सुमार्ग,' और 'बुद्धि सागर' ग्रन्थ भी अच्छे है।

घनानन्द—इनका जन्म सवत् १७४६ मे और मृत्यु सवत् १७९६ मे हुई। ये जाति के कायस्थ थे और दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के मीर मुन्शी थे। कहते है कि पहले ये सुजान नामक वेश्या पर आसक्त थे, बाद में ज्ञान होने पर ये विरक्त होकर वृन्दावन चले गए और वैष्णव सम्प्रदाय मे सम्मिलित हो गए। इनके लिखे हुए—'सुजान सागर', 'विरह-लीला', 'कोक सार', 'रसकेलि-वल्ली' और 'कृपा काड' आदि पाँच ग्रथ है। इनकी भाषा शुद्ध ब्रजभाषा थी। ये वियोग शृङ्गार के प्रधान कवि थे। इनकी कविता का उदाहरण निम्न है

अति सूधो सनेह को ..रग है, जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहँ साँचे चलै तजि आपनपौ, झिझकै कपटी जो निसाँक नहीं॥
'घन आनन्द' प्यारे सुजान सुनौ, इत एक तै दूसरौ आँक नहीं।
तुम कौन सी पाटी पढ़े हो लला, मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं॥

गिरधर कविराय—इनका जन्म सवत् १७७० बताया जाता है। इनकी नीति-सम्बन्धी कुण्डलियाँ बहुत प्रसिद्ध है। सरल और सुबोध भावों मे होने के कारण सर्वसाधारण में इनका बहुत प्रचार है। व्यावहारिक बातों को कविता मे लिखना ही इन्हे कवि-कोटि मे पहुँचाता है। काव्य का पुट कुडलियो में नही है।

दीनदयाल गिरि—इनका जन्म सवत् १८५९ मे काशी मे हुआ था। ये जाति के गुसाई थे। सस्कृत के भी अच्छे मर्मज्ञ थे। इनका 'अन्योक्ति कल्पद्रुम' हिन्दी-जगत् मे बहुत प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'विश्वनाथ नवरत्न', 'अनुराग बाग,' 'वैराग्य दिनेश', 'दृष्टान्त तरगिनी' आदि की भी रचना की है। अपनी अन्योक्तियो के कारण ये बड़े प्रसिद्ध है। अन्योक्ति अलकार को जिस रूप में गिरिजी ने अपनी कुडलियो में रखा वैसा अन्य कोई नही रख सका। इनकी कुडलियो मे काव्यत्व की छाप है

बरखै कहा पयोद इत मानि मोद मन माँहि।
यह तो ऊसर भूमि है अंकुर जमिहै नाँहि॥
अंकुर जमिहै नाँहि बरष जो सतजल जैहे।
गरजै तरजै कहा? बृथा तेरो स्रम जैहै॥
बरनै 'दीनदयाल' न ठौर-कुठौरहि परखै।
नाहक गाहक बिना, बलाहक ह्याँ तू बरखै॥

ठाकुर—ठाकुर नाम के दो कवि और हुए है, किन्तु वे इतने प्रसिद्ध नही हुए। प्रस्तुत ठाकुर बुन्देलखण्ड के निवासी थे। इनका जन्म सवत् १८२२ मे ओरछा मे हुआ था। ये जाति के कायस्थ थे और इनका पूरा नाम ठाकुरदास था। शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् ये जयपुर-नरेश के दरबार मे रहने लगे। ये स्वतत्र प्रकृति के देश-प्रेमी कवि थे। इनकी कविता बडी मधुर और स्वाभाविक होती थी। इनकी कविताओ का सग्रह 'ठाकुर-ठसक' के नाम से प्रकाशित हुआ है।

बोधा—इनका जन्म संवत् १८०४ मे राजापुर (जिला बाँदा) मे हुआ। ये सरयूपारीण ब्राह्मण थे। ये पन्ना-दरबार के आश्रित रहते थे। ये बडे रसिक कवि थे। इन्होंने 'विरह वारीश' और 'इश्कनामा' दो पुस्तके लिखी है। इनकी कविता बडी हृदयग्राही और मर्मस्पर्शी होती थी। भाषा भी चलती और मुहाविरेदार है। ये अपने समय के प्रसिद्ध कवि थे। इनकी कविता का उदाहरण निम्न है.

अति छीन मृनाल के तारहु तै, तेहि ऊपर पाँव दे आवनौ है।
सुई बेध के द्वार सकै न तहाँ, परतीत को टाँडो लदावनो है॥
'कवि बोधा' अनी घनी नेजहुँ तै, चढ़ि ता पै न चित्त डरावनो है।
यह प्रेम को पंथ कराल महा, तरवार की धार पै धावनो है॥

आलम—मुसलमान कवियो मे शेख आलम का नाम पर्याप्त प्रसिद्ध है इनके जन्म-सवत् का तो ठीक-ठीक पता नही, किन्तु इनका कविता-काल संवत् १७४० से १७६० तक माना जाता है। इनके विषय मे यह किवदन्ती प्रसिद्ध है कि आप जाति से ब्राह्मण थे। किन्तु एक शेख नाम

की रँगरेजिन (मुसलमान युवती) अच्छी कविता करती थी, उसकी कविता पर मुग्ध होकर उससे विवाह करने के लिए आप भी इस्लाम धर्म मे दीक्षित हो गए। आपकी रचनाएँ 'आलम केलि' नामक पुस्तक मे संगृहीत है।

आलम ने शृङ्गार-परम्परा के अनुसार लक्षरण और उदाहरण नही लिखे। प्रेम के आवेश मे जो भाव आपके हृदय मे आता है उसे उसी रूप मे लिखने मे आपकी पटुता देखी जा सकती है। इसी कारण आपकी रचनाओ मे हृदयत्व की प्रधानता परिलक्षित होती है। शृङ्गार की हृदयहारिणी सरस उक्तियाँ आलम की कविता मे भरी पडी है। एक उदाहरण लीजिए .

जा थल कीन्हे बिहार अनेकन ता थल काँकरी बैठि चुन्यों करै।
जा रसना सो करी बहु बातन ता रसना सों चरित्र गुन्यों करै।।
'आलम' जौन से कुंजन मे करीं केलि तहाँ अब सीस धुन्यों करै।
नैनन मे जे सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यों करै।।

लाल कवि--वीर रस की परम्परा मे भूषण के बाद जिन कवियो का नाम प्रसिद्ध है, उनमे गोरेलाल पुरोहित उपनाम 'लाल कवि' है। आप बुदेलखड के मऊ नामक स्थान के रहने वाले थे आपने महाराज छत्रसाल का जीवन-चरित्र बडी ही ओजस्वी भाषा मे लिखा है। आपकी पुस्तक का नाम 'छत्र प्रकाश' है और वीर-काव्यो में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। पुस्तक मे घटनाओ का कार्यक्रम तो अव्यवस्थित है किन्तु उसकी भाव-भूमि बडी ही सुदृढ़ और परिपक्व है। शिवाजी और छत्रसाल की प्रशसा को भारतीय गौरव का रूप ही कवि ने स्वीकार किया है। 'छत्र-प्रकाश' मे प्रबन्ध-कौशल की न्यूनता नही है जो प्राय. शृङ्गार युग के कवियो मे देखी जाती है।

सूदन— वीर रस के तीसरे कवि माथुर चौबे सूदन है। आप भरत-पुर के महाराज सुजानसिह उपनाम सूरजमल के आश्रित थे और उन्ही

की प्रशंसा मे 'सुजान चरित्र' नामक विशाल काव्य-ग्रंथ रचा है। इनका जन्म-सवत् १७६० के आस-पास ठहरता है।

'सुजान-चरित्र' में सूदन ने तत्कालीन अनेक युद्धो का बड़ा ही ओज-पूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया है। युद्ध आदि के वर्णन मे वस्तु-परिगणन की शैली इनकी विशेषता है। वर्णन का विस्तार और आधिक्य इस कोटि तक है कि पाठक पढ़ते-पढते ऊब जाता है। इनमें वर्णन की प्रतिभा होने पर भी वस्तु-परिगणन और विस्तार के कारण काव्य मे रस की कमी दीख पड़ती है। शब्दों को तोडने-मरोडने की आदत तो इनकी इतनी अधिक है कि भाषा मे कही-कही अत्यधिक भौडापन आ गया है। शृङ्गार युग मे भूषण की परिपाटी को आगे बढ़ाने मे इनका योग अवश्य स्वीकार किया जायगा।

गिरिधरदास -इनका जन्म स० १८६० में हुआ। ये भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के पिता थे। इनका नाम तो लाला गोपालचन्द्र था, किन्तु ये कविता मे 'गिरिधरदास' लिखते थे। ये ब्रजभाषा के बड़े प्रौढ़ कवि थे। इनके पास हमेशा विद्वानो और कवियों का समागम रहता था। भारतेन्दु जी ने इनके लिखे ४० ग्रन्थो का उल्लेख किया है, किन्तु बहुतो का अब पता नही। 'रस रत्नाकर', 'भारती भूषण' और 'भाषा व्याकरण' इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इनकी कविता रसात्मक कम थी और चमत्कारात्मक अधिक। फिर भी इनकी सबसे बड़ी साहित्य-सेवा यही थी कि उन्होने हिन्दी को भारतेन्दु-जैसा पुत्र दिया।

निष्कर्ष

शृङ्गार युग का गम्भीर अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि कला के दृष्टिकोण से यह युग बहुत सम्पन्न रहा है। इसमे कला का बाह्य पक्ष तथा जीवन-सौन्दर्य अत्यन्त अनुरजन के साथ प्रकट हुआ। किन्तु अधिकतर इतिहासकार शृङ्गार युग की बुराई ही करते है। उनका कहना है कि शृङ्गार युग से साहित्य के विस्तृत

विकास मे प्रगति की अपेक्षा बाधा ही अधिक पडी है। कवियों की दृष्टि केवल शारीरिक सौन्दर्य तक ही सीमित रही, प्रकृति की अनेक-रूपता, जीवन की उदात्त एव शाश्वत समस्याओ तथा जगत् के नाना रहस्यो की ओर कवियो का ध्यान ही नही गया। उनकी काव्य-प्रतिभा एक प्रकार से बद्ध और परिमित सी हो गई, उनका क्षेत्र सकुचित हो गया। यह आरोप कहाँ तक सत्य है, हम इस वाद-विवाद मे नही पडना चाहते। फिर भी इतना अवश्य कहेगे कि जितना अधिक काव्य-सौष्ठव तथा प्राकृतिक दृश्य-वर्णन इस युग मे है उतना हिन्दी साहित्य के शायद ही किसी युग मे रहा हो। ऋतु-वर्णन की शैली मे प्रत्येक ऋतु का सौन्दर्य और मनोभावो पर पडने वाले उसके प्रभाव का चित्रण योग और वियोग दोनो रूपो मे बडी सरसता के साथ चित्रित हुआ है। रही जीवन की विविध शाश्वत समस्याओ की बात, सो इस पर चाहे शृङ्गा-रिक अथवा रसिक कवियो ने विशेष न लिखा हो, किन्तु प्रेम और शृङ्गार से सम्बन्ध रखने वाले मनोभावो पर इन्होने पर्याप्त लिखा है। केशवदास ने 'वीरसिह देव चरित', भूषण ने 'शिवराज भूषण', गोरेलाल ने 'छत्र प्रकाश', सूदन ने 'सुजान चरित्र', 'जोधराज ने 'हम्मीर रासो' और पद्माकर ने 'हिम्मत बहादुर विरुदावली', लिखकर राजनीति को दूर से स्पर्श करने के साथ पौरुषमय जीवन का बड़ा स्पष्ट और ओजपूर्ण चित्रण किया है। हमें शृङ्गार युग की केवल शृङ्गारिकता पर ही ध्यान नही देना चाहिए। 'भक्ति युग' और 'वीर-प्रशस्ति युग' की प्रेरणाओ को आत्मसात् करके जीवन के लौकिक पक्ष को कभी राजनीति और कभी प्रेम से मिलाकर अत्यन्त कलात्मक रूप देने का श्रेय शृङ्गार-युग को ही है। यदि शृङ्गारयुगीन कवि प्रकृति-वर्णन को आलम्बन रूप में चित्रित कर पाते तो निस्सन्देह यह युग अपनी विविधता मे भा कई कदम बढ जाता। प्रकृति को केवल उद्दीपन रूप मे स्वीकार करने के कारण शृङ्गारयुगीन कवियों की काव्य-प्रतिभा ही सीमित न हुई वरन् साथ-ही-साथ उनका वर्ण्य विषय भी बहुत सकुचित हो गया, जिसका

कारण यह हुआ कि कविगण नारी रूप के बाह्य पक्ष पर ही रीझकर रह गए। इस सकीर्णता का कारण नर-काव्य-रचना करना ही है, साथ ही फरमाइशी कविता लिखने के कारण इस त्रुटि का होना सहज सम्भाव्य है।

सक्षेप मे हम यही कहेगे कि शृङ्गार युग में साहित्य-शास्त्र की विशेष विवेचना हुई और रसराज 'शृङ्गार' रस की समस्त अनुभूतियो के सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये गए। हिन्दी मे नीति-ग्रथो और काव्य-ग्रथो निर्माण हुआ, चाहे वह सस्कृत-ग्रथो का सहारा लेकर ही किया गया हो। सस्कृत-साहित्य से हिन्दी-साहित्य का जो सम्बन्ध है उसे देखते हुए यह प्रवृत्ति कोई अनुचित भी नही है। हम पीछे बता आए है कि यदि हिन्दी के आचार्य सस्कृत आचार्यो की भॉति इस क्षेत्र मे अधिक विचार और विवेचन करते तो साहित्य का यह अग और भी अधिक प्रौढ और शास्त्र-सम्मत होता। फिर भी जो कुछ हुआ वह न होने से तो अच्छा है। इस युग के कवियो ने शब्द-शक्ति तथा रस की सूक्ष्मता पर ध्यान दिया होता तो हिन्दी-साहित्य और भी अधिक पुष्ट होता।

इस युग मे कवित्त और सवैया-शैली का विशेष प्रचलन हुआ। साथ ही दोहे का भी विकास हुआ। दोहे की उपयोगिता इसी काल मे सिद्ध हुई। इसके अतिरिक्त दोहा, चौपाई, सोरठा आदि की एक प्रबन्धात्मक शैली भी इसी युग मे देखने को मिलती है। इस युग के काव्य में प्रादेशिक सौन्दर्य का भी अभाव नही है। ऋतु-वर्णन में प्रकृति को विविधता का सुन्दर चित्रण देखने को मिलता है। चाहे इस प्रकृति-वर्णन में उद्दीपन की सामग्री अधिक थी, फिर भी उसमे जीवन की नवीनता और सजगता थी।

४

नव चेतना युग

(सं० १६०० से आज तक)

गद्य का विकास

नव चेतना युग को गद्य-काल के नाम से भी पुकारा जाता है। गद्य-साहित्य का आधिक्य ही इस नामकरण का कारण है। किन्तु यथार्थ मे नव चेतना युग के प्रारम्भ मे कविता या पद्य की अपेक्षा गद्य का ही प्राधान्य रहा और हिन्दी-भाषा को राजकीय कार्य तथा साधारण जनता की बोल-चाल की भाषा बनाने के लिए गद्य को विशेष रूप से स्वीकार करना पड़ा। वर्तमान युग से पहले हिन्दी मे थोड़ा-बहुत ब्रजभाषा का गद्य मिलता है उसे हम प्राचीन गद्य के नाम से पुकारते है।

प्राचीन गद्य—प्राचीन काल मे हिन्दी-गद्य की रचना नही के बराबर ही है, किन्तु फिर भी जो थोड़ा-बहुत गद्य लिखा गया वह तत्कालीन ब्रजभाषा मे ही लिखा गया। ब्रजभाषा के प्राचीन गद्य के उदाहरण कुछ गोरखपंथी ग्रन्थो मे देखने को मिलते है, जिनका निर्माण-काल सं० १४०७ के आस-पास है। गोरखपथियो ने अपने धर्म का प्रचार करने के लिए ही इन ग्रन्थो का निर्माण किया था। इसके पश्चात् कृष्ण-भक्ति-शाखा के अन्तर्गत लिखे गए ग्रन्थो मे गद्य का नमूना मिलता है। गोसाई विट्ठलदासजी के ग्रन्थ 'शृङ्गार रस मण्डन' मे गद्य का एक अप्रौढ़ और अव्यवस्थित रूप मिलता है, जिसमे रचना के

नियमों का निर्वाह नही है। इसके पश्चात् वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायियो ने अपने धार्मिक प्रचार के लिए दो बृहत् ग्रन्थ 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' और 'दो सौ बावन वैष्णवो की वार्ता' लिखे। इन दोनो ग्रन्थो के गद्य में अपेक्षाकृत कुछ प्रवाह और प्रौढ़ता पाई जाती है। 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' के लेखक स्वामी विट्ठलनाथ जी बताए जाते है, 'दो सौ बावन वैष्णवो की वार्ता' की रचना औरंगजेब के शासन-काल में हुई है। इसका गद्य पहले के ग्रन्थो से अधिक प्रौढ़ और व्यवस्थित है। इसकी रचना बोल-चाल की भाषा मे हुई है। इसमें फारसी शब्दो का भी प्रयोग किया गया है, फिर भी इस ग्रन्थ द्वारा वर्तमान गद्य की पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी।

स० १६६० में भक्त नाभादास ने 'अष्टयाम' नामक पुस्तक ब्रज-भाषा-गद्य मे लिखी, जिसमे श्रीरामचन्द्र जी की दिनचर्या का वर्णन है। स० १७६७ मे सुरति मिश्र ने सस्कृत कथा से सहारा लेकर 'बैताल पच्चीसी' लिखो। आगे चलकर लल्लूलाल जी ने इसका खडी बोली मे परिवर्तन किया। स०१८५२ मे जयपुर-नरेश सवाई प्रतापसिह की आज्ञा से लाला हीरालाल ने 'आईने अकबरी की भाषा बचनिका' नाम की बडी पुस्तक लिखी। ब्रजभाषा-गद्य का प्रयोग प्राचीन काल मे कुछ टीकाओ मे भी हुआ था। जो अव्यवस्थित और त्रुटिपूर्ण था।

खड़ी बोली का गद्य—सयुक्त प्रान्त के पश्चिमी नगरो और दिल्ली के आस-पास बोली जाने वाली भाषा को खडी बोली कहा जाता है। मुसलमानो के सम्पर्क से इस खड़ी बोली मे उर्दू-फारसी शब्द भी मिल गए थे। जब मुसलमान देश के विभिन्न भागों में फैल गए तो उनकी भाषा और रहन-सहन का प्रभाव हमारी भाषा पर भी पडना अनिवार्य था। अत: दिल्ली मे बोली जाने वाली खडी बोली अब लोगो के व्यवहार मे आने लगी थी। अमीर खुसरो ने खडी बोली मे अपनी पहेलियाँ और मुकरनियां लिखी थी। कुछ लोगो की यह धारणा है कि खडी बोली उर्दू का एक रूप है अथवा इसकी उत्पत्ति मुसलमानो

के आगमन से हुई, किन्तु यह केवल भ्रम और अज्ञान-मात्र है। उर्दू के जन्म से पूर्व भी खडी बोली अपने व्यावहारिक रूप मे प्रचलित थी। सबसे पहले तो कबीर ने खडी बोली का प्रयोग अपनी सधुक्कडी भाषा के रूप में किया। अकबर के समय गग कवि ने 'चन्द-छन्द बरनन की महिमा' खडी बोली मे लिखी थी। स० १७८८ मे रामप्रसाद निरजनी ने खडी बोली मे 'योग वाशिष्ठ' का अनुवाद किया था। स० १८१८ मे मध्य प्रदेश-निवासी प० दौलतराम ने 'पद्म पुराण' का रूपान्तर खडी बोली मे किया। इस प्रकार खडी बोली पहले भी अपने स्वतन्त्र रूप मे विद्यमान थी और अब भी है। किन्तु खडी बोली की निष्पत्ति या व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे विद्वानो मे पर्याप्त मतभेद है। कुछ लोग खडी शब्द से उस भाषा का ग्रहण करते है जिसमे टवर्ग तथा मूर्धन्य अक्षरो का बाहुल्य होता है। और जो सीधी खडी हुई प्रतीत होती है। कुछ लोग 'खडी' शब्द को 'खटी' का रूपान्तर मानते है। कुछ भी हो खडी बोली का प्रचार जिस रूप मे आज हुआ है वह खडी इस्ट्रैट-या खरी से कोई सम्बन्ध नही रखती।

परिवर्तित परिस्थितियाँ

जब अँग्रेजी शासन देश मे पूर्ण रूप से स्थापित हो चुका तो उनके लिए यहाँ की भाषा सीखना आवश्यक था। उस समय यहाँ के शिष्ट समाज मे दो ही भाषाएँ प्रचलित थी। एक तो खड़ी-बोली का सामान्य देशी रूप, जो यहाँ के मूल निवासियो की भाषा का रूप था, दूसरा खड़ी बोली का दरबारी रूप, जो तब फारसी के मिश्रण से उर्दू कहलाने लगा था। अग्रेजो ने यहाँ की सामान्य भाषा अर्थात् खड़ी बोली को ही सीखना आवश्यक समझा और इसके लिए खडी बोली में पुस्तकें निकलवाने की व्यवस्था होने लगी। १८६० में अग्रेजों ने कलकत्ता में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना की। कालेज के हिन्दी-उर्दू अध्यापक लल्लूलालजी से 'प्रेम सागर' और सदल मिश्र से 'नासिकेतोपाख्यान'

लिखाया। अंग्रेजी शासन-काल के प्रारम्भ में ईसाई धर्म-प्रचारकों ने भी हिन्दी-गद्य को अच्छा प्रोत्साहन दिया। उनकी धर्म-पुस्तकों का हिन्दी-रूपान्तर प्राय: खडी बोली-गद्य मे ही हुआ। यो इसके पूर्व भी खडी बोली का प्रयोग 'सैयद इंशाअल्लाखाँ' द्वारा 'रानी-केतकी की कहानी' और 'ज्ञानोपदेश' मे हो चुका था। इस समय खडी-बोली गद्य को प्रगति देने वाले चार लेखक हुए है—मु० सदासुखलाल, सैयद इंशाअल्ला खाँ, लल्लूलाल और सदल मिश्र। ये चारो ही स० १८६० के आस-पास वर्तमान थे।

प्रथम उत्थान : प्राचीन काल

मुन्शी सदासुखलाल—मुन्शी जी का जन्म स० १८०२ में दिल्ली मे हुआ और मृत्यु स० १८८१ मे हुई। ये जाति के कायस्थ थे और जीविकोपार्जन के लिए अधिकतर मिर्जापुर और प्रयाग मे ही रहा करते थे। इन्होने फारसी और उर्दू मे भी पुस्तकें लिखी है। उर्दू मे ये 'नियाज' नाम से लिखते थे। खडी-बोली गद्य के प्रथम लेखक होने के कारण हिन्दी-साहित्य मे इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके सामने भाषा का कोई आदर्श नमूना नही था, इसलिए इनके ग्रन्थो मे तत्सम शब्दो की भरमार है। भाषा को फारसी शब्दो से बचाने का ये बराबर प्रयत्न करते थे। इन्होने 'सुख सागर' और 'सुरासुर निर्णय' नामक दो ग्रन्थ लिखे है।

सैयद इन्शाअल्ला खाँ—इनका जन्म मुर्शिदाबाद मे हुआ। इनके पिता का नाम मीर माशाअल्लाखाँ था। सैयद इशाअल्लाखाँ उर्दू के अच्छे शायर थे। बङ्गाल के नवाब सिराजुद्दौला की मृत्यु हो जाने पर ये दिल्ली चले आए और शाह आलम के आश्रम मे रहने लगे। इन्होनें खडी बोली मे 'रानी केतकी की कहानी' लिखी। 'रानी केतकी की कहानी' इस उद्देश्य से लिखी गई थी कि उसमे **हिन्दवी छुट और किसी बोली का पुट न हो। ''बाहर की बोली और गँवारी कुछ उसमे न हो''**

हिन्दवी भी न निकले और भाखापन भी न हो। भाखापनसे उनका तात्पर्य संस्कृत-मिश्रित हिन्दी से था। यद्यपि सैयद इशाअल्लाखा ने अपनी भाषा को उर्दू-फारसी तथा ब्रज और अवधी आदि गँवारू शब्दो से बचाने का प्रयत्न किया, तथापि उनकी रचना-शैली मे उर्दू का अधिक प्रभाव पडे बिना नही रहा।

लल्लूलाल—इनका जन्म सवत् १८२० मे और मृत्यु १८८२ मे हुई। ये आगरा के रहने वाले गुजराती ब्राह्मण थे। इन्हे हिन्दी और उर्दू दोनो ही भाषाओ का ज्ञान था, साथ ही ये सस्कृत के भी ज्ञाता थे। इन्होने स० १८६० मे फोर्ट विलियम कालेज के अध्यापक जान गिल क्राइस्ट के आदेश से 'प्रेम सागर' लिखा। इसमे श्रीमद्भागवत के दसवे स्कन्ध की कथा का वर्णन है। 'लल्लूलाल' जी की भाषा को हम ठेठ हिन्दी नही कह सकते। अकबर के समय मे गग कवि ने जिस भाषा का प्रयोग किया था, लगभग उसी प्रकार की भाषा इनकी है। कही-कही ब्रजभाषा का भी पुट आ गया है। शैली उनकी कथावाचको-जैसी है। इनकी रचना मे कविता का-सा आनन्द आता है।

सदल मिश्र—ये बिहार के रहने वाले थे, और लल्लूलालजी के साथ ही फोर्ट विलियम कालेज मे काम करते थे। इन्होंने खडी बोली मे 'नासिकेतोपाख्यान' नामक पुस्तक लिखी है। इनकी भाषा व्यावहारिक है। लल्लूलालजी की भाँति ब्रज-मिश्रित तो नही है फिर भी ब्रज और पूर्वी शब्द यत्र-तत्र आ गए है

ईसाई-प्रचारकों और समाचार-पत्रों द्वारा गद्य का प्रचार

गद्य के निर्माण-कर्त्ताओ ने यद्यपि गद्य का मार्ग प्रशस्त कर दिया था, तथापि गद्य-साहित्य के विकास की गति स० १९१५ तक रुकी रही। इसका कारण यह है कि साहित्यिकों और विद्वानो ने इस ओर तनिक भी ध्यान नही दिया। हाँ, खडी बोली के गद्य के निर्माण से ईसाई धर्म के प्रचारको ने अवश्य लाभ उठाया। साधारण जनता मे अपने धर्म का

प्रचार करने के लिए उन्होंने जन-सुलभ भाषा खडी बोली का ही सहारा लिया। उन्होने ईसाई-धर्म-सम्बन्धी बाईबिल आदि पुस्तकों का हिन्दी मे अनुवाद किया। कहते है कि केरे नामक अग्रेज-पादरी ने बाईबिल का हिन्दी-अनुवाद किया था। साथ ही उत्तर भारत की अन्य भाषाओं भी बाईबिल का अनुवाद कराया गया। ईसाई-अनुवादको ने लल्लूलाल और सदासुखलाल की भाषा को ही अपनाया—उन्होने उर्दू-फारसी के शब्दो से भाषा को पूर्णतया समृद्ध बनाया।

हिन्दू जनता को अपने धर्म की ओर आकर्षित करने के लिए ईसाई-धर्म-प्रचारको तथा उनकी सस्थाओ ने पाठशालाएँ भी खोली। सरकार की ओर से भी इन पाठशालाओ को सहायता दी गई। साथ ही सरकारी स्कूल भी खोले गए, जिनमे अग्रेजी के साथ उर्दू-हिन्दी की शिक्षा का भी प्रबन्ध किया गया। इसके लिए हिन्दी की पुस्तकों की आवश्यकता हुई। ईसाइयो ने छापेखाने भी खोले और अनेक विषयो पर गद्य में पुस्तके लिखी गई। इस प्रकार ईसाइयो ने जहाँ हमारी सस्कृति को ठेस पहुँचाई, वहाँ हिन्दी-गद्य के प्रचार मे भी सहयोग दिया।

इसी बीच हिन्दी को विरोधियो का सामना भी करना पड़ा। सवत् १८६० मे एक आज्ञा द्वारा सरकार ने अदालतो मे नागरी लिपि के प्रयोग की आज्ञा मिली। संवत् १८९३ में प्रान्तीय सदर बोर्ड की ओर से यह आज्ञा की गई कि जिसे जिस भाषा मे सुविधा हो, उसी मे आवेदन-पत्र दे। सर सैयद अहमद खाँ ने मुसलमानो के सहयोग से सरकार की इस नीति का तीव्र विरोध किया। जिसके परिणामस्वरूप अदालतों में उर्दू स्वीकृत हो गई। इससे हिन्दी-भाषा के विकास मे कुछ धक्का अवश्य लगा, क्योंकि सरकारी नौकरी प्राप्त करने के लिए उर्दू पढना आवश्यक हो गया। स्वभावत. हिन्दी की ओर से लोगो का ध्यान हट गया। इन अवरोधो के कारण कुछ समय के लिए हिन्दी की प्रगति मन्द पड गई।

इस सकट-काल मे हमारे पत्रो ने हिन्दी की सहायता की। ईसाई

धर्म के बढते हुए प्रचार को देखकर हिन्दू जनता के कान खडे होने लगे । बंगाल मे राजा राममोहनराय ने हिन्दू धर्म का प्रचार करने के लिए 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की । धार्मिक ग्रथो का हिन्दी मे भाष्य किया गया । उन्होने 'बगदूत' नामक एक हिन्दी-पत्र भी निकाला । उसका प्रकाशन संवत् १८६६ मे आरम्भ हुआ था । इस पत्र की हिन्दी साधारण कोटि की थी, जिस पर बगला का प्रभाव स्पष्ट झलकता था । इसी समय प० जुगलकिशोरजी ने कानपुर से 'उदन्त मार्तण्ड' नामक हिन्दी का प्रथम समाचार-पत्र निकाला । इन पत्रों से खडी बोली-गद्य को बडी सहायता मिली । संवत् १९०२ मे राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने बनारस से 'बनारस अखबार' नामक पत्र निकाला । किन्तु उसकी भाषा उर्दू-मिश्रित थी, वह चल न सका । सवत् १९०७ मे बाबू तारामोहन मित्र ने 'सुधाकर' नामक पत्र निकाला । सवत् १९०९ मे आगरा से 'बुद्धि-प्रकाश' नामक पत्र का प्रकाशन हुआ । इन दोनो पत्रो की भाषा साधारण और अच्छी हिन्दी थी । हिन्दी-गद्य के विकास मे और भी जिन लोगो ने सहायता पहुँचाई उनका उल्लेख आगे किया जाता है ।

राजाशिवप्रसाद सितारे हिन्द—इनका जन्म सवत् १८८० मे काशी मे हुआ । संवत् १९१३ मे ये स्कूलो के इन्स्पैक्टर नियुक्त हुए । इनके प्रयत्न से ही स्कूलो में हिन्दी का प्रवेश हुआ था । इन्होने स्कूलो के लिए हिन्दी की पाठ्य-पुस्तके भी लिखी, किन्तु इनकी भाषा मे उर्दू-फारसी के शब्दों की भरमार रहती थी । राजा शिव-प्रसाद पहले बडी शुद्ध हिन्दी लिखते थे । किन्तु बाद में सरकारी कर्मचारी होने के कारण सरकार को खुश करने के लिए उन्होने 'आम फहम' भाषा का प्रचार किया । इनकी 'आम फहम' भाषा मे आधी से अधिक उर्दू-फारसी होती थी । इसलिए जनता में इनकी भाषा का प्रचार नही हो सका । राजा साहब की मृत्यु सवत् १९२० में हुई ।

राजा लक्ष्मणसिंह—इनका जन्म १८८३ में हुआ था । ये सरकारी शासन-विभाग मे कलक्टर के पद पर काम करते थे । इन्होंने हिन्दी और

हिन्दू-सस्कृति की उन्नति के लिए बडा प्रयत्न किया। १६१८ मे इन्होंने 'प्रजा-हितैषी' नामक पत्र भी निकाला था। इस पत्र की भाषा शुद्ध खडी बोली थी। राजा लक्ष्मणसिंह ने 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' का हिन्दी मे अनुवाद किया। इस अनुवाद की भाषा सस्कृत-गर्भित और मधुर है। इन्होने 'रघुवंश' का भी गद्य में अनुवाद किया। इनका गद्य बड़ा प्राजल और प्रवाहपूर्ण है। स० १६५३ में इनकी मृत्यु हुई।

महर्षि दयानन्द सरस्वती— स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म स० १८८१ मे गुजरात मे हुआ था। वे जाति के ब्राह्मण थे। इन्होने हिन्दू-धर्म की रक्षा और भारतीय सस्कृति के प्रचार के लिए बडा प्रयत्न किया। इसी उद्देश्य से इन्होने स० १६३५ मे आर्यसमाज की स्थापना की। स्वामी जी हिन्दी को आर्यभाषा कहते थे। इन्होंने अपने 'सत्यार्थ-प्रकाश' नामक ग्रंथ की रचना हिन्दी मे ही की। उस समय किसी ने स्वामी जी से पूछा था कि आपने इस ग्रथ की रचना संस्कृत अथवा अन्य किसी भाषा में क्यो न की। इस पर स्वामी जी ने उत्तर दिया—**मेरे सन्देश को राजमहलों से लेकर गरीब की झोंपड़ी तक पहुँचा देने वाली भाषा एक-मात्र हिन्दी ही है।** इन्होने वेदो का भाष्य भी हिन्दी में किया। स्वामी जी ने प्रत्येक आर्यसमाजी के लिए हिन्दी पढ़ना अनिवार्य घोषित कर दिया था। स्वामी जी की हिन्दी संस्कृत-मिश्रित है। उसमे तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक है। उनकी भाषा में व्यग का पुट भी है।

इसी काल में पंजाब मे श्री श्रद्धाराम फिल्लौरी के व्याख्यानो और कथाओ की धूम मच गई थी। इन्होने व्याख्यानो द्वारा हिन्दी का खूब प्रचार किया। इन्होंने हिन्दी मे कई पुस्तके भी लिखी। इनका 'सत्यामृत प्रवाह' नामक सिद्धान्त-ग्रंथ बड़ी प्रौढ़ भाषा मे लिखा हुआ है। सं० १६३४ मे इन्होंने 'भाग्यवती' नामक एक सामाजिक उपन्यास भी लिखा, जिसकी बडी प्रशंसा हुई। इसी समय पजाब में श्री नवीनचन्द्र राय ने हिंदी-प्रचार के लिए प्रशसनीय कार्य किया। ये सरकारी शिक्षा-विभाग में काम

करते थे। ये विशुद्ध हिन्दी के पक्षपाती थे। इन्होंने भी हिन्दी में कई पुस्तकें लिखी।

इस प्रकार हिन्दी-साहित्य के नव चेतना युग के प्रथम उत्थान में खड़ी बोली-गद्य की नींव पर्याप्त सुदृढ़ हो चुकी थी। इनके पश्चात् हिन्दी-साहित्य में गद्य की दृष्टि से एक नये स्वर्णिम युग का आरम्भ हुआ, जिसके प्रवर्तक है भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र।

द्वितीय उत्थान : भारतेन्दु-काल

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के समय से हिन्दी-गद्य में एक नये जीवन का संचार हुआ है। इनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। साहित्य के सभी अंगों पर इनका गहरा प्रभाव पड़ा। अभी तक साहित्य एक वर्ग विशेष के बौद्धिक विलास की वस्तु समझा जाता था, साधारण जनता को उससे कोई दिलचस्पी न थी। एक विशेष वर्ग ही साहित्यिक चर्चा में योग देता था। परन्तु भारतेन्दु बाबू ने साहित्य को जनता तक पहुँचाया और साहित्य को जनता का पूरा सहयोग प्राप्त हुआ। उन्होंने साहित्य की प्राचीन परम्परा के प्रति विद्रोह करके उसे नवीन गति और चेतना प्रदान की। उनके समय में भाषा का स्वरूप भी निर्धारित हुआ। हिन्दी को न तो वे उर्दू बनाना चाहते थे और न संस्कृत ही, वे तो हिन्दी का स्वतन्त्र स्वरूप स्थिर करना चाहते थे। इसके लिए इन्होंने बीच का मार्ग ग्रहण किया। इन्होंने अपनी भाषा मे संस्कृत के उन्ही शब्दों को स्थान दिया जो बोल-चाल की भाषा में आते थे और उर्दू के भी उन्हीं शब्दों का व्यवहार किया, जिनको जनता ने अपना लिया था। इस प्रकार वर्तमान खड़ी बोली के स्वरूप को स्थिर करने का श्रेय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र को ही है।

भारतेन्दु बाबू स्वयं एक विशिष्ट शैली के लेखक थे। उन्होंने अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से अनेक उत्साही युवकों का ध्यान हिन्दी की ओर आकृष्ट किया। उनके जीवन-काल में ही लेखकों का एक मण्डल बन

चुका था। इन उत्साही लेखकों ने गद्य और पद्य की नवीन दृष्टि से रचना की। अभी तक हिन्दी में नाटकों का अभाव था। भारतेन्दु के समय में हिन्दी-नाटकों का जन्म हुआ। भारतेन्दु ने स्वयं कई नाटक लिखे और उनके अभिनय के लिए रंगमंचों का प्रबन्ध कराया। नाटकों के अतिरिक्त उपन्यास और छोटी-छोटी कहानियाँ लिखने की प्रथा भी इसी युग में चली। इतिहास तथा जीवन-सम्बन्धी साहित्य का निर्माण भी इनके समय से ही होने लगा। इसके अतिरिक्त अन्य उपयोगी साहित्य का निर्माण करके भविष्य के लिए मार्ग प्रशस्त किया गया।

भारतेन्दु बाबू ने अपने प्रत्येक साधन द्वारा जनता के मानसिक क्षितिज को विस्तृत करने का पूरा उद्योग किया था। उन्होंने कई पत्र और पत्रिकाएँ भी निकालीं। यों उनसे पहले हिन्दी-समाचार-पत्रों का जन्म हो चुका था, किन्तु उनका जीवन अल्पकालिक ही रहा। वे कुछ दिन निकलकर बन्द हो चुके थे। उनकी भाषा और विचार-शैली भी प्रौढ न थी। किन्तु इस युग के पत्र एक नवीन भाषा, शैली, नवीन विचार और जीवनोपयोगी सामग्री लेकर जनता के सामने आए। भारतेन्दु जी की 'कवि-वचन-सुधा' नामक पत्रिका में पुराने कवियों की कविताओं का संग्रह रहता था। 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन' नाम की एक मासिक पत्रिका भी उन्होंने निकाली, जो बाद में 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' के नाम से प्रख्यात हुई। शिक्षा के लिए उन्होंने 'बाला-बोधिनी' नाम की एक मासिक पत्रिका निकाली। इस युग में बालोपयोगी साहित्य का भी निर्माण हुआ।

हम पहले लिख चुके है कि भारतेन्दु बाबू ने अपने व्यक्तित्व और प्रभाव से बहुत से नए लेखकों को जन्म दिया। उन लेखकों में एक विशेष उत्साह और जिन्दादिली थी। उस समय के लेखकों ने समाज-सुधार और राजनैतिक चेतना जागृत करने के लिए व्यंग-हास्यपूर्ण शैली का सफलता के साथ प्रयोग किया। भारतेन्दु युग के लेखकों में पं० प्रतापनारायण मिश्र, पं० बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', पं० बालकृष्ण भट्ट, पं० अम्बिकादत्त व्यास और ठाकुर जगमोहनसिंह का नाम विशेष

रूप से उल्लेखनीय है। नीचे हम इस काल के प्रमुख लेखको का सक्षिप्त परिचय देते है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—आपका जन्म १९०७ मे काशी के सम्पन्न और प्रतिष्ठित अग्रवाल वैश्य-कुल में हुआ था। आपके पिता बा०गोपालचंद्र (गिरिधरदास) अच्छे कवि और लेखक थे। भारतेन्दु जी बाल्यावस्था से ही बडे प्रतिभाशाली थे। स्थानीय क्वीन्स कालेज में अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त करके उन्होने सस्कृत, फारसी और बंगला का भी यथेष्ट ज्ञान प्राप्त कर लिया था। सं० १९२५ मे आपने 'विद्यासुन्दर' नाटक का बगला से अनुवाद करके प्रकाशित किया। इसी समय 'कवि-वचन-सुधा' का प्रकाशन हुआ। १९३० मे 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' निकाला। १९३१ मे स्त्रियो के लिए 'बाला बोधिनी' का प्रकाशन हुआ। इन्ही दिनों आपका ध्यान नाटको की ओर गया, तो आपने नाटको का भी ढेर लगा दिया। आपने मौलिक नाटको—'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'चन्द्रावली', 'विषस्य विषमौषधम्', 'भारत-दुर्दशा', 'नील देवी,' 'अधेर नगरी' और 'प्रेम योगिनी'-की रचना की। इनके अतिरिक्त कुछ उनके अनूदित नाटक भी है। जिनके नाम ये है—'सत्य हरिश्चन्द्र', 'मुद्रा राक्षस', 'भारत जननी', 'कर्पूर मंजरी', 'धनजय-विजय', 'पाखण्ड विडम्बन' और 'विद्यासुन्दर'। इसके अतिरिक्त आपने नाटयशास्त्र-सम्बन्धी एक पुस्तक 'नाटक' नाम से लिखी है। नाटको के साथ ही आपका ध्यान साहित्य के विविध अगो की ओर गया और आपने 'बादशाह दर्पण' और 'काश्मीर कुसम' आदि ऐतिहासिक पुस्तकें भी लिखी।

काव्य-रचना आप ब्रजभाषा में करते थे। काव्य मे आपने सर्वप्रथम राष्ट्रीय प्रेम की धारा बहाकर जनता में एक नवीन जागरण उत्पन्न कर दिया। आप उच्चकोटि के लेखक, कवि, समाज-सुधारक एवं देश-भक्त थे। सं० १९४१ में केवल ३५ वर्ष की आयु में ही आपकी मृत्यु हो गई।

पं० प्रतापनारायण मिश्र—इनका जन्म सं० १९१३ में हुआ। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके पिता उन्नाव से आकर कानपुर में रहने

लगे थे। मिश्र जी स्वभाव से बड़े मौजी और हँसोड़ थे। इसीलिए इनकी रचनाओं मे हास्य और व्यंग के दर्शन होते है। इनकी भाषा मे विशेष सजीवता और बोल-चाल का चलतापन है। अपनी विनोद-प्रियता के कारण वे पूर्वीपन का खयाल न करके बैसवाडे के ग्रामीण शब्दो और कहावतों तक का प्रयोग कर डालते थे। साधारण विषय को भी वे मनोरजक बना देते थे। 'ब्राह्मण' नामक पत्र मे समाज-सुधार, नागरी-हिन्दी-प्रचार, देश-दशा आदि विपयों पर इनके बडे चटपटे लेख निकलते थे। ये स्वतन्त्र विचार के लेखक थे।

मिश्र जी ने 'कलि कौतुक', 'भारत-दुर्दशा', 'हठी-हमीर', 'जुआरी-खुआरी' आदि रूपक और नाटक भी लिखे है। स० १९५१ मे इनकी मृत्यु हुई।

पं० बालकृष्ण भट्ट—ये प्रयाग के रहने वाले थे। इनका जन्म स० १९०१ में हुआ। हिन्दी मे सबसे प्रथम आपने ही छोटे-छोटे निबन्ध लिखना आरम्भ किया। आपके निबन्धो की भाषा सरल, मुहावरेदार और चलती हुई होती थी। इन्होने स० १९३१ मे 'हिन्दी-प्रदीप' नामक पत्र निकाला, जिसका सम्पादन वे तीस वर्षों तक करते रहे। इस पत्र मे सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक आदि विविध विषयो के निबन्ध निकलते रहे। भट्ट जी के निबन्धो में भी मिश्र जी की भाँति मनोरजन का पुट रहता था। इनकी रचना में खडी बोली के साथ पूर्वी का भी प्रयोग मिलता है।

सं० १९४३ मे भट्टजी ने श्रीनिवासदास के 'सयोगिता-स्वयवर' नाटक की समालोचना करके समालोचना के मार्ग का सूत्रपात किया। इनकी लिखी हुई पुस्तके 'रेल का विकट खेल', 'बाल विवाह नाटक', 'सौ अजान एक सुजान', 'नूतन ब्रह्मचारी', 'कलिराज की सभा' और 'चन्द्रसेन नाटक' आदि है। इनके निबन्धों का सग्रह 'साहित्य सुमन' नाम से प्रकाशित हुआ है। इनकी मृत्यु स० १९७१ मे हुई।

पं० बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' – इनका जन्म स० १९१२ मे

मिर्जापुर में हुआ। ये सरयूपारीण ब्राह्मण थे। आप भारतेन्दुजी के घनिष्ठ मित्रो में से थे। आपका स्वभाव और व्यवहार रईसाना था। अधिकतर आप साहित्यिक गद्य ही लिखते थे। आपके गद्य मे बडी सजीवता और लालित्य होता था। आपने 'आनन्द-कादम्बिनी' नामक पत्रिका भी निकाली, जिसमे आपने नाटक, प्रहसन और निबन्ध प्रकाशित होते रहते थे। 'आनन्द-कादम्बिनी' के समाचार तक आलकारिक भाषा से सजे हुए होते थे। 'नागरी-नारद' नामक पत्र भी आपने निकाला था। आपने 'भारतीय सौभाग्य', 'प्रयाग रामागमन' और 'वीरागना रहस्य' नामक नाटक भी लिखे। भट्टजी की भाँति आपने कुछ समालोचनाएँ भी लिखी। स० १९७९ मे आपकी मृत्यु हुई।

पं० अम्बिकादत्त व्यास—आपका जन्म स० १९१५ मे हुआ। व्यासजी सस्कृत के श्रेष्ठ विद्वान् थे, साथ ही कई प्रान्तीय भाषाओ के ज्ञाता भी। आप सनातन-धर्म के उपदेशक थे। आपने हिन्दी में अच्छी रचनाएँ की है। 'बिहारी-बिहार', 'अवतार-मीमासा', 'गद्यकाव्य-मीमांसा', 'आश्चर्य वृत्तान्त', 'ललिता नाटक' और 'गो-संकट नाटक' आपकी अच्छी रचनाएँ है। 'बिहारी-बिहार' में बिहारी के दोहो पर कुडलियाँ बनाई गई है। आपकी भाषा मे प्रौढता तथा गम्भीरता थी। आपकी मृत्यु स० १९५७ में हुई।

ठाकुर जगमोहनसिंह—आपका जन्म स० १९१४ में हुआ। आप मध्य प्रदेश के विजय राघवगढ के राजकुमार थे। आप हिन्दी के सुविज्ञ लेखक थे। ठाकुर साहब ने अपनी रचनाओ मे प्रकृति का बड़ा मनमोहक वर्णन किया है। 'श्यामा-स्वप्न' नामक आपकी पुस्तक बड़ी सुरुचिपूर्ण और सुन्दर रचना है। ठाकुर साहब की रचनाओ मे भावो की प्रबलता और भाषा का सौष्ठव दोनो ही देखने को मिलते है। आपकी भाषा सस्कृत-मिश्रित हिन्दी है, परन्तु उसमे नीरसता एवं कृत्रिमता नही आने पाई है। आपकी मृत्यु स० १९५६ मे हुई।

इनके अतिरिक्त बा० तोताराम, पं० राधाचरण गोस्वामी, ला०

श्रीनिवासदास, बा० राधाकृष्णदास आदि इसी युग के लेखको मे है। बाबू तोताराम ने अलीगढ से 'भारत-बंधु' नामक पत्र निकाला था। इन्होने हिंदी-हित-साधन के लिए 'भाषा-सवर्द्धिनी' नाम की एक संस्था भी स्थापित की थी।

पं राधाचरण गोस्वामी ने 'भारतेन्दु' नाम का एक पत्र वृन्दावन से निकाला था, जो कुछ दिन चलकर बन्द हो गया। इन्होने कुछ नाटक लिखने के अतिरिक्त 'विरजा', 'जावित्री' और 'मृण्मयी' उपन्यासों का बङ्गला से अनुवाद किया।

ला० श्रीनिवासदास जी का 'रणधीर-प्रेम-मोहिनी' नामक नाटक प्रसिद्ध है। इन्होंने 'परीक्षा-गुरु' नाम का एक मौलिक उपन्यास भी लिखा है। इनकी भाषा अपने समकालीन लेखको से अधिक परिष्कृत, सयत और उद्देश्यानुकूल होती थी। आप मुहाविरो का प्रयोग भी अपनी भाषा मे करते थे।

बा० राधाकृष्णदास भारतेन्दु के फुफेरे भाई थे। इन्होने भारतेन्दु जी के अधूरे नाटक 'सती प्रताप' को पूरा किया। इनका 'महाराणा प्रताप' नामक प्रसिद्ध नाटक है। इन्होने कई बङ्गला-उपन्यासो का अनुवाद किया।

ब्रजभाषा-पद्य-धारा : प्राचीन परिपाटी

यद्यपि भारतेन्दु जी के समय में गद्य-साहित्य मे काफी परिवर्तन हो चुका था, तथापि पद्य-धारा अभी प्राचीन परम्परा मे ही बह रही थी। इसका एक प्रमुख कारण तो यह है कि वह गद्य के विकास का युग था, पद्य की ओर किसी ने अधिक ध्यान नही दिया था। गद्य के लिए ही खडी बोली का उपयोग किया गया और पद्य की भाषा ब्रजभाषा ही रही। ब्रजभाषा अपनी सरलता और मधुरिमा के कारण साहित्य में अपना स्थायी स्थान बना चुकी थी, अत. इतने अल्प काल मे उसका सर्वथा निर्मूल होना असम्भव ही था। दूसरा कारण यह है कि यह सामाजिक

और राजनैतिक परिवर्तन का युग था। सामाजिक एवं धार्मिक सुधार के लिए प्रचार-कार्य की अधिकता रही और प्रचार-कार्य गद्य मे ही सुगमता से हो सकता था, इसलिए पद्य की ओर ध्यान नही दिया गया। गद्य की इस समय अत्यन्त आवश्यकता थी, इसलिए पद्य पर ध्यान देने का प्रश्न ही नही उठता। इन्ही कारणो से पद्य की पुरानी परिपाटी प्रचलित रही। हाँ भारतेन्दु के साहित्यिक क्षेत्र मे आने से कविता के विषय और भावो मे अवश्य परिवर्तन हुआ, शृङ्गार का स्थान राष्ट्र-प्रेम ने ले लिया, किन्तु भाषा और शैली पुरानी ही चलती रही। इस राष्ट्रीय उद्बोधन की चर्चा हम बाद में करेंगे, पहले इस काल के प्राचीन कवियो का सक्षिप्त परिचय दे दे।

सेवक—इनका जन्म स० १७८२ मे और मृत्यु १८३८ मे हुई। ये ठाकुर कवि के प्रपौत्र और ब्रजभाषा के अच्छे कवि थे। इन्होंने 'वाग्विलास' नाम का एक बडा ग्रन्थ नायिका-भेद पर बनाया। इसके अतिरिक्त बरवै छन्द मे एक छोटा सा 'नख-शिख' भी इन्होने लिखा था। ये बड़े ही रसिक जीव थे। अब कुछ बूढे रसिक इनके इस सवैये को गुनगुनाते है

कवि सेवक बूढ़े भए तो कहा—
पै हनोज है मौज-मनोज ही की।

महाराज रघुराजसिंह—रीवाँ-नरेश महाराज रघुराजसिह का जन्म सं० १८८० मे और मृत्यु सं० १९३६ मे हुई। इन्होने 'राम-स्वयवर' नामक वर्णनात्मक प्रबन्ध काव्य की रचना की। यह इनका बडा प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त इनके 'रुक्मिणी-परिणय', 'रामाष्ट याम' आदि भी अच्छे ग्रन्थ है।

सरदार—इनका कविता-काल सं० १९०२ से १९४० तक कहा जाता है। ये काशी-नरेश महाराज ईश्वरीप्रसादनारायणसिह के आश्रित थे। ये बड़े सिद्धहस्त और साहित्य-मर्मज्ञ थे। इनके रचे 'साहित्य-सरसी', 'वाग्विलास', 'षट्ऋतु', 'हनुमन्तभूषण', 'राम-रत्नाकर' तथा

'साहित्य सुधाकर' इत्यादि काव्य-ग्रन्थ बडे मनोहर है। इन्होने हिन्दी के प्राचीन काव्यो पर टीकाएँ भी की है।

राजा लक्ष्मणसिंह—ये हिन्दी गद्य के प्रवर्तक होने के साथ-साथ ब्रजभाषा के अच्छे कवि भी थे। इनका उल्लेख पीछे आ चुका है। इन्होने दोहो और चौपाइयो मे 'मेघदूत' का बडा सुन्दर अनुवाद किया। इनकी कविता में अत्यन्त मधुरता और सरसता होती है।

लछराम ब्रह्मभट्ट—इनका जन्म सं० १८९८ मे बस्ती जिले के अमोढा नामक स्थान मे हुआ था। भारतेन्दु-काल मे पुरानी परिपाटी पर ब्रजभाषा की कविता करने वालों मे ये बहुत प्रसिद्ध कवि है। ये समस्या-पूर्तियाँ बहुत जल्दी करते थे। इन्होने सभी रसो पर कविता की है। कई राज-दरबारों मे इनका सम्मान हुआ था।

गोविन्द गिल्ला भाई—इनका जन्म स० १९०५ मे भावनगर रियासत के अन्तर्गत सिहोर नामक स्थान पर हुआ था। इनके पास ब्रज-भाषा के काव्यो का बडा अच्छा सग्रह था। ब्रजभाषा की कविता इनकी बडी सुन्दर और प्राचीन कवियो की टक्कर की होती थी, इनके 'नीति विनोद', 'शृङ्गार-सरोजिनी', षट्-ऋतु', 'पावस-पयोनिधि', 'वक्रोक्ति-विनोद', 'प्रारब्ध पचासा' तथा 'प्रबीन सागर' इत्यादि बडे अच्छे ग्रन्थ है।

नवनीत चतुर्वेदी—ये मथुरावासी थे। इनका जन्म सं० १९१५ मे और मृत्यु १९९९ में हुई। प्राचीन परिपाटी के आधुनिक कवियो में इन्होने बहुत ख्याति प्राप्त की है।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'—इनका जन्म स० १९२३ मे और मृत्यु १९८९ में हुई। ये ब्रजभाषा के अनन्य भक्त थे। जब खड़ी बोली पद्य में भी अपनी चरम विकास को पहुँच चुकी थी, तब भी आप ब्रजभाषा में कविता करते थे। आपने 'हरिश्चन्द्र', 'गगा लहरी' आदि कई ग्रन्थ लिखे, किन्तु 'उद्धव शतक' और 'गगावतरण' ने बहुत ख्याति प्राप्त की। 'उद्धव शतक' भाव-प्रधान ग्रन्थ है और 'गंगावतरण' कथात्मक काव्य है।

'उद्धव शतक' आपने भक्ति युग की भावनाओ पर लिखा है, फिर भी आपने श्रृङ्गारयुगीन आलकारिकता के सामंजस्य ने उसे अत्यन्त रमणीय बना दिया है। कृष्ण और गोपियो की विरह-वेदना का बडा सुन्दर चित्रण किया गया है। 'गगावतरण' मे श्रृङ्गार, वीर, हास्य आदि सभी रसो की सामग्री संपुटित है। आधुनिक ब्रजभाषा के कवियों मे आपका स्थान सर्वोपरि है। 'गगावतरण' के एक छन्द का नमूना देखिए .

छहरावति छबि कबहूँ कोउ सित सघन घटा पर।
फबति फैलि जिमि जोन्ह छटा हिम प्रचुर पटा पर॥
तिहिं घन पर लहराति लुरति चपला जब चमकै।
जग प्रतिबिम्बित दीप-दाम-दीपित-सी दमकै॥

राय देवीप्रसाद पूर्ण— आप कानपुर के निवासी थे। आपका जन्म सं० १६२५ मे और मृत्यु १६७० मे हुई। आपकी रचनाओं में प्राचीन परिपाटी की श्रृङ्गारिकता के साथ-साथ देश-भक्ति की भावनाओ की अभिव्यजना भी रहती है। आपकी ब्रजभाषा विशुद्ध और सयत है। आपका ऋतु-वर्णन बडा सुन्दर है। आपने 'मेघदूत' का हिन्दी में बड़ा सुन्दर अनुवाद किया है। इनकी कविता का उदाहरण देखिए :

परसि सलिल तेरो सीतल है पौन जौन,
ताके मन्द झूकन जगैयो प्रात प्यारी को।
मुकलित मालती समूहन के साथ-साथ,
प्रफुलित कीजियो पयोद ! सुकुमारी को॥
होकर चकित जबै ताके सो झरोखे ओर,
दामिनी बलिस बेस बानक तिहारी को।
लागियो सुनावन सरस सोरपारे बैन,
नीरद सुहावन ! वा मान जागे नारी को॥

पं० सत्यनारायण कविरत्न—आपका जन्म सं० १९४१ में आगरा जिले के अन्तर्गत धाँधूपुरा नामक ग्राम में हुआ था। आप श्रीकृष्ण और उनकी ब्रजभूमि के अनन्य भक्त थे। आपके काव्य में ब्रजभाषा

के सहज माधुर्य के दर्शन होते हैं। आपने प्रेम और शृङ्गार रस की भी कविता की है। आपका प्रेम बहुत उच्चकोटि का है। आपने प्रकृति का भी बडा सुन्दर और सजीव चित्रण किया है। आपने 'उत्तर राम-चरित' और 'मालती माधव' का हिन्दी मे बडा सुन्दर अनुवाद किया है। आपकी कविताओं का सग्रह 'हृदय तरग' नाम से प्रकाशित हुआ है। इनकी कविता का उदाहरण निम्न है .

सब ओर जितै तितै देखत हौं, दृग मोहिनी मूरत भाइ रही।
चहुँ बाहिर औ' उर-अन्तर मे, बहु रूप अनूप दिखाइ रही॥
खिले स्वर्न सरोज मनोहर को जिहि आनन ओप लजाइ रही।
अति नेह सौं मो-दिस लाज-पगी निज पीठि कछू तिरछाइ रही॥

वियोगी हरि—प० हरिप्रसाद जी द्विवेदी 'वियोगी हरि' का जन्म स० १९५३ मे कान्यकुब्ज ब्राह्मण-वश मे हुआ था। आधुनिक युग में ब्रजभाषा-काव्य-प्रणेताओ के अन्तर्गत उनका स्थान प्रमुख है। बाबू जगन्नाथदास जी 'रत्नाकर' के अनन्तर ब्रजभाषा के कवियो मे हम उन्हे ही सर्वोत्कृष्ट पाते हैं। उन्होने अपनी रचनाओ मे वीर-प्रशस्ति युग के वीर-भाव और भक्ति युग के उपासना-भाव को ही प्रमुख रूप से प्रश्रय प्रदान किया है।

हिन्दी की आधुनिक काव्य-रचनाओ मे वीर रस का अभाव देख-कर वियोगी हरि जी ने अपनी 'वीर-सतसई' की रचना की। ब्रजभाषा की सतसई-परम्परा मे उनके उपर्युक्त ग्रन्थ का अपना पृथक् महत्त्व है। इसमे उन्होने शृङ्गार युग की विलासोन्मुख भाव-धारा को प्रतिगामी रूप मे स्वीकार करके समाज के सम्यक् विकास के हेतु, वीर-भावनाओं की स्वस्थ अभिव्यंजना को ही सर्वप्रमुख माना हैं। राष्ट्रीय कवि होने के कारण स्वतन्त्रता के पुण्य वातावरण को ही सर्वाधिक अपेक्षित मानते हुए वे कहते हैं :

पराधीनता-दुख भरी, कटति न काटे रात।
हा ! स्वतन्त्रता को कबै, ह्वैहै पुण्य प्रभात॥

'वीर-सतसई' मे वीर रस के अङ्गोपाङ्गो की पूर्ण अन्विति उपस्थित करने की अपेक्षा वियोगी हरि जी ने अध्येता की मानसिक प्रवृत्तियो को उद्बुद्ध करने का ही प्रयत्न किया है। वस्तुत. उनका अन्तिम लक्ष्य उसके अन्तराल मे शौर्य भावना का स्फुरण करना ही है और इस उद्देश्य की सम्पूर्ति मे वे पूर्णत: सफल हुए हैं।

अपने भ[illegible] काव्य मे वियोगी हरि जी ने साधना को आत्मा के विषय के रूप मे अङ्गीकृत करते हुए अपनी विचार-धारा को अत्यन्त भावुक रूप मे सम्पादित किया है। उपासना के उचित स्वरूप का निर्धारण करने से पूर्व उन्होने ईश्वर के सम्बन्ध मे गहन चिन्तना की है। हिन्दू-धर्म की प्राचीन रूढिवादिता का परित्याग करके उन्होने अपने मौलिक अध्ययन के आधार पर उपासना के सत्य-परक आदर्श में विश्वास व्यक्त किया है। इसी मान्यता से परिचालित होकर उन्होने अपने समत्व-भावना के सिद्धान्त की प्रस्थापना की है। उन्होने ईश्वर को सृष्टि के प्रत्येक तत्त्व मे व्याप्त माना है और इसी धारणा के आधार पर हरिजनो के अन्तर में हरि के विशेष रूप से दर्शन किये है। राजनीति के प्राङ्गण मे गाधी जी के निकट अनुयायी रहकर उन्होने हरिजन-समस्या का निराकरण करने के हेतु प्रचुर रचनात्मक कार्य किया है। साहित्य के क्षेत्र मे भी इसी भावना का प्रतिपादन करने के हेतु उन्होने हरिजनो के मुख से गहन आत्म-विश्वास के साथ कहलाया है :

माधव आज कहौं किन साँची।
क्यों हम नीचन तें हरि रूठे, ऊँचन मे मति राँची॥
यंत्रित बज्र कपाटनि गढ़ए, दृढ़ मन्दिर तुम पाए।
बलिहारी रणछोड़नाथ जू, भले भाज इत आए॥
हम सबके अघ देखि दुरे हौ, किधौं मन्दिरन माँहीं।
कै कहु डरत उच्च बंसिन सों, छुअत न हमरी छाँहीं॥

पै इतहूँ नहिं कुसल तुम्हारी, कल न लेन हम देहैं ।
जो पै लिये प्रेम कछु ह्वैहै, तुम्हें खैंचि प्रभु लैहैं ।।

वियोगी हरि जी ने ब्रजभाषा मे 'प्रेम-शतक', 'प्रेमाञ्जलि', 'प्रेम-पथिक' एव 'वीर सतसई'-जैसे मौलिक ग्रन्थो के प्रणयन के साथ-साथ उक्त भाषा के साहित्य की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्तियो का 'साहित्य-विहार' एव 'ब्रज-माधुरी-सार'-जैसी कृतियो मे अपूर्व संग्रह भी उपस्थित किया है। वास्तव में उन्होने ब्रजभाषा की प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्तियों का अध्ययन किया है और अपनी रचनाओ द्वारा उन्हे पर्याप्त समृद्धि प्रदान की है। उनका यह दोहा बहुत प्रसिद्ध है :

पावस ही में धनुष अब नदी तीर ही तीर ।
रोदन ही में लाल दृग नव रस ही में वीर ।।

ब्रजभाषा-पद्य-धारा : नवीन परिपाटी

भारतेन्दु बाबु हरिश्चन्द्र के साथ-साथ काव्य में भी नवीन युग की भावनाएँ मुखरित हुई। हरिश्चन्द्र की वीणा से देश-भक्ति का जो मधुर स्वर निकला, उसने काव्य-धारा को—एक संकुचित मार्ग से निकालकर विकासोन्मुख किया। उन्होने कविता तो ब्रजभाषा मे ही की, परन्तु काव्य के विषयो को अनेकरूपता देकर उसे वास्तविक जीवन के अधिक निकट ले आए। उन्होने कविता का समाज के साथ सम्बन्ध स्थापित किया। वह कविता-कामिनी, जो प्राचीन काल से अलकारो या नायिका-भेदो की जजीरो में जकडी हुई थी, अब देश-भक्ति और समाज-सुधार के वातायनो मे आकर स्वतन्त्रता की साँस लेने लगी। हरिश्चन्द्र बाबू स्वभावतः देश-प्रेमी थे। देश और मानव की दुर्दशा देखकर उनकी आत्मा पुकार उठी :

रोवहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई।
हा ! हा ! भारत-दुर्दशा न देखी जाई ।।

भारत के अविद्या और कलह को देखकर उनकी आत्मा द्रवित होकर पुकार उठी ·

जहँ भये शाक्य, हरिश्चन्द अरु नहुष, ययाती।
जहँ राम, युधिष्ठिर, वासुदेव सर्याती॥
जहँ भीम, करण, अर्जुन की छटा दिखाती।
तहँ रही मूढ़ता कलह अविद्या राती॥

उन्होंने सोते हुए समाज को ललकारा और जागृति तथा चेतना का दिव्य सन्देश सुनाया।

सोअत निसि बैस गँवाई, जागो जागो रे भाई।
निसि की कौन कहे दिन बीत्यौ काल रीति चलि आई॥
देख परत नहिं हित अनहित कछु परे बैरि बस जाई।
निज उद्धार पंथ नहिं सूझत सीस धुनत पछताई॥

ये थी वे देश-भक्ति की भावनाएँ, जिन्होंने हरिश्चन्द्र की वाणी के साथ काव्य में व्याप्त होकर उसकी गति को बदल दिया। इनके सहयोगी अथवा प्रभावित कवियो ने भी इनका अनुकरण करके इस नवीन धारा को योग दिया। इस प्रकार काव्य की प्राचीन परिपाटी के साथ-साथ देश-भक्ति की एक नवीन प्रणाली प्रकट हुई। नीचे हम नवीन परिपाटी के प्रमुख कवियो का सक्षिप्त परिचय देने के पश्चात् साहित्य के तृतीय उत्थान का प्रारम्भ करेंगे।

पं० प्रतापनारायण मिश्र – इन्होने भारतेन्दुकालीन काव्य-साहित्य को जीवन के सत्य से ओत-प्रोत किया था और वह सत्य व्यग तथा विनोद से जितना मार्मिक बना है उतना ही मनोरजक भी। मिश्र जी को साहित्य-दर्शन का इतना ज्ञान नही था, जितना जीवन-दर्शन का। विपरीत परिस्थितियों मे संघर्ष करते हुए मनुष्य ससार मे सबसे अधिक सीखता है और मिश्र जी को भी इसी प्रकार जीवन को पहचानने का अवसर मिला था। उनकी 'बुढापा' शीर्षक कविता पढकर आँखों के सामने बुढ़ापे का करुणाजनक चित्र उपस्थित हो जाता है। 'तृप्यन्ताम्' शीर्षक कविता में इन्होंने बडे कठोर व्यंग के साथ आज की दीनता और भारत के गत गौरव को याद किया है :

तबहिं लख्यौ जहँ रह्यौ एक दिन कंचन बरसत ।
तहँ चौथाई जन रूखी रोटी को तरसत ॥
जहाँ कृषी-वाणिज्य शिल्प-सेवा सब माहीं ।
देसिन के हित कछू तत्त्व कहुँ कैसहु नाहीं ॥
कहिय कहाँ लगि नृपति दबे हैं जहँ ऋण-भारन ।
तहँ तिनकी धन कथा कौन जे गृही सधारन ॥

पं० अम्बिकादत्त व्यास—भारतेन्दु द्वारा स्थापित 'कविता वर्द्धिनी सभा' ने इनकी सबसे पहली रचना पर ही इन्हें 'सुकवि' की उपाधि प्रदान करने के साथ-साथ पारितोषिक भी दे डाला था । अंग्रेजी सभ्यता और वेश-भूषा के मतवालों पर इन्होंने बडे तीखे व्यंग कसे हैं :

पहिरि कोट पतलून बूट अरु हैट धारि सिर ।
भालू चरबी चरचि लवैंडर को लगाइ फिर ॥
नई बिदेसी विद्या को ही मानत सर्बस ।
संस्कृत के मृदु बचन लगत इनको अति कर्कस ॥

इसके साथ ही ये भारतीयता की भावना को जगाने के लिए भी प्रयत्नशील थे :

अंग्रेजी हम पढ़ी तऊ अंगरेज न बनिहैं ।
पहिरि कोट पतलून चुरुट के गर्व न तनिहैं ॥
भारत ही में लियो जन्म भारत ही रहिहैं ।
भारत के ही धर्म, कर्म अरु विद्या गहिहैं ॥

पं० बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'—इन्होंने भी अपनी कविताओं में नवीन विषयों का प्रयोग करके कविता के मार्ग को विकासोन्मुख किया था । 'कलि काल-दर्पण' और 'पितर-प्रलाप' शीर्षक कविताओं में भारत के प्राचीन गौरव के स्मरण के साथ-साथ इन्होंने जनता की वर्तमान दुरवस्था पर आँसू बहाए हैं । भारतेन्दु बाबू की मृत्यु पर इन्होंने 'शोकास्रु-बिन्दु' शीर्षक कविता द्वारा हिन्दी में सर्वप्रथम 'एलेजी' अर्थात् 'शोक-काव्य' का सूत्रपात किया। दादा भाई नौरोजी के पार्लियामेंट में

सदस्य होने पर इन्होंने 'मंगलाष्टक' नामक कविता लिखी। ऐसे भिन्न-भिन्न अवसरों पर कविता लिखने को परिपाटी हिन्दी में बिलकुल नवीन थी। इनकी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण रचना 'जीर्ण जन पद' है। जिसमें इन्होंने अपने जन्म-स्थान 'दत्तापुर' की दुर्दशा का वर्णन किया है। कुछ अंश देखिए :

पहुँचे तहँ जहँ प्रतिवत्सर बहु बार जात है।
रहन-सहन छूटे हूँ जेहि लखि नहिं अघात है॥
काम-काज गृह अवलोकन के, स्वजन मिलन हित।
ब्याह बरातन हूँ मैं जाये रहे बहु दिन जित॥
यद्यपि गये बहु बार हीन छबि होत अधिकतर।
लखि ता कहँ अति सोच होत आवत हियरो भर॥

पं० बालमुकुन्द गुप्त—गुप्त जी का कविता-काल भारतेन्दु युग के अन्तिम वर्षों में आता है। इसलिए उसकी रचनाओं में उन सभी नवीनताओं का प्रवेश है, जिनका प्रारम्भ भारतेन्दु तथा उनके बाद के कवियों ने किया था। प्रारम्भ में इन्होंने कुछ पुरानी धारा की रचनाएँ कीं, किन्तु थोड़े ही समय में इन्होंने नवीन धारा को सभी विशेषताओं के साथ अपना लिया और इसमें कुछ अपना मौलिक योग भी दिया। इनके समय तक अंग्रेजी साम्राज्य अपनी आर्थिक शोषण की नीति से अपने प्रति समाज में विरोध की भावनाएँ उत्पन्न कर चुका था। इन्होंने साम्राज्यवाद के दमन-चक्र के नीचे पिसती हुई आर्थिक अवस्था को देखा, तो अपनी रचनाओं में उसका बड़ा मार्मिक वर्णन किया। जनता में आर्थिक विषमता देखकर उन्हें पूँजीवाद पर क्रोध भी आया। इनकी उस समय की रचनाओं में कितने प्रगतिशील विचार मिलते हैं। उदाहरण के लिए देखिए :

हे धनियो ! क्या दीन जनों की नहिं सुनते हो हाहाकार।
जिसका मरे पड़ौसी भूखा, उसके जीवन को धिक्कार॥

हे बाबा ! जो बेचारे ये भूखे प्राण गँवाएँगे।
तब कहिये क्या धनी घोलकर अशर्फियाँ पी जाएँगे ॥
हे धनवानो ! हा धिक् !! किसने हर ली बुद्धि तुम्हारी है।
निर्धन उजड़ जायँगे तब फिर, कहिए किसकी बारी है ॥

तृतीय उत्थान : द्विवेदी-काल

भारतेन्दु जी के पश्चात् हिन्दी-गद्य-साहित्य की उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। नाटको, उपन्यासों तथा पत्र-पत्रिकाओं के विविध विषयपूर्ण लेखो ने जनता का ध्यान हिन्दी की ओर आकर्षित किया। अंग्रेजी पढे-लिखे युवक भी हिन्दी की ओर ध्यान देने लगे। फलतः हिन्दी-प्रचार के लिए छोटी-छोटी सभाओं और परिषदों की स्थापना होने लगी, जिनके द्वारा हिन्दी-भाषा और नागरी-प्रचार की योजनाएँ तैयार होती थी। नये-नये पुस्तकालय तथा वाचनालय खुलने लगे। स्थान-स्थान पर हिन्दी के सम्बन्ध में व्याख्यान होते थे। नाटको का अभिनय किया जाता और प्रचार तथा प्रसार के निमित्त सामूहिक प्रयत्न प्रारम्भ हुए।

संवत् १६५० में काशी के कई उत्साही युवको के प्रयत्न से, जिनमे बाबू श्यामसुन्दरदास, प० रामनारायण मिश्र और ठाकुर शिवप्रसादसिंह के नाम मुख्य है, काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा की स्थापना हुई। बाबू श्यामसुन्दरदास के उद्योग से इस सभा ने हिन्दी की उन्नति के लिए बड़ा प्रशंसनीय कार्य किया। प्राचीन ग्रंथों की खोज की गई और कई पुस्तकालयो की योजना बनी, जिनमें विभिन्न विषयों पर ग्रंथ प्रकाशित किये गए। कवियों की जीवनियाँ भी लिखी गई। ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने अपने 'शिवसिंह सरोज' में हिन्दी-कवियों और लेखको का इतिवृत्तात्मक इतिहास लिखा। 'शिवसिंह सरोज' की रचना संवत् १६४० में हुई। इसके पश्चात् डॉ० ग्रियर्सन ने 'मार्डन वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ नार्दर्न इण्डिया' नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया।

इस प्रकार हिन्दी का प्रचार-कार्य जोरो के साथ हुआ, किन्तु राज-दरबार में अभी उसका कोई आदर न था। इसके लिए भी जोरदा आन्दोलन हुआ। देश के प्रमुख विद्वानो और प० मदनमोहन मालवीय-जैसे देश के नेताओ ने इस आन्दोलन को सफल बनाने के लिए अथक परिश्रम किया। इसके परिणामस्वरूप सवत् १६५७ में सरकारी कचहरी मे नागरी लिपि में प्रार्थना-पत्र देने की अनुमति प्राप्त हुई। यद्यपि इससे हिन्दी को अदालतों में कोई विशेष स्थान नही मिला, तथापि हिन्दी का प्रचार अवश्य हुआ। हिन्दी के स्कूलो की सख्या भी बढी और लोग अपने घरेलू काम-काज तथा पत्र-व्यवहार के लिए हिन्दी पढने लगे।

भाषा का संस्कार—ऊपर हमने हिन्दी के प्रचार-कार्य का उल्लेख किया है। इस प्रचार-कार्य से गद्य का विकास तो अवश्य हुआ किन्तु भाषा और व्याकरण की शुद्धता की ओर अधिक ध्यान नही दिया गया। हिन्दी के नये-नये लेखको ने अपने मनमाने प्रयोग तथा प्रान्तीय शब्दों का प्रयोग स्वच्छन्दतापूर्वक किया। इस बीच मे बगला-उपन्यासो का अनुवाद भी काफी हुआ था, इसके कारण यह उछृङ्खलता और भी बढ़ी। बगला से बहुत से तत्सम शब्द हिन्दी में आ गए और साथ ही बगला-शब्दो के प्रयोग से भाषा में एक प्रकार की अव्यवस्था सी आ गई।

भाषा की शुद्धता का एक और भी कारण था। वह यह कि जो अग्रेजी पढ़े-लिखे नये उत्साही लेखक हिन्दी में आये, उन्हे हिन्दी-व्या-करण का बोध न था। ये लोग हिन्दी की प्रकृति को न पहचानकर अंग्रेजी शब्दो और मुहाविरों का अक्षरशः अनुवाद करने लगे। लिग-भेद की कठिनाई भी इन लोगों के सामने आई और इन्होने उसमें अनेक भूलें की। हिन्दी को अभिव्यक्ति का साधन बनाने पर भी उसकी शुद्धता की ओर किसी का ध्यान नही गया।

इस काम को सर्वप्रथम पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपने हाथ में लिया। उस समय वे इण्डियन प्रेस प्रयाग द्वारा प्रकाशित 'सरस्वती' पत्रिका का सम्पादन करते थे। उन्होने भाषा को व्याकरण-सम्मत

बनाया, लिग-भेद की भूलो को दूर करने की चेष्टा की। लेखकों का ध्यान व्याकरण की ओर आकृष्ट किया। सुधार किये बिना वे 'सरस्वती' मे कोई भी लेख नही छापते थे। 'सरस्वती' उस समय एक-मात्र प्रसिद्ध हिन्दी-पत्रिका थी। उसमें नयें-पुराने अनेक लेखकों के लेख प्रकाशित होते थे। द्विवेदी जी उन्हें स्वय परिश्रम करके, उनका सशोधन करके प्रकाशित करते थे। इस प्रकार खड़ी बोली को परिमार्जित और सुसस्कृत करने का श्रेय पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी को ही है। उनके प्रयत्नों से भाषा में सफाई और सुन्दरता आ गई, उसकी अभिव्यजना-शक्ति बढी, एक स्वरूप निश्चित हुआ और हिन्दी-भाषा गम्भीर और सूक्ष्म भावो को प्रकट करने के योग्य बन गई।

भाषा की सफाई और शुद्धता के साथ ही द्विवेदी जी ने साहित्य को विभिन्न-विषयक भी बनाया। उन्होंने स्वयं ऐसे विषयो पर लेखनी चलाई, जिस पर अभी तक किसी ने नही लिखा था। इसी प्रकार अन्य लेखक भी विभिन्न विषयो को अपनाने लगे। विषय की विभिन्नता के साथ-साथ शैली मे भी विभिन्नता आ गई। परन्तु इस विभिन्नता की रूप-रेखा अधिक स्पष्ट न हुई। इसका एक कारण तो यह था कि लेखको मे अभी वैयक्तिकता का अभाव था। दूसरे ज्ञान-विज्ञान की ओर ही लेखको की दृष्टि अधिक थी। रचनात्मक साहित्य तथा ललित-कलाओ की ओर कम ध्यान था।

युगीन परिस्थितियाँ किसी भी देश के साहित्य के विकास के लिए पर्याप्त रूप से उत्तरदायी होती है। ज्यों-ज्यो हिन्दी परिमार्जित और अभिव्यजनापूर्ण होती गई, त्यों-त्यों वह जन-साधारण की अभिव्यक्ति का माध्यम बनने लगी। साहित्यकारो के अतिरिक्त राजनैतिक लोग भी उसके विकास में योग देने लगे। हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तो से बाहर अन्यान्य प्रान्तो मे हिन्दी की व्यापकता बढ़ने लगी। हिन्दी की इस व्यापकता का सबसे बड़ा श्रेय सस्थाओ में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग और व्यक्तियों में महात्मा-गांधी

को है। गाधी जी ने बोल-चाल की भाषा पर अधिक जोर दिया। मुसलमानों को सम्पर्क मे लाने के लिए हिन्दी का सुसस्कृतपन भी कम किया जाने लगा। इसी समय उत्तर-प्रदेश-सरकार की ओर से एक मिली-जुली भाषा के निर्माण का उद्योग किया गया। इसके लिए इलाहाबाद में 'हिन्दुस्तानी-एकेडेमी' की स्थापना हुई और उसके द्वारा 'हिन्दुस्तानी' का प्रचार किया गया, जिसमें हिन्दी-उर्दू दोनो मिली-जुली थी। यद्यपि 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' ने 'हिन्दुस्तानी' का प्रसार किया, तथापि उसने हिंदी और उर्दू दोनो ही भाषाओं के साहित्य की वृद्धि मे सहयोग दिया है।

काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा के सद्प्रयत्न और प्रेरणा से सं० १९३७ में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग की स्थापना हुई, जिसके संस्थापक श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन हैं। सम्मेलन ने हिन्दी-प्रचार के लिए अत्यधिक कार्य किया। सम्मेलन ने अनेक विषयो की सुन्दर पुस्तकें तैयार कीं। साथ ही अन्य प्रान्तों में भी प्रांतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की स्थापना की गई। इसी के द्वारा दक्षिण भारत मे हिन्दी का खूब प्रचार हुआ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि द्विवेदी-काल में हिन्दी-भाषा के स्वरूप और प्रसार दोनों का ही विकास हुआ। एक सुन्दर और सुव्यवस्थित भाषा का कलेवर पाकर साहित्य का रूप भी उत्कृष्ट हुआ। साथ ही द्विवेदी जी ने अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से अन्य नये लेखकों को भी जन्म दिया। इन लेखकों द्वारा साहित्य के विभिन्न अंगों—नाटक, उपन्यास, निबन्ध, समालोचना और कहानी—सभी का विकास हुआ। अनुवाद-कार्य भी धड़ल्ले के साथ किया गया। संस्कृत और बंगला-नाटकों के अनुवाद भी पर्याप्त हुए। मौलिक उपन्यासों के साथ-साथ बंगला के उपन्यासों का भी अनुवाद हुआ। इस काल में अनुवाद की ओर ही अधिक प्रवृत्ति रही। निबन्धों की ओर लोगों की रुचि कम रही, फिर भी पत्र-पत्रिकाओं में कभी-कभी अच्छे निबन्धों के दर्शन हो जाते थे। समालोचना का अंग भी

प्रौढ़ होने लगा। पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, पद्मसिंह शर्मा तथा मिश्र-बन्धुओ ने प्राचीन कवियों की कृतियो की आलोचना की। इनकी आलोचना में केवल भाषा के गुण, दोष, रस, तथा अलंकारो का ही विवेचन होता था।

नाटक

नाटक-रचना की जो तीव्र प्रगति भारतेन्दु में हुई थी, वह इस काल में कुछ शिथिल पड़ गई। हाँ, बंगला, अंग्रेजी तथा संस्कृत-नाटकों के अनुवाद अवश्य हुए। पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरि औध' ने 'प्रद्युम्न-विजय' और 'रुक्मिणी-परिणय' नाम के दो नाटक लिखे। पं० बल्देवप्रसाद मिश्र ने 'प्रभास-मिलन', 'लल्ला बाबू', और 'मीराबाई' नामक नाटकों की रचना की है। इसके अतिरिक्त राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने 'चन्द्रकला-भानु कुमार' और बाबू शिवनन्दन सहाय ने 'सुदामा नाटक' लिखा।

बाबू रामकृष्ण वर्मा ने 'वीर नारी', 'कृष्ण कुमारी' और 'पद्मावती' नाम के बंगला-नाटकों का अनुवाद किया। बाबू गोपालराम गहमरी ने 'वनवीर', 'देश-दशा', 'विद्या-विनोद' और 'चित्रांगदा', का बंगला से अनुवाद किया। प० रूपनारायण पाण्डेय द्वारा 'पतिव्रता', 'खान जहाँ', 'अचलायतन', 'उस पार', 'शाहजहाँ', 'दुर्गादास' तथा 'ताराबाई' आदि बंगला के अनुवाद प्रसिद्ध नाटककार श्री द्विजेन्द्रलाल राय, रवींद्रनाथ ठाकुर, गिरीश बाबू, क्षीरेन्दाढकद 'विद्या बिनोद' आदि के नाटकों से हुए।

पुरोहित गोपीनाथ ने अंग्रेजी-नाटक 'रोमियो जूलियट' का अनुवाद 'प्रेम लीला' नाम से और 'एज यू लाइक इट' का अनुवाद 'वेनिस का व्यापारी' नाम से किया। पं० मथुराप्रसाद चौधरी ने 'साहसेन्द्र' नाम से 'मैकबेथ' तथा 'जयन्त' नाम से 'हैमलेट' नामक अंग्रेजी-नाटकों का अनुवाद किया।

संस्कृत के अनुवादों मे पं० सत्यनारायण कविरत्न के 'उत्तर राम-

चरित' और 'मालती माधव' बहुत सुन्दर रहे। पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ने 'वेणी संहार', 'अभिज्ञान शाकुन्तल' तथा 'रत्नावली' नाटिका के अनुवाद किये। लाला सीताराम बी० ए० ने भी अनेक संस्कृत-नाटकों और काव्यों के अनुवाद किये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस उत्थान में मौलिक नाटक बहुत कम लिखे जाकर अनुवाद ही अधिक हुए।

उपन्यास

उपन्यासों का उदय भारतेन्दु-काल में ही हो चुका था। किंतु इस काल में भी मौलिक उपन्यास दो चार ही लिखे गए। हाँ, अनुवाद अवश्य हुए। अनुवादों की यह प्रवृत्ति इस काल में भी बढ़ती गई। बाबू राम-कृष्ण वर्मा ने 'ठग वृत्तान्त माला', 'पुलिस वृत्तान्त माला', 'चित्तौर-चातकी' और 'अकबर' नामक उपन्यासों का अंग्रेजी तथा उर्दू से अनुवाद किया। बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री द्वारा अनूदित उपन्यासों में 'इला', 'प्रमिला', 'जया', और 'मधु मालती' उल्लेखनीय हैं, जिनका अनुवाद बंगला से किया गया।

बाबू गोपालराम गहमरी ने 'चतुर चंचला', 'नये बाबू' 'बड़ा भाई', 'देवरानी जेठानी', 'दो बहनें' और 'तीन पतोहू' नामक उपन्यासों का अनुवाद बंगला से किया। काशी के बाबू गंगाप्रसाद गुप्त ने उर्दू से 'पूना में हलचल' नामक उपन्यास का अनुवाद किया। बा० रामचन्द्र वर्मा का मराठी से अनूदित 'छत्रसाल' भी उच्च श्रेणी का उपन्यास है।

मौलिक उपन्यास-लेखकों में पं० किशोरीलाल गोस्वामी का नाम भारतेंदु-काल के लेखकों में हुआ है। हिंदी के साथ-साथ ये संस्कृत के भी अच्छे विद्वान् थे। इन्होंने नाटक, उपन्यास, पद्य, कहानी, नीति, धर्म, पुराणादि सभी विषयों पर पुस्तकें लिखीं। इनकी भाषा भी बड़ी सरस और आकर्षक होती थी। आपने लगभग ६५ उपन्यास लिखे, जिनमें 'तारा', 'चपला', 'अँगूठी का नगीना', 'लखनऊ की कब्र', 'मल्लिका देवी'

'राजकुमारी', 'प्रणयी-परिणय' और 'माधवी माधव' आदि अधिक प्रसिद्ध हैं।

प० लज्जाराम मेहता ने 'हिंदू गृहस्थ', 'धूर्त रसिकलाल', 'आदर्श दम्पति' तथा 'आदर्श हिंदू' नामक उपन्यास लिखे। इनके उपन्यास साधारण कोटि के है। प० अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' ने भी 'बेनिस का बाँका', 'ठेठ हिंदी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' नामक तीन उपन्यास लिखे। आप वास्तव में उपन्यासकार न होकर कवि थे।

इनके अतिरिक्त मौलिक उपन्यासों में बाबू देवकीनंदन खत्री के जासूसी उपन्यासों की बडी चर्चा रही। इन्होने 'चंद्रकाता' के चार भाग और 'चद्रकांता संतति' के बीस भाग लिखे। इनके उपन्यास घटना-प्रधान हैं, जिनमें कौतूहल की मात्रा अधिक रहती है। यद्यपि साहित्यिक दृष्टि से इनके उपन्यास अच्छे नही है तथापि इन्होने हिंदी का प्रचार अवश्य किया है। बहुत से लोगो ने 'चंद्रकाता' पढने के लिए ही हिंदी सीखी। उस समय कोई भी हिदी पढ़ा-लिखा ऐसा न होगा जिसके हाथ मे 'चंद्रकाता' का कोई भाग न हो। इनके उपन्यासों ने लोगो का खाना, पीना तथा सोना तक हराम कर दिया था। साथ ही 'चद्रकाता' को पढते-पढते कितने ही लोगो की रुचि उपन्यास और साहित्य की ओर झुकी तथा वे अभ्यास करते-करते अच्छे लेखक बन गए।

उपर्युक्त दो उपन्यासो के अतिरिक्त बा० देवकीनदन खत्री ने 'कुसुम कुमारी', 'काजल की कोठरी', 'नरेंद्र मोहिनी' तथा 'वीरेंद्र वीर' आदि अन्य उपन्यास भी लिखे। 'भूतनाथ' उपन्यास अपूर्ण रहा, जिसे इनकी मृत्यु के पश्चात् इनके पुत्र बा० दुर्गाप्रसाद खत्री ने पूरा किया।

इनके अतिरिक्त सवत् १९५९ में बा० ब्रजनदन सहाय बी० ए० ने 'सौंदर्योपासक' और 'राधाकात' नामक दो उपन्यास लिखे। ये उपन्यास भाव-प्रधान तथा विश्लेषणात्मक थे, ऐसे उपन्यास अभी तक हिंदी में बहुत कम लिखे गए थे।

कहानी

उपन्यासो के साथ-साथ कहानियो की ओर लेखको का झुकाव हुआ। अब तक 'सिहासन बत्तीसी' और 'वैताल पच्चीसी'-जैसी घटना-प्रधान कहानियों की पद्धति ही चली आ रही थी। किंतु शिक्षा और साहित्य के विकास के साथ-साथ लोगो की रुचि भी बदली। इसके साथ ही कहानियो के रग मे भी परिवर्तन हुआ। कहानियो मे अब घटना की प्रधानता के स्थान पर विविध प्रकार की भाव-व्यजना के दर्शन भी होने लगे। कहानियो के विकास में एक और बात भी सहायक हुई। वह यह कि बगला-साहित्य मे अंग्रेजी के अनुकरण पर छोटी-छोटी आख्यायिकाएँ 'गल्प' नाम से पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होने लगीं। इससे प्रभावित होकर हिन्दी के लेखकों ने भी 'गल्प'-रचना की ओर रुचि प्रदर्शित की। हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओ मे भी बगला से अनूदित तथा मौलिक 'गल्प' प्रकाशित होने लगी।

कहानियों के विकास मे हमारी पत्र-पत्रिकाओ का विशेष हाथ रहा है। सबसे पहले सं० १९५७ मे 'सरस्वती' मे प० किशोरीलाल गोस्वामी जी की 'इन्दुमती' नामक मौलिक कहानी प्रकाशित हुई। कुछ लोगो ने इसे बंगला की छाया बतलाया, किन्तु इसका प्रभाव गल्प-रचना की दृष्टि से बहुत अच्छा पड़ा। इसके बाद 'सरस्वती' में अनेक कहानियो के दर्शन होने लगे। मा० भगवानदास की 'प्लेग की चुड़ैल' और पडित रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय', प० गिरजादत्त वाजपेयी की 'पडित और पडितानी' तथा बग-महिला की 'दुलाई वाली' कहानियां प्रसिद्ध है।

कहानी का वास्तविक विकास स० १९६८ मे बाबू जयशकर प्रसाद की 'ग्राम' नामक कहानी से प्रारम्भ हुआ। यह उनके प्रसिद्ध पत्र 'इंदु' मे निकली थी। इसके उपरान्त उन्होने 'आकाश दीप', 'बिसाती', 'प्रतिध्वनि', 'स्वर्ग के खंडहर', 'चित्र-मंदिर' आदि अनेक कहानियाँ लिखीं। इसी समय मुन्शी प्रेमचन्द ने हिंदी मे कहानी लिखना प्रारम्भ किया।

मुन्शी प्रेमचंद धनपतराय नाम से पहले उर्दू में कहानियाँ लिखते थे। उनके हिंदी में आने से कहानी-कला मे मौलिकता का सुन्दरतम रूप हिंदी को मिला। जी० पी० श्रीवास्तव की हास्य-रस की कहानियाँ भी इस समय ही निकली थी। विश्वम्भरनाथ कौशिक ने भी इसी समय के आस-पास कहानी लिखना आरम्भ किया था।

स० १९२३ में उनकी पहली कहानी 'रक्षा-बंधन' नाम से 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। इसी समय प० ज्वालाप्रसाद मिश्र की कहानियाँ भी 'सरस्वती' मे प्रकाशित हुई। श्री चतुरसेन शास्त्री भी इसी काल में कहानी-लेखक बनने प्रारम्भ हुए थे।

स० १९२७ मे चद्रधर शर्मा गुलेरी की सर्वश्रेष्ठ कहानी 'उसने कहा था' सरस्वती मे प्रकाशित हुई। यह पहली कहानी थी, जिसमे यथार्थ-वाद के बीच, सुरुचि की पावन मर्यादा के भीतर भावुकता के चरम उत्कर्ष का दर्शन हुआ।

निबन्ध

निबन्ध-साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण अग है। कारण, प्रत्येक भाषा का विकास उसके निबधो मे ही देखा जाता है। हिन्दी में निबधों का सूत्रपात भारतेन्दु-काल मे ही हो चुका था। भारतेन्द बाबू तथा उनके समाकलीन लेखको ने पर्व-त्यौहार आदि सामाजिक विषयों पर निबन्ध-रचना की। परन्तु उस समय पद्य का प्रचार अधिक था, इसलिए निबन्ध रचना उच्चकोटि की न हो सकी। उस समय के निबन्धकार किसी एक विषय पर भी अपनी निर्णयात्मक शैली निश्चित न कर सके। फिर भी पत्र-पत्रिकाओ मे यत्र-तत्र निबन्ध प्रकाशित होते रहे। इससे निबन्धों की परम्परा बराबर प्रचलित रही। निबन्ध-रचना को एक व्यवस्थित रूप तो द्विवेदी जी ने ही दिया। उन्होने निबन्ध-रचना को विविध-विषयो के साथ-साथ विभिन्न शैलियाँ भी दी, इस काल में वर्णनात्मक निबन्धो के अतिरिक्त विचारात्मक तथा भावात्मक निबन्ध भी लिखे जाने लगे।

द्विवेदी जी की सदैव यह विशेषता रही कि उन्होने स्वयं साहित्य-रचना के साथ साथ दूसरों को भी उसकी प्रेरणा दी। प्रेरणा ही नही वरन् अपने अथक परिश्रम द्वारा उन्हे एक अच्छा लेखक बनाने का प्रयत्न भी किया। निबन्ध-रचना के लिए प्रोत्साहित करने के लिए उन्होंने लार्ड बेकन के कुछ निबन्धो का अनुवाद करके 'बेकन-विचार-रत्नावली' के नाम से प्रकाशित कराया। इसी समय प० गगाप्रसाद अग्निहोत्री ने चिपलूणकर के मराठी निबन्धो का अनुवाद 'निबन्धमालादर्श' के नाम से प्रकाशित किया। इसके परिणाम स्वरूप पत्र-पत्रिकाओं में अनेक निबन्ध प्रकाशित हुए। किन्तु उन निबन्धो मे विषयो और विचारो का संकलन ही होता था, लेखक की अन्तः प्रेरणा से निकलने बाली विचार-धारा उनमे नही मिलती थी। द्विवेदी-काल मे सात प्रमुख निबन्ध-सग्रह प्रकाशित हुए — १. साहित्य-सीकर २. साहित्य-सदर्भ ३. समालोचना-समुच्चय, ४. विचार-विमर्श, ५. रसज्ञ-रंजन, ६. लेखाजलि और ७. आलोचनांजलि। द्विवेदी-काल के निबन्धकारो में पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, पं० माधवप्रसाद मिश्र, प० गोविन्दनारायण मिश्र, प० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, बाबू गोपालराम गहमरी, बा० श्यामसुन्दरदास, बाबू गुलाबराय एम० ए० और पं० रामचन्द्र शुक्ल आदि के नाम उल्लेख-नीय हैं। इन निबन्धकारो का सक्षेप मे परिचय दिया जाता है।

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी—आपका जन्म सं० १९१७ में जिला रायबरेली के दौलतपुर नामक ग्राम में हुआ था। द्विवेदीजी ने सन् १९०५ मे 'सरस्वती' का सम्पादन-भार सँभाला और तब से अपना सारा समय हिन्दी की सेवा मे ही लगाया। आपकी लेखन-कला की विशेषता यह थी कि आप कठिन-से-कठिन विषय को सर्व साधारण को समझाने के लिए सरल-से-सरल भाषा में लिखते थे। द्विवेदीजी ने अनेक लेख लिखे, किन्तु उनमें नई उद्भावनाएँ कम मिलती है। आपके लेख विचारात्मक और पाडित्यपूर्ण हैं। द्विवेदी जी के लेखों मे गम्भीर विषयो की विवेचना नही की गई वरन् प्राथमिक बातों की ओर ध्यान आकर्षित किया

गया है। हिन्दी-संसार में आपका महत्त्व एक निबन्धकार के रूप मे ही नहीं वरन् इसलिए भी है कि आपने हिन्दी को अनेक लेखक प्रदान किये। इसीलिए आपको वर्तमान हिन्दी का जनक और एक युग विशेष का निर्माता कहा जाता है। आपने हिन्दी को शुद्ध रूप प्रदान करके उसे व्याकरण-सम्मत बनाया। आपकी ही प्रेरणा और प्रयत्न से हिन्दी-भाषा पर नियत्रण हुआ। सं० १९९५ में आपकी मृत्यु हुई।

श्री माधवप्रसाद मिश्र—आपका जन्म जिला हिसार के अन्तर्गत कूंगड नामक गाँव में हुआ था। आप कट्टर सनातनधर्मी और भारतीय सस्कृति के रक्षक थे। आपके लेख बड़े ओजस्वी और भाषा प्रौढ होती थी। आपके निबन्धों का सग्रह 'माधव मिश्र निबन्ध-माला' के नाम से प्रकाशित हुआ। इस सग्रह ही के विभिन्न विषयों के निबन्धों को देखकर मिश्रजी की बहुमुखी प्रतिभा में कोई संदेह नही रह जाता। रामलीला, व्यास-पूर्णिमा, हिन्दी भाषा, काव्यालोचना, स्वदेशी-आन्दोलन, परीक्षा, क्षमा आदि आपके अच्छे निबन्ध है। मिश्रजी की मृत्यु स० १९६८ में प्लेग के कारण हुई।

बा० गोपालराम गहमरी—आप गहमर जिला गाजीपुर के निवासी थे इसीलिए गहमरी कहलाए। आपकी प्रसिद्धि जासूसी उपन्यास लिखने के कारण अधिक हुई। पत्र-पत्रिकाओं में बहुधा आपके लेखादि भी प्रकाशित हुआ करते थे। आपकी भाषा चटपटी और चलती हुई होती है। विषय के अनुरूप आपकी भाषा बदलती रहती है। आपकी मृत्यु १९४६ में हुई।

बाबू बालमुकन्द गुप्त—आपका जन्म पंजाब के रोहतक जिले के गुरयानी नामक गाँव में सं० १९२२ में हुआ। कलकत्ता से निकलने वाले 'बगवासी' और 'भारत मित्र' नामक पत्र के सम्पादन-काल मे आपने अनेक विषयों पर सुन्दर निबन्ध लिखे थे जो 'गुप्त निबधावली' नाम से सगृहीत होकर प्रकाश में आ चुके हैं। गुप्तजी बड़े छेड-छाड़-प्रिय और विनोदी स्वभाव के थे। आपकी भाषा चलती हुई किन्तु विचारों

की गम्भीरता लिये होती थी। गुप्तजी की मृत्यु सं० १९६४ मे हुई।

पं० गोविन्दनारायण मिश्र—ये हिन्दी के प्राचीन लेखक और संस्कृत के उत्कृष्ट विद्वान् थे। इनके लेखों मे गम्भीरता और ओज है। आपका गद्य साधारण गद्य के धरातल से कहीं ऊंचा होता है। आपकी भाषा समास, अनुप्रास और अलंकारो से अलकृत होकर एक सज-धज के साथ चलती थी। शब्दाडम्बर के इस घटाटोप में उसके स्वाभाविक रूप का कही पता नही चलता। आपकी लेखन-शैली संस्कृत कवि बाणभट्ट के आदर्श की थी। आप अपने विचारो को बड़े लम्बे-लम्बे वाक्यों मे व्यक्त करते थे। आपके लेखो में काव्य का-सा आनन्द तो अवश्य आता है, किन्तु उनमे चिन्तन और मनन की सामग्री का अभाव रहता है। आपके निबन्धो का सग्रह 'गोविन्दावली' के नाम से प्रकाशित हो चुका है।

बा० श्यामसुन्दरदास—आपका जन्म स० १९३० मे हुआ। आप काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के जन्मदाता थे। आप अपने जीवन-पर्यन्त हिंदी के एक सिद्धहस्त लेखक नही, प्रत्युत प्रभावशाली वक्ता भी रहे। आपने स्वय अनेक सुन्दर निबध लिखे और अन्य लेखको से लिखवायें। आपकी भाषा शुद्ध हिदी है। हिदी-भाषा और उसके कवियों के सम्बन्ध मे आपने बहुत ही खोजपूर्ण कार्य किया है। आपकी लिखी हुई बहुत सी पुस्तके आज विद्यालयो मे पढाई जाती हैं। आपके 'भाषा-विज्ञान,' 'साहित्या-लोचन' और 'हिंदी-भाषा तथा साहित्य' तीन ग्रथ बड़े प्रसिद्ध है। आपकी मृत्यु स० २००२ मे हुई।

पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी—गुलेरी जी का जन्म सं० १९४० में जयपुर के एक प्रसिद्ध ब्राह्मण-परिवार मे हुआ। आपका नाम हिंदी-निबध के क्रमिक विकास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। आपने 'समा-लोचक' नामक एक पत्र भी निकाला था। आपने अधिक निबध नहीं लिखे, किंतु जो कुछ लिखे, वे प्रौढ़, परिमार्जित और साहित्यिक कोटि के है। आपकी विचार-धारा पाडित्यपूर्ण और शैली मीठी चुटकियो से युक्त होती थी। भाषा-शैली सरल और व्यावहारिक होती है। भाषा,

भाषा विज्ञान, पुरातत्त्व आदि गूढ विषयो पर आपने बहुत लिखा है। 'ठलुआ-धर्म' और 'मारेसि मोहि कुठाऊँ' आपके बहुत लोक-प्रिय और प्रसिद्ध निबध है।

बाबू गुलाबराय—इन्होने भावात्मक और विचारात्मक दोनो ही प्रकार के निबध लिखे है। आपके छोटे-छोटे विविध विषयक निबधो का सग्रह 'फिर निराश क्यो' नामक पुस्तक के रूप मे प्रकाशित हुआ है। निबधकार के साथ-साथ आप एक समालोचक भी है। आपकी भाषा चुटीली होती है।

पं० रामचन्द्र शुक्ल—शुक्ल जी निर्विवाद रूप में इस युग के सर्व-श्रेष्ठ निबधकार माने जाते है। आप प्रारम्भ से ही 'आनंद कादम्बिनी' नामक पत्रिका में लेख लिखते चले आ रहे थे। क्रमशः आपकी शैली में इतनी गम्भीरता और प्रौढता आ गई कि आपने समस्त निबध-साहित्य के लिए एक आदर्श उपस्थित कर दिया। सस्कृत, अग्रेजी आदि साहित्य से पूर्ण परिचित होते हुए भी आपकी अभिव्यंजना-शैली का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है। आपने पाडित्य-प्रदर्शन अथवा कोरी धाक जमाने के लिए कभी नही लिखा, आपकी रचनाओ मे एक-एक शब्द नपा-तुला होता है। भाव-क्षेत्र की असम्बद्ध बातो को एक सूत्र में गुम्फित करके लडी के रूप मे रखने की विशेषता वास्तव में शुक्ल जी को ही प्राप्त है। आपकी लेखनी के सहयोग से ही निबन्ध-कला अपनी चरम विकासावस्था को प्राप्त हुई। आपने करुणा, क्रोध और प्रीति आदि पर जो सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विवेचना की है वह हिन्दी-साहित्य के लिए एक नई देन है। अग्रेजी-साहित्य में जो स्थान आज रस्किन और बेकन को प्राप्त ह वही स्थान हिन्दी-साहित्य में शुक्ल जी को प्राप्त है। 'विचार-बीथी', 'चिन्तामणि' और 'त्रिवेणी' नाम से आपके निबध-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'चिन्तामणि' पर आपको मंगलाप्रसाद पारितोषिक भी मिला है। वास्तव में आपके हाथों में आकर हिन्दी भाषा गौरवान्वित ही हुई है।

इन लेखको के अतिरिक्त पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी का नाम भी निबधकारो मे आ सकता है। इन्होने अधिकाश लेख निबधों के उदाहरण स्वरूप में लिखे है, इसलिए वे साहित्यिक निबधो की कोटि मे नही आ सकते हाँ, पढ़ने वाले विद्यार्थियो को उनसे विशेष लाभ हुआ। आपने स्कूलो की भिन्न-भिन्न कक्षाओं के लिए पाठ्य पुस्तके अधिक लिखी है। 'हिन्दी-निबध शिक्षा' और 'प्रबध रचना-शैली' इसी कोटि की पुस्तके है। आपके निबधो के सग्रह 'गद्यमाला' और 'निबध-निचय' नाम से प्रकाशित हो चुके हैं।

समालोचना

यद्यपि भारतेन्दु-काल मे समालोचना का सूत्रपात हो चुका था तथापि आधुनिक समालोचना का मार्ग द्विवेदी-काल में ही प्रशस्त हुआ। इससे पहले जो थोडी-बहुत समालोचना हुई, वह पत्र-पत्रिकाओं मे ही हुई, पुस्तकाकार कोई आलोचना सामने नही आई। शायद इसी कारण विशेष से अध्ययनपूर्ण आलोचनाओ की परम्परा न चली। आलोचना के दो प्रमुख रूप होते है—निर्णयात्मक और व्याख्यात्मक। निर्णयात्मक आलोचना मे केवल गुण-दोषो का विवेचन करके कृति का मूल्य निश्चित किया जाता है। व्याख्यात्मक आलोचना में किसी ग्रंथ मे कही हुई बातों पर व्यवस्थित रूप से विचार होता है। विवेचन द्वारा उन बातो का अनेक ढंग से स्पष्टीकरण किया जाता है। व्याख्यात्मक आलोचना मे मूल्यांकन का महत्व नही होता। ऐसी आलोचना कथावस्तु और विषयों तक ही सीमित रहती है। इसमें समय विशेष की परिस्थितियों के प्रभाव को ध्यान मे रखकर काव्य की व्याख्या की जाती है।

भारतेन्दु-काल में निर्णयात्मक समालोचना का ही सूत्रपात हुआ। उस समय के आलोचक किसी कवि की कृति मे केवल दोष निकालकर ही अपने पक्ष की स्थापना करने मे लीन रहते थे। उसके गुणो को प्रकाश मे नही लाया जाता था। केवल छिद्रान्वेषण ही समालोचना का

मुख्य उद्देश्य बन गया था। भारतेन्दु काल में बद्रीनारायण चौधरी, प० बालकृष्ण भट्ट ने हिन्दी मे समालोचना का सूत्रपात किया। भट्ट जी ने ला० श्रीनिवासदास के 'सयोगिता-स्वयवर' नाटक की खरी आलोचना की थी। चौधरी जी ने उक्त नाटक के केवल दोषो पर ही प्रकाश डाला था।

द्विवेदी-काल में हम सर्वप्रथम प० महावीरप्रसाद द्विवेदी को इस ओर बढता पाते है। उन्होने स० १८६६ मे 'हिन्दी कालिदास की आलोचना', सं० १९०० मे 'विक्रमाक देव चरित-चर्चा' और 'नैषध चरित-चर्चा' द्वारा आलोचना के मार्ग को प्रथम प्रकाश दिखाया। यह ध्यान रहे कि इनमें से अधिकांश रचनाएँ खडनात्मक है, विधेयात्मक नही।

इसके अतिरिक्त द्विवेदी जी ने 'पुस्तक परिचय' की एक नई शैली चलाई। स्तम्भ मे पुस्तक तथा लेखक का परिचय देकर उसकी सुन्दरता-असुन्दरता दिखाई जाती थी। इससे प्रभावित होकर कई पत्र-पत्रिकाओं में पुस्तक-समीक्षा निकलने लगी। इस प्रकार परिचयात्मक समालोचना का एक विशाल साहित्य प्रस्तुत हो गया, किन्तु उनमे लेखको की त्रुटियाँ ही अधिक दिखाई जाती थी। द्विवेदी जी की आलोचना भी यथार्थ आलोचना नही थी, किन्तु उनकी आलोचना ने लेखको को भाषा-सुधार के लिए विवश कर दिया।

द्विवेदीजी के बाद मिश्रबन्धुओं ने इस क्षेत्र में कदम बढ़ाया। उन्होने 'हिन्दी नवरत्न' लिखा, जिसमें देव और बिहारी की तुलना करके उन्होने देव को ऊँचा उठाया और बिहारी को नीचे गिराया। फिर तो इस विषय को लेकर साहित्य मे अच्छी-खासी दलबन्दी खड़ी हो गई। लाला भगवानदीन ने 'बिहारी और देव' लिखा, जिसमें अनेक तर्कों के साथ बिहारी को ऊँचा दिखाया गया और देव को नीचा। इसके उत्तर में मिश्रबन्धुओं ने 'देव और बिहारी' लिखा, किन्तु उसमे आलो-चना की कोई कसौटी सामने नही रखी गई। बिहारी-सम्बन्धी इन आलोचनाओं ने देव और बिहारी को लेकर एक साहित्यिक वितडावाद

प्रारम्भ कर दिया, जिसके फलस्वरूप पत्र-पत्रिकाओ में पक्ष और विपक्ष में बहुत से लेख निकले, जिनका आज समालोचना-साहित्य में केवल ऐतिहासिक महत्त्व है। इन लेखो से तुलनात्मक समीक्षा की एक बाढ-सी आ गई, जिसमे अध्ययन और रुचि-संस्कार का प्रभाव था। इस वितडा-वाद से हिन्दी-प्रेमियों का ध्यान समालोचना की ओर आकर्षित तो अवश्य हुआ, किन्तु वह रूढिगत था, नूतन उद्भावना और मौलिक प्रतिभा का उसमें अभाव ही था।

इसी समय एक प्रसिद्ध आलोचक प्रकट हुए – प० पद्मसिह शर्मा। इन्होंने 'बिहारी' पर आलोचनात्मक पुस्तक लिखी, जिसमें 'आर्या सप्तशती', और 'गाथा-सप्तशती' के पद्यों के साथ बिहारी की तुलना करके युक्ति तथा प्रमाणों के आधार पर बिहारी की श्रेष्ठता प्रमाणित की गई है।

द्विवेदी युग की सबसे महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'मिश्र-बन्धु-विनोद' है, जिसमें नागरी-प्रचारणी-सभा की खोज-रिपोर्टों की सामग्री को ऐतिहासिक रूप के साथ रखने के अतिरिक्त कवियों के विषय में छोटी सी परिचयात्मक समालोचनाएँ लिखने का प्रयत्न भी किया गया है। मिश्र-बंधुओ के 'हिंदी-नवरत्न' ने भी इस दिशा में उच्च श्रेणी की पाठ्य-सामग्री उपस्थित की। समालोचना के क्षेत्र में इस पुस्तक के स्वागत और विरोध का एक अपना इतिहास है और हिंदी-समालोचना का कोई भी प्रेमी उससे अपरिचित नही रह सकता।

इस प्रकार हम देखते है कि द्विवेदी-काल मे आधुनिक समालोचना के लिए एक नवीन मार्ग प्रशस्त हो गया था। आगे चलकर पं० रामचंद्र शुक्ल तथा बा० श्यामसुन्दरदास ने आलोचना-साहित्य में महत्त्वपूर्ण अन्वेषण किये। इनका उल्लेख अगले उत्थान मे किया जायगा।

खड़ी बोली-पद्य धारा

गद्य-साहित्य में खड़ी बोली का पर्याप्त विकास हो चुका था, किंतु

पद्य के लिए अभी ब्रजभाषा का ही प्रयोग होता था भारतेन्दु-काल में यद्यपि खडी बोली मे भी ब्रजभाषा का पुट रहता था। इतना अवश्य कह सकते है कि भारतेन्दु-काल मे ही पद्य के लिए खडी बोली की आवश्यकता का अनुभव लोग करने लगे थे। क्योंकि गद्य खड़ी बोली मे और पद्य ब्रजभाषा मे लिखा जाना एक अखरने वाली बात थी। इसके लिए भारतेन्दु-काल के अन्त मे प्रयास भी आरम्भ हो चुका था। क्रमश. पद्य मे खड़ी बोली को स्थान दिया जाने लगा। इस प्रयास मे लावनी और खयाल-बाजो ने बडी सहायता पहुँचाई। इनके खयाल-लावनी उर्दू-मिश्रित खड़ी बोली में होते थे। इसी समय स० १६१३ के आस-पास लखनऊ के 'ललित किशोरी' ने खडी बोली में झूलना आदि छद लिखे। जैसे :

जंगल में अब रमते है, दिल बस्ती से घबराता है।
मानुष गध न भाती है, सँग मरकट मोर सुहाता है॥
चाक गरेबाँ करके दम दम, आहें भरना आता है।
'ललित किशोरी' इश्क रात-दिन, ये सब खेल खिलाता है॥

इन खयालबाज तथा लावनी झूलना वालो ने जहाँ खड़ी बोली को प्रोत्साहन दिया वहाँ उर्दू के नये-नये छदो का भी प्रयोग किया।

इस प्रकार हम देखते है कि भारतेन्दु-काल के अतिम दिनो में पद्य मे खड़ी बोली के दर्शन यदा-कदा होने लगे थे, किन्तु अभी उनमे सुन्दरता और सफाई न आई थी और न ही अधिक कवियों ने उसे अपनाया था। खड़ी बोली को पद्य में सर्वप्रथम स्थान देने का श्रेय भी पं० महावीर-प्रसाद द्विवेदी को ही है। इन्होने खड़ी बोली में पद्य-रचना की प्रणाली चलाई। साथ ही संस्कृत के वृत्तो के अनुरूप नये छंदों का प्रयोग किया। इस प्रकार पद्य में भी खड़ी बोली के जन्मदाता महावीरप्रसाद द्विवेदी माने जाते है। उन्ही के साथ पं० श्रीधर पाठक ने भी खड़ी बोली मे काव्य-रचना की। इसके पश्चात् गद्य की भाँति पद्य में भी उत्तरोत्तर खड़ी बोली का विकास होता गया। नीचे खडी बोली के प्रमुख कवियों का संक्षेप मे उल्लेख करते हैं।

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी—द्विवेदी जी ने खड़ी बोली के अनिश्चित रूप को निश्चित और परिमार्जित करके उसे कार्योपयुक्त बनाया और कविता में उसका प्रयोग किया। साथ ही नवीन शैली और वृत्तो का प्रयोग करके प्राचीन परिपाटी के मोह को दूर किया। द्विवेदी जी ने पद्य में सदैव बोल-चाल की भाषा पर जोर दिया। इन्होने 'कुमार सभव' आदि ग्रंथों के अनुवाद भी किये, जो अपने ढंग के अनुपम है। इनकी कविता का उदाहरण देखिए.

> **मूल्यवान मंजुल शैया पर पहले निशा बिताता था।**
> **सुयश और मंगल-गीतों से प्रात जगाया जाता था।।**
> **वही आज कुश, काशों से संयुक्त भूमि पर सोता है।**
> **श्रुति-कर्कश शृगाल-शब्दों से हा-हा निद्रा खोता है।।**

श्रीधर पाठक—पाठक जी भी द्विवेदी जी के साथ ही खडी बोली के प्रथम कवि माने जाते है। द्विवेदी जी की अपेक्षा इनकी कविताओ की भाषा अधिक परिमार्जित, सरल और प्रभावशाली है। इनकी रचनाओं में कवित्व के दर्शन भी होते है। पाठक जी ने गोल्डस्मिथ की पुस्तको का 'ऊजड ग्राम', 'एकांतवासी योगी', और 'श्रात पथिक' नाम से अनुवाद किया और कतिपय मौलिक कविताएँ भी लिखी। मराठी साहित्य की प्रगति से प्रभावित होकर आपने 'सरस्वती' मे छोटी-छोटी खडी बोली की कविताएँ लिखी।

पाठक जी की रचनाओ पर राष्ट्रीयता की छाप रहती है। आप प्रकृति के भी परमोपासक थे। 'काश्मीर-सुषमा' में आपने काश्मीर के प्राकृतिक-सौन्दर्य का अनूठा वर्णन किया है। आपके राष्ट्रीय गीत 'भारत-गीत' में संग्रहीत हैं। इनकी कविता का उदाहरण देखिए :

> **इस पर्वत की रम्य तटी में, मै स्वच्छन्द विचरता हूँ।**
> **परमेश्वर की दया देखकर, पशु-हिंसा से डरता हूँ।।**
> **गिरिवर ऊपर की हरियाली झरना जल निर्दोष,**
> **कन्द-मूल, फल-फूल, इन्हीं से करूँ क्षुधा-सन्तोष।**

पं० नाथूराम शंकर—आप ब्रजभाषा मे बड़ी सुन्दर कविता करते थे। खड़ी बोली को अपनाने पर आपने उसमें भी अपना परम कौशल दिखाया। आप आर्यसमाजी थे,इस कारण आपके काव्य मे उपदेशात्मकता की छाप अधिक आ गई। किन्तु अपनी भाषा की सरसता और काव्य के आधिपत्य से आपने उपदेशात्मकता को भी सरस बना दिया है। आपकी अतिशयोक्तियाँ और उपमाएँ भी अपने ढंग की निराली ही होती थी। कविता का उदाहरण नीचे दिया जाता है .

आँख से न आँख लड़ जाय इसी कारण से,
भिन्नता की भीत करतार ने लगाई है।
नाक में निवास करने को हठी शंकर की,
छबि ने छपाकर की छाती पै छपाई है॥
कौन मान लेगा कीर तुंड की कठोरता में,
कोमलता तिल के प्रसून की समाई है।
सैकड़ों नुकीले कवि खोज-खोज हारे पर,
ऐसी नासिका-सी और उपमा न पाई है॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'—आप भी ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनो मे ही कविता करते थे। आपकी ब्रजभाषा की कविता अत्यन्त सुन्दर होती थी। आपका 'रस-कलस' रीति-ग्रन्थो के अनुरूप ही लिखा गया है। 'रस-कलस' मे आपने प्राचीन नायिकाओ के साथ 'देश-प्रेमिका' 'धर्म-सेविका' आदि नायिकाओ का भी वर्णन किया है। खड़ी बोली मे आपका प्रमुख ग्रथ 'प्रिय प्रवास' है, जो सस्कृत छन्दों मे लिखा गया है। 'प्रिय प्रवास' में श्रीकृष्ण की लीलाओ का अप्रत्यक्ष रूप से वर्णन किया गया है। इसकी घटनाओ का चित्रण विप्रलभ शृङ्गार अथवा वात्सल्य का अंगभूत होकर हुआ है। 'प्रिय प्रवास' पर आपको मंगलाप्रसाद-पारितोषिक भी मिल चुका है। खड़ी बोली मे आपने उर्दू-शैली के छन्दो की रचना भी की है। यथा :

बात कैसे बता सकें तेरी,
हैं मुँह में लगे हुए ताले।
बावले बन गए न बोल सके,
बाल की खाल काढ़ने वाले ॥

'प्रिय प्रवास' के छन्द का उदाहरण देखिए :

पाई जातीं विविध जितनी वस्तु है जो सबों में।
मैं प्यार को अमित रंग औ' रूप में देखती हूँ ॥
तो मैं कैसे न उन सबको प्यार जी से करूँगी।
यों है मेरे हृदय-तल में विश्व का प्रेम जागा ॥

मैथिलीशरण गुप्त—गुप्तजी का जन्म सं० १९४३ में झाँसी जिले के अन्तर्गत चिरगाँव में हुआ था। गुप्तजी वर्तमान युग के प्रतिनिधि कवि हैं। प्रारम्भ में आपकी भक्ति-भाव से भरी हुई, ब्रजभाषा की कुछ कविताएँ 'सरस्वती' में प्रकाशित हुईं। बाद मे खडी बोली में आपकी प्रतिभा उत्तरोत्तर विकसित होती गई। आप भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के अनन्य उपासक तथा धार्मिक प्रवृत्ति के वैष्णव कवि है। भारत की वर्तमान अवस्था को देखकर आपके कवि-हृदय को भारी ठेस लगी और आपके मानसिक हृदयोद्गार 'भारत भारती' के रूप में बह निकले। आपकी कीर्ति का स्तम्भ 'भारत भारती' ही है, जिसके कारण आपको 'राष्ट्र कवि' की उपाधि मिली। 'भारत भारती' में भारत के अतीत गौरव के साथ-साथ वर्तमानकालीन विपन्नावस्था का चित्रण भी किया गया है। इसमें काव्य की विशिष्ट पदावली, रसात्मक चित्रण, वाग्वैचित्र्य आदि का अधिक ध्यान नहीं रखा गया है, फिर भी बीच-बीच में मार्मिक तथ्यों का समावेश होने से यह काव्य अति सुन्दर बन गया है और स्वदेश-प्रेमी युवकों में बहुत लोकप्रिय हुआ है। वर्तमान वर्णों की दुरवस्था देखकर आप उन्हें ललकारते हैं .

क्षत्रिय सुनो, अब तो कुयश की कालिमा को मेट दो।
निज देश को जीवन सहित, तन, मन तथा धन भेंट दो॥
वैश्यो ! सुनो व्यापार सारा मिट चुका है देश का।
सब धन विदेशी हर रहे है, पार क्या है क्लेश का॥

इसके अतिरिक्त गुप्त जी कई प्रबन्ध काव्य तथा खण्ड काव्य लिख चुके है। जिनके नाम ये है—'रंग मे भंग', 'जयद्रथ वध' 'विकट भट', 'पलासी का युद्ध', 'गुरुकुल', 'किसान', 'सिद्धराज', 'पंचवटी', 'यशोधरा', 'साकेत', 'दिवोदास' और 'जय भारत'।

'साकेत' और 'यशोधरा' इनके दो बड़े प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ है। इन दोनो ग्रन्थो में गुप्त जी के कवित्व का पूर्ण विकास हुआ है। 'यशोधरा' की रचना नाटकीय ढग पर हुई है, जिसमें भगवान् बुद्ध के जीवन से सम्बन्ध रखने वाले पात्रो के जीवन पर, और विशेषत: यशोधरा के जीवन पर, प्रकाश डाला गया है।

'साकेत' के नायक और नायिका लक्ष्मण और उर्मिला है। इसमें उर्मिला के अपूर्व त्याग, तथा वियोग-वर्णन का प्रभावशाली चित्रण किया गया है। इसमें गुप्तजी ने उर्मिला की वियोगावस्था की नाना अन्तर्वृत्तियों का सजीव चित्रण करते हुए बीच-बीच में बड़े उच्च भावों की व्यजना की है :

प्रभु नहि फिरे, क्या तुम्हीं फिरे ?
हम गिरे, अहो ! तो गिरे-गिरे॥

गुप्तजी ने छायावाद और रहस्यवाद की बहती हुई धारा में भी हाथ पखारने का प्रयास किया है, किन्तु इसमें उन्हे सफलता नहीं मिली। इनके ऐसे गीत 'झंकार' में संगृहीत है।

निकल रही है उर से आह।
ताक रहे सब तेरी राह॥
चातक खड़ा चोंच खोले है, सम्पुट खोले सीप खड़ी।
मैं अपना घट लिये खड़ी हूँ, अपनी-अ नी हमें पड़ी॥

पं० रामचरित उपाध्याय—इनका जन्म स० १९२९ मे गाजीपुर मे हुआ। ये सस्कृत के अच्छे पडित थे। पहले 'सरस्वती' मे पुराने ढंग की कविता लिखा करते थे। फिर द्विवेदी जी के प्रोत्साहन से खडी बोली में लिखने लगे। 'राष्ट्र भारती', 'देवदूत', 'देव सभा', 'देवी द्रौपदी', 'भारत-भक्ति', 'विचित्र विवाह' आदि अनेक कविताएँ इन्होने लिखी। 'रामचरित चिन्तामणि' इनका एक महाकाव्य भी है। 'रामचरित-चिन्तामणि' मे कई स्थल बहुत सुन्दर बन पड़े है। इनकी कविता का उदाहरण नीचे दिया जाता है :

> **कुशल से रहना है यदि तुम्हें**
> **दनुज तो फिर गर्व न कीजिए।**
> **शरण में गिरिए रघुनाथ की,**
> **निर्बल के बल केवल राम है॥**

पं० रूपनारायण पांडेय—यो तो पहले आपने ब्रजभाषा की कविता की, किन्तु खडी बोली के लिए अधिक प्रसिद्ध है। आप कविता के लिए बडा उपयुक्त विषय चुनकर उसमे पूरी रसात्मकता ला देते है। आपकी कविताओ का संग्रह 'पराग' नाम से प्रकाश में आ चुका है। कविता का उदाहरण नीचे देखिए :

> **अहह अधम आँधी आ गई तू कहाँ से ?**
> **प्रलय घन-घटा-सी छा गई तू कहाँ से ?**
> **पर दुःख-सुख तूने हाय देखा न भाला।**
> **कुसुम अधखिला ही हाय क्यों तोड़ डाला॥**

पं० लोचनप्रसाद पांडेय—ये बचपन में ही कविता करने लगे थे। सं० १९३२ में इनकी कविता 'सरस्वती' में निकलने लगी। इनकी रचनाएँ कई प्रकार की हैं। इन्होने कथा-प्रबन्ध के रूप में भी लिखा है और फुटकर रचनाएँ भी की है। 'मृगी दुःख मोचन' में इन्होंने खड़ी बोली के सवैयो मे एक मृगी की करुणाजनक परिस्थिति का सुन्दर चित्रण किया है। इससे पशुओं के हृदय तक पहुँचने वाली इनकी

तीव्र अनुभूति तथा व्यापक काव्य दृष्टि का पता लगता है। इनकी रचनाएँ सरस और सुन्दर होती है। उदाहरण नीचे देखिए :

सुमन विटप कलियाँ काल की क्रूरता से।
झुलस जब रही थीं ग्रीष्म की उग्रता से॥
इस कुसमय में हा ! भाग्य-आकाश तेरा।
अभिनव लतिके ! या घोर आपत्ति घेरा॥

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'—आप हिन्दी के बड़े ही भावुक और सरस हृदय कवि है। पहले आप उर्दू मे 'त्रिशूल' के नाम से लिखते थ। आपकी सुन्दर और सरस कविताओ के तीन संग्रह 'प्रेम पच्चीसी', 'कुसुमाजलि' और 'कृषक-क्रंदन' के नाम से प्रकाशित हो चुके है। कविता का उदाहरण देखिये :

तू है गगन विस्तीर्ण तो मै एक तारा क्षुद्र हूँ।
तू है महासागर महा, मै एक धारा क्षुद्र हूँ॥
तू है महानद तुल्य तो मै एक बूँद समान हूँ।
तू है मनोहर गीत तो मै एक उसकी तान हूँ॥

लाला भगवानदीन—'लक्ष्मी' नामक पत्रिका के सम्पादक होने पर आपने खडी बोली की कविता करना प्रारम्भ किया। आपकी कविताएँ अधिकतर वीर-रस-पूर्ण होती है। इनकी भाषा मे उर्दू-फारसी के चलते-फिरते शब्द भी आ जाते थे। आपने तीन काव्य लिखे—'वीर पंचरत्न' 'वीर बालक' और 'वीर क्षत्राणी'। आप पुराने हिंदी-साहित्य और काव्य के अच्छे मर्मज्ञ थे। आपने प्राचीन काव्यो की नवीन ढङ्ग से टीकाएँ भी की है। कविता का नमूना नीचे दिया है :

वीरों की सुमाताओं का यश जो नहीं गाता।
वह व्यर्थ सुकवि होने का अभिमान जनाता॥
जो वीर सुयश गाने में है ढील दिखाता।
वह देश के वीरत्व का है मान घटाता॥

लब वीर किया करते है सम्मान कलम का।
वीरों का सुयश-गान हैं अभिमान कलम का।।

रामनरेश त्रिपाठी—आप मूलतः जिला जौनपुर के रहने वाले हैं। किन्तु बाद में प्रयाग में जाकर पुस्तक-प्रकाशन करने लगे थे। वहाँ से आपने 'बानर' नामक एक 'बालोपयोगी' पत्र भी निकाला था। त्रिपाठी जी हिन्दी के अच्छे कवियों में हैं। आपकी रचनाओ पर राष्ट्रीयता की छाप रहती है और वे देश-प्रेम में डूबी हुई होती है। आपकी कविता प्रसाद-गुण लिये होती है, जिसकी संस्कृत पदावली का सौन्दर्य देखते ही बनता है। आपने 'पथिक', 'मिलन' और 'स्वप्न' तीन खण्ड-काव्य लिखे है। ये तीनों काव्य बड़े मर्म-भेदी और हृदय को स्पर्श करने वाले है। 'स्वप्न" में देश-प्रेम और त्याग के उच्च आदर्श और आशावाद का एक अपूर्व संदेश है। देखिये .

विघ्न समस्त करें पद-पद पर
मेरे आत्म तेज को जागृत।
निष्फलता मुझको अधिकाधिक,
करे सचेष्ट सतर्क दृढ़व्रत।।
पश्चात्ताप मार्ग दिख पावे,
भय खावे चौकसी निरन्तर।
करे निराशा इस जीवन को
शांत, स्वतंत्र, सरल, शुचि, सुन्दर।।

अनूप शर्मा—आप खड़ी बोली के प्रसिद्ध कवि हैं। आपने खड़ी बोली की कविता में कवित्त और सवैयों का प्रयोग किया है। आपका 'सिद्धार्थ' नाम का एक प्रबन्ध-काव्य भी निकला है। आपकी कविताओं का संग्रह 'शर्वाणी' नाम से प्रकाश में आया है। उदाहरण देखिए :

नील मणि-नूपुर-विमंडित विराजमान
हरते कलिन्द-कन्यका का अभिमान है।

अति अवदात नख-छवि प्रकटी है जहाँ
सुरसरि-सदृश धवल परिधान हैं ॥
ललित ललाम लसते हैं रंग यावक के
रचते सरस्वती-विलास का विधान हैं।
तेरे युग चरण त्रिवेणी की तरंग सम,
साधु-सज्जनों के सिद्ध साधन समान हैं ॥

ठाकुर गोपालशरणसिंह—आपने खड़ी बोली की कविता को प्राचीन छदो में ढाला है। आपके कवित्त व सवैये बड़े सुन्दर होते है। भाषा सरल और सरस है। सरस भाषा में आपने गम्भीर और ऊँचे भावों की बड़ी सुन्दर व्यजना की है, यही आपकी विशेषता है। आपकी कविताओं से प्रेम की साधना का प्रभाव झलकता है। 'माधवी' नाम से आपका कविता-संग्रह प्रकाश में आ चुका है। 'कादम्बिनी' मे आपकी प्रतिभा और भी अधिक विकास को पहुँची है। आपकी 'कादम्बिनी' मे प्रकृति के हँसते-बोलते सौदर्य के दर्शन होते है। आपकी कविता का नमूना नीचे दिया जाता है :

शरद जुन्हाई-सी है गात की गोराई चारु,
आनन अनूप भासे स्वच्छ जल जात है।
किस भाँति कोई कभी यह बतलावे भला,
कब दिन होता और होती कब रात है ॥
उसमें मिली है प्रभा शशि और सूर्य की भी
क्या नहीं स्वयं ही सिद्ध होती यह बात है।
किसने न देखी वह रूप-राशि बार-बार,
तो भी अनदेखी वह होती सदा ज्ञात है ॥

ठाकुर साहब का 'सुमना' नामक काव्य-सग्रह भी सुन्दर है। उसमें आपने कष्ट-सहिष्णुता की महत्ता दिखाई है, जिसका रूप गांधीवाद के सदृश है। इसमें आपने फूलों और कलियों का आश्रय लेकर सुन्दर अन्योक्तियाँ दी हैं।

सियारामशरण गुप्त— आप श्री मैथिलीशरण गुप्त के छोटे भाई है। आपका रचना-काल १६७० से प्रारम्भ होता है। आपकी कविताओ मे एक जिज्ञासा की भावना मिलती है। आपकी रचनाएँ अंतर की सात्विक भावनाओ को ही लेकर चलती होती है। गुप्तजी की भॉति आप पर भी गाधीवाद का पूरा प्रभाव है। या यो कह सकते है कि आप एक सरल और सुन्दर भाषा मे गाधीवाद के गायक है। आपकी कविताओं के सग्रह 'आर्द्रा', 'विषाद', 'पाथेय', 'उन्मुक्त' तथा 'बापू' नाम से प्रकाशित हो चुके है। 'उन्मुक्त' और 'बापू' मे आपने गाधीवाद का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। देखिए :

ईंधन रहित शुद्ध अग्नि ज्वाल,
नित्य युवा तुमसे यशस्वि सुदीप्त भाल।
एक मात्र आत्म बश,
उज्वलिते सर्वथैव एक रस ॥
श्रांति नहीं तुमको।
काल की अशांति नहीं तुमको ॥

पिछले दिनो आपकी 'नोआखाली' नामक छोटी सी पुस्तक निकली थी। जिसमे गांधीजी की नोआखाली-यात्रा का वर्णन करते हुए यह दिखाया गया है कि हम सभी मुसलमानो को बुरा समझकर उनसे घृणा न करें। नोआखाली के हत्याकाड से ध्वस्त ग्रामों का आपने बड़ा करुणाजनक चित्र उपस्थित किया है :

गॉव नहीं मरघट यह है
जीवित दीख रहे जो उनकी,
मरण वेदना दुस्सह है।

विविध साहित्य

जीवन-चरित्र—इस युग में साहित्यिक कोटि के केवल चार जीवन-चरित्र लिखे गए। पं० माधवप्रसाद मिश्र ने स्वामी विशुद्धानन्द

का जीवन चरित्र 'विशुद्ध चरितावली' नाम से लिखा। 'बाबू हरिश्चन्द्र का जीवन चरित्र' बाबू शिवनन्दन सहाय ने लिखा। इनके अतिरिक्त बाबू शिवनन्दन सहाय ने 'गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-चरित्र' और 'चैतन्य महाप्रभु का जीवन-चरित्र' की रचना भी की।

अर्थशास्त्र—द्विवेदी-काल में अर्थशास्त्र पर भी कुछ पुस्तकें लिखी गई। जिनमे मिश्रबंधु का 'व्यय' और वृजनन्दनसहाय का 'अर्थशास्त्र' उल्लेखनीय है। भारतीय अर्थशास्त्र पर राधामोहन गोकुलजी की 'देश-धन' और देवनारायण द्विवेदी की 'देश-कला' अच्छी पुस्तके है।

समाज-शास्त्र और दर्शन-शास्त्र—राजनैतिक विषय पर अम्बिका-प्रसाद वाजपेयी ने 'हिन्दुओ की राज्य-कल्पना' लिखी। दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक विषयों पर शिवचन्द्र 'भारतीय' का 'विचार-दर्शन', स्वामी सत्यदेव का 'मनुष्य के अधिकार' और महावीरप्रसाद द्विवेदी की 'शिक्षा' उल्लेखनीय है।

व्याकरण—कामताप्रसाद गुरु, चन्द्रमौलि मुकुल तथा जगमोहन ने कुछ व्याकरण-सम्बन्धी पुस्तको की रचना भी की। कुछ कोष-ग्रथ भी लिखे गए।

विज्ञान—प्रो० महेशचन्द्र सिन्हा ने 'रसायन-शास्त्र', 'वनस्पति-शास्त्र' और 'विद्युत्-शास्त्र' लिखे। प्रेमवल्लभ जोशी ने भौतिक-विज्ञान पर 'ताप' नामक पुस्तक लिखी।

पत्र-पत्रिकाएँ

सरस्वती—हिन्दी के विकास मे सर्वाधिक योग देने वाली पत्रिका 'सरस्वती' है। 'सरस्वती' का सम्पादन-भार महावीरप्रसाद द्विवेदी के हाथ मे आते ही उसने लेखक-निर्माण का कार्य किया। जो हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे सदैव स्वर्णाक्षरो मे अकित रहेगा।

कर्मयोगी साप्ताहिक—सन् १९०८ मे प० सुन्दरलाल ने प्रयाग से 'कर्मयोगी' नामक पत्र निकाला। यह एक उत्तम राजनैतिक पत्र था

और इसे लाला लाजपतराय, लोकमान्य तिलक और अरविन्द बाबू-जैसे राजनैतिक नेताओ का सहयोग प्राप्त था। पहले यह पत्र मासिक निकला, बाद मे साप्ताहिक हो गया। यह पत्र बहुत लोकप्रिय हो गया। किन्तु १९१० मे इस पर सरकार की कोप-दृष्टि हो गई और जमानत देने से इन्कार करने के कारण बन्द हो गया।

अभ्युदय—सन् १९०७ में पं० मदनमोहन मालवीय के संरक्षण मे काशी से 'अभ्युदय' नामक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इसके सम्पादक प्रारम्भ में श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन थे। बाद में श्री कृष्णकान्त मालवीय ने इसका सम्पादन किया।

हिन्द केसरी—सन् १९०८ में नागपुर से पं० माधवराव सप्रे ने 'हिन्द केसरी' नामक पत्र निकाला। इसमें लोकमान्य तिलक के मराठी 'केसरी' के लेखो का अनुवाद छपता था। इस पत्र का भी बडा प्रचार हुआ। किन्तु कुछ दिन निकलकर ही यह बन्द हो गया।

प्रताप सन् १९१२ मे श्री गणेशशंकर विद्यार्थी ने कानपुर से साप्ताहिक 'प्रताप' निकाला, यह एक सच्चा राष्ट्रीय पत्र था। कुछ ही दिनों मे यह बहुत लोकप्रिय हो गया।

भारत मित्र दैनिक—सन् १९११ में कलकत्ता से दैनिक 'भारत मित्र' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ।

कलकत्ता-समाचार—सन् १९१४ में कुछ मारवाड़ी सज्जनों के उद्योग से कलकत्ता से 'कलकत्ता-समाचार' नामक दैनिक पत्र निकाला, किन्तु यह कुछ ही वर्ष चलकर बन्द हो गया।

'इन्दु' मासिक—'सरस्वती' के प्रकाशन के पश्चात् काशी से श्री अम्बिकाप्रसाद गुप्त के सम्पादकत्व मे मासिक 'इन्दु' का प्रकाशन हुआ। इसी पत्रिका में प्रसाद जी की प्रारम्भिक रचनाएँ प्रकाशित हुई थीं। इसीलिए साहित्यिक दृष्टि से इसका महत्त्व बढ गया। १२-१४ वर्ष चलकर यह भी बन्द हो गया।

मर्यादा—श्री कृष्णकान्त मालवीय के सम्पादकत्व में प्रयाग से

'मर्यादा' का प्रकाशन हुआ। बाद में यह सम्पूर्णानन्द के सम्पादन में काशी से निकलने लगी।

इनके अतिरिक्त दक्षिणी अफ्रीका, फिजी तथा बरमा आदि से भी प्रवासी भारतीयों के उद्योग से कुछ हिन्दी के पत्र प्रकाशित हुए थे। इन पत्रो के प्रकाशन मे महात्मा गाधी तथा स्वामी भवानीदयाल संन्यासी का बड़ा हाथ था।

चतुर्थ उत्थान : प्रमाद-काल

वर्तमान गद्य का विकास—द्विवेदी-काल तक के गद्य-विकास का उल्लेख हमने पिछले पृष्ठो मे किया है। द्विवेदी-काल मे हिन्दी-गद्य का परिमार्जन करके उसे व्याकरण-सम्मत बनाया गया। उसका एक स्वरूप निश्चित हुआ। भाषा की शुद्धता के साथ-साथ नवीन विषय तथा नवीन शैलियो का प्रयोग हुआ। इस सब कार्य का श्रेय पं० महावीर-प्रसाद द्विवेदी को ही है। उन्होने अपने प्रभाव और प्रोत्साहन से अनेक लेखक उत्पन्न किये। अग्रेजी पढे-लिखे युवको को हिंदी की ओर आकृष्ट किया। इन लेखको द्वारा साहित्य के गद्य और पद्य दोनो अगो का भण्डार भरा जाने लगा। गद्य के नाटक, उपन्यास, कहानी, निबध आदि सभी अगो का विकास हुआ। इनमें चाहे मौलिक कृतियाँ कम थी और अनुवाद अधिक हुए, किन्तु फिर भी आधुनिक गद्य के लिए एक विस्तृत क्षेत्र प्रस्तुत हो गया। द्विवेदीकालीन लेखकों पर द्विवेदीजी की छाप अधिक थी। उनमे वैयक्तिकता का अभाव था। अपने मस्तिष्क से मौलिक उद्भावना और नवीन प्रयोग करने की प्रवृत्ति उन लेखको मे नही थी। इसलिए उस धूम-धाम में साहित्य का वास्तविक विकास नही हो पाया था, द्विवेदीजी के पश्चात् कुछ ऐसे लेखक साहित्य-क्षेत्र में आये जिन्होने अपनी प्रतिभा द्वारा हिदी-साहित्य में एक नवीनता लाकर खडी कर दी। वे थे बाबू जयशकरप्रसाद और मुन्शी प्रेमचद। दोनो ने ही दो भिन्न-भिन्न चीजें साहित्य को दी। साहित्य को प्राचीनता के संकीर्ण

मार्ग से निकालकर विकास के राज-मार्ग पर अग्रसर किया। जयशंकर-प्रसाद के नाटको ने गद्य-क्षेत्र मे एक अपूर्व परिवर्तन किया। प्रसादजी ने ऐतिहासिक नाटक अधिक लिखे, किन्तु एक नवीन साहित्यिक छटा लिये हुए तथा देश-प्रेम की भावनाओं को लिये हुए प्रेमचन्दजी ने अपने उपन्यास और कहानियो द्वारा गद्य-क्षेत्र मे एक क्राति उत्पन्न कर दी। उनसे पहले साहित्य केवल एक बौद्धिक विलास की वस्तु ही समझा जाता था, किंतु वे साहित्य को मानव-जीवन और समाज के अधिक निकट ले आए। उन्होने किसान, मजदूरो और मध्य-वर्ग को अपने साहित्य मे स्थान देकर साहित्य को प्रगतिशील बनाया। द्विवेदीजी के बाद इस काल पर प्रसाद का ही अधिक प्रभाव पडा है। नीचे इस काल के विभिन्न गद्य-अगो के विकास का उल्लेख किया जाता है।

नाटक

हम ऊपर लिख चुके है कि द्विवेदी-काल में मौलिक नाटक बहुत कम लिखे गए, अधिकाश तो अनुवाद ही हुए। नाटकीय कला की दृष्टि से १९०० से १९१९ तक का नाटक-साहित्य एक ही श्रेणी के अन्तर्गत आ जाता है। इस काल में हिन्दी मे दो प्रकार के नाटक चलते रहे है। एक तो वे नाटक, जो पारसी-रगमंच के लिए लिखे जाते थे। दूसरे प्रकार के नाटक भारतेन्दु-स्कूल के नाटककारो द्वारा प्रस्तुत किये जाते थे। इनका कोई रगमच नही था। रगमच के आदर्शो के सम्बन्ध में ये पारसी-रंगमंच को ही सामने रखकर चलते थे। पारसी-रंगमच के लिए लिखे जाने वाले नाटकों में कथा-विस्तार और चमत्कार की ओर अधिक ध्यान दिया जाता। साहित्यिक नाटको में प्राचीन सस्कृत नाटकों के प्रभाव से रस की ओर अधिक दृष्टि रहती थी, यद्यपि कथा-तत्त्व की एकदम उपेक्षा यहाँ भी नही होती थी। इन पिछले नाटको पर रीतिकालीन वातावरण का प्रभाव था।

पारसी-रगमंच के लिए लिखे जाने वाले नाटक साहित्यिक नाटक

तो नही थे, किन्तु उनसे हिन्दी-नाटकों को रंगमच पर स्थान अवश्य मिला। पं० नारायणप्रसाद 'बेताब' ने पारसी-नाटकों में हिन्दी भजनों और गीतों को स्थान दिया। और पौराणिक विषयों को एक नये ढंग से प्रस्तुत किया शीघ्र ही आगा हश्र, हरिकृष्ण जौहर, तुलसीदत्त शैदा तथा पं० राधेश्याम कथावाचक आदि अनेकों नाटककारो ने इन तत्त्वों को आगे बढाया। ये पौराणिक नाटक मध्यवर्ग की जनता मे इतने लोकप्रिय हुए कि इस प्रकार के नाटकों की बाढ सी आ गई।

साहित्यिक नाटककार भारतेन्दु की शैली पर ही चल रहे थे। द्विवेदी-काल में भी यही परम्परा प्रचलित रही। जैसा कि हम कह आए है द्विवेदी-काल मे मौलिक नाटको की रचना कम हुई। सारा हिन्दी-संसार द्विजेन्द्रलाल राय के ऐतिहासिक और गिरीशचन्द्र घोष के सामाजिक नाटकों के अनुवादो से भरा था। इसके पश्चात् श्री जयशकरप्रसाद के साथ हिन्दी नाटको मे नवीनता का सचार हुआ। प्रसाद की अपनी निजी शैली थी, जिसका अनुसरण करके नाटक-साहित्य मे कई नई ज्वलत शक्तियाँ हमारे सामने आई, जिन्होने अपनी प्रतिभा और मौलिकता द्वारा प्रसाद की शैली मे भी परिवर्तन करके नाटक-साहित्य को अपने चरम विकास पर पहुँचाया। इनमे सर्वश्री चतुरसेन शास्त्री, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, बद्रीनाथ भट्ट, गोविन्दवल्लभ पन्त, जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द',लक्ष्मीनारायण मिश्र, उदयशंकर भट्ट, सेठ गोविन्ददास, हरिकृष्ण 'प्रेमी' तथा उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के नाम उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त सर्वश्री सुदर्शन, माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानन्दन पन्त, भगवतीप्रसाद बाजपेयी, रामकुमार वर्मा, तथा जी० पी० श्री वास्तव ने भी नाटक लिखे है।

श्री जयशंकरप्रसाद के अधिकतर नाटक ऐतिहासिक है। उनकी ऐतिहासिक दृष्टि बौद्ध-काल की ओर रही है। उन्होने अपने नाटकों मे पश्चिमी कला को भी स्थान दिया है, किन्तु भारतीयता की मर्यादा को ध्यान में रखते हुए। अग्रेजी नाटककारो में शेक्सपीयर का जो स्थान है,

हिन्दी-नाटककारो में वही स्थान प्रसाद का है। उनके नाटको पर राष्ट्रीयता की छाप अकित है। चरित्र-चित्रण, कथानक, कथोपकथन आदि की दृष्टि से उनके नाटक अद्वितीय स्थान रखते है।

प्रसाद जी के नाटको में - 'राज्यश्री', 'अजात शत्रु', 'कामना', 'जनमेजय का नागयज्ञ', 'एक घूंट', 'स्कन्दगुप्त', 'चन्द्रगुप्त' और 'ध्रुव-स्वामिनी' अधिक प्रसिद्ध है। इन नाटको मे उनकी गवेषणा-शक्ति और सूक्ष्म दृष्टि का परिचय मिलता है। प्रसाद जी ने अपने ऐतिहासिक नाटको मे बौद्धकालीन भारत का चित्र खीचा है, इस कारण वे भारतीय गौरव-गाथा के गान मे विशेष सफल हुए है। प्रसाद जी के नाटको मे मनोवैज्ञानिकता भी पर्याप्त मात्रा में है और कही-कही बडे सुन्दर अन्तर्द्वन्द्व दिखलाए गए है। साथ ही देश-प्रेम की कूँची से हल्का रग देकर उन्हे बड़ा सुन्दर बना दिया है। उनके नाटको मे प्रसगवश आए हुए गीत भी साहित्य की निधि है। 'चन्द्रगुप्त' मे उनका यह राष्ट्रीय गीत कितना सुन्दर है :

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा॥

दूसरी क्रान्तिकारी वस्तु उनके नाटको मे यह है कि उन्होने प्राचीन नाटकीय नियमो के बन्धनो को तोड डाला है। वे एक स्वतन्त्र शैली और नियमो को लेकर चले है। मंगलाचरण, नान्दी, सूत्रधार आदि का बखेडा उनके नाटको मे नही है।

तीसरी विशेषता प्रसाद के नाटकों की यह है कि उन्होने नाटक को दृश्य-काव्य की अपेक्षा श्रव्य अधिक कर डाला है। परन्तु वस्तु, पात्र और रस ये तीन चीज, जो नाटक की जान है, उनके नाटकों मे पूर्ण रूप से विद्यमान है। कवि, गम्भीर, मननशील एवं अन्वेषक होने के कारण इनके नाटको मे विचारो का गाम्भीर्य और दार्शनिकता भी रहती है। नारी को श्रद्धामयी और सहिष्णुता-सम्पन्न बनाना तो उन्ही का कार्य है। इनके नाटको के पात्र एक आदर्श पात्र होते है और सस्कृत-गर्भित

प्रौढ तथा मधुर भाषा बोलते हैं। इस प्रकार प्रसाद ने हिन्दी-नाटकों में नवीन प्राण डाल दिए हैं।

चतुरसेन शास्त्री ने ऐतिहासिक और पौराणिक नाटक लिखने में नवीन शैली और स्वतन्त्र विचारों को अपनाया है। ये नाटको मे गीत और कविता नहीं देते। आपने भास और भवभूति के नाटकों के आधार पर 'श्रीराम' तथा 'सीताराम' आदि नाटक लिखे हैं। उनमें सस्कृत-नाटको के अनुवाद का एक नवीन मार्ग दिखाया है। बद्रीनाथ भट्ट के नाटको मे हास्य का पुट अधिक रहता है। माखनलाल चतुर्वेदी का 'कृष्णार्जुन युद्ध', जगन्नाथ-प्रसाद 'मिलिन्द' के 'प्रताप-प्रतिज्ञा' तथा 'समर्पण', गोविन्दवल्लभ पन्त के 'वरमाला' और 'अंगूर की बेटी', हरिकृष्ण 'प्रेमी' के 'रक्षा बन्धन' और 'स्वप्न भंग' नाटक साहित्यिक दृष्टि से अत्युत्तम होते हुए भी रगमच की पूर्ति करते हैं। हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने अपने नाटको में राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर हिंदू-मुसलमानों में पारस्परिक सहानुभूति उत्पन्न करने की चेष्टा की है। जी० पी० श्रीवास्तव के नाटकों में हास्य की मात्रा अधिक रहती है।

सुमित्रानन्दन पन्त की 'ज्योत्स्ना' और रामनरेश त्रिपाठी का 'जयन्त' साहित्यिक दृष्टि से अच्छे नाटक हैं। पतजी की 'ज्योत्स्ना' में कल्पना का प्राधान्य है। लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'राजयोग', 'राक्षस का मंदिर', 'संन्यासी', 'सिन्दूर की होली' आदि [illegible] नाटक है। 'वत्सराज' आदि सास्कृतिक नाटक भी आपने लिखे है। सेठ गोविंददास ने 'कर्तव्य', 'हर्ष', 'उषा', 'प्रकाश', 'कुलीनता', 'राम से गाधी', 'नवरस' आदि अच्छे नाटक लिखे है। हाल ही में सेठ जी का 'चतुष्पथ' नामक सवादात्मक नाटकों का संग्रह निकला है। ऐसे नाटको में केवल एक ही पात्र रहता है। इन्हे 'मोनो ड्रामा' कहते है।

श्री उपेन्द्रनाथ अश्क का 'जय-पराजय' नाटक राजपूत-काल के इतिहास की याद दिलाता है। इनका 'स्वर्ग की झलक' एक आधुनिक नाटक है। जिसमें स्त्री-शिक्षा और पारिवारिक जीवन की समस्या है। ध्यान

रहे कि समस्यामूलक नाटको पर विदेशी नाटककारों, विशेषतः इब्सन और बर्नार्ड शा, का प्रभाव अधिक पडा है।

श्री उदयशंकर भट्ट ने पौराणिक तथा ऐतिहासिक कई नाटक लिखे है। यह भी आधुनिक नाटककारो मे एक प्रमुख स्थान रखते है। इनके 'सगर-विजय', 'दाहर', 'अम्बा' और 'चन्द्रगुप्त' आदि ऐतिहासिक नाटक है। 'कमला' इनका आधुनिक काल से सम्बन्धित सामाजिक नाटक है। जिसमे राजनीति के साथ रोमास भी है। 'मत्स्यगंधा' और 'विश्वमित्र' दोनो भाव-प्रधान गीति-नाट्य है। 'राधा' नाम का इन्होने एक भाव-नाट्य भी लिखा है। 'कुमार सम्भव' मे आचार और कला की समस्या है।

श्री सुदर्शन ने भी कई नाटक लिखे है, जिनमें 'अजना' अधिक ख्याति-प्राप्त है। 'आनरेरी मजिस्ट्रेट' नामक एक प्रहसन भी इन्होने लिखा है। हाल ही मे आपका 'भाग्य-चक' नाटक निकला है, जिसमे प्रेम और वैराग्य का संघर्ष दिखाया गया है।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी का 'छलना' एक मनोवैज्ञानिक नाटक है। इसमें थोड़ा रूपक का तत्त्व भी निहित है। प्रसादजी का 'कामना' भी बिलकुल इसी ढंग का है। श्री सद्गुरुशरण अवस्थी का 'मुद्रिका' और पृथ्वीनाथ शर्मा के 'अपराधी' 'दुविधा' और 'उर्मिला' भी आधुनिक युग के नवीन नाटक है।

रामकुमार वर्मा के 'पृथ्वीराज की आँखे', 'रेशमी टाई', 'चारु मित्रा' एकाकी-नाटकों के सग्रह है। इस समय एकांकी नाटकों की ओर लेखको की रुचि अधिक हो रही है और पत्र-पत्रिकाओ में प्रायः एकांकी निकलते रहते है। एकांकी नाटक लिखने वालों में सर्वश्री उदयशकर भट्ट, सेठ गोविंददास, रामकुमार वर्मा, गणेशप्रसाद द्विवेदी, जगदीशचन्द्र माथुर, विष्णु प्रभाकर तथा भुवनेश्वरप्रसाद आदि का नाम प्रमुख है।

आधुनिक नाटको के बारे मे हम कह सकते है—(१) उन पर पश्चिमी प्रभाव—विशेषकर इब्सन और बर्नाड शा का प्रभाव अधिक पड़ा है। (२) वे वर्तमान युग की जीवन्त समस्याओ को लेकर चलते

हैं। विशेषतः उनमें वस्तुवाद का प्राधान्य रहता है। (३) वर्तमान नाटक अधिकतर मनोविज्ञान की ओर झुकता रहा है। (४) उनकी प्रवृत्ति संकलनत्रय के सिद्धांत को निभाने की होती जा रही है। (५) वे आकार में बहुत छोटे हो गए है। प्रायः नाटको में दो या तीन अङ्क से ज्यादा नही होते (६) उनमें रंगमच के संकेतों का बाहुल्य रहता है। (६) भारतीय नाटच-परम्परा के सिद्धांतों को प्राय इनमें छोड दिया गया है।

उपन्यास

द्विवेदी-काल मे रचनात्मक साहित्य के क्षेत्र मे उपन्यास का काफी विकास हुआ, किन्तु मौलिक उपन्यास बहुत कम लिखे गए। अनुवादों का ही बोल-बाला रहा। उस युग मे कोई नवीन उपन्यासकार नही हुआ। बा० गोपालराम गहमरी, प० ईश्वरीप्रसाद शर्मा, और पं० रूपनारायण पाण्डेय ने बगला-उपन्यासों का अनुवाद किया। रूपनारायण पाण्डेय और रामचन्द्र वर्मा ने मराठी और उर्दू-उपन्यासों के अनुवाद भी प्रस्तुत किये। इसके अतिरिक्त बाबू देवकीनन्दन खत्री और किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासो की चर्चा अवश्य रही। गोस्वामी जी नेछोटे-बडे अनेक उपन्यासो की रचना की।

हिन्दी-साहित्य के उपन्यास-क्षेत्र में श्री प्रेमचन्द एक क्रांतिकारी दृष्टिकोण लेकर आए। आरम्भ में इन्होने छोटी-छोटी कहानियाँ लिखीं, और फिर उपन्यासों का भण्डार भरा। प्रेमचन्द जी के उपन्यासो पर तत्कालीन परिस्थितियों का पूरा प्रभाव पड़ा। प्रथम तो उस समय गांधी जी का असहयोग-आन्दोलन प्रारम्भ हो रहा था। उससे प्रभावित होकर ही वे नौकरी छोड़कर पूर्णतया साहित्य-निर्माण में तल्लीन हुए। दूसरे सरकार की आर्थिक शोषण की नीति ने मजदूरों और किसानों का गला घोट रखा था। जमीदारो और भूमिपतियों के अत्याचारों से बेचारे किसान दुखी हो उठे थे। प्रेमचन्द जी का हृदय इस शोषित और दलित वर्ग की ओर सहज ही आकर्षित हो गया। उन्होने अपनी रचनाओं में इन्ही

लोगों को मुख्य स्थान दिया। उन्होंने अपने उपन्यासों में गाँवों की दुरवस्था और किसानो की दुर्दशा तथा बेबसी का जो वास्तविक चित्र खीचा है वह मर्मभेदी और हृदयग्राही है। प्रेमचन्द का साहित्य जनता का साहित्य था, वह मन-बहलाव या बौद्धिक विलास की काल्पनिक सामग्री न थी। उन्होने 'कर्मभूमि', 'गबन', 'सेवा सदन', 'प्रेमाश्रम', 'कायाकल्प', 'प्रतिज्ञा', 'निर्मला', 'गोदान' और 'मगल सूत्र' आदि उपन्यास लिखे। प्रेमचन्द के साहित्य में आशा और उत्साह दोनो का सुन्दर सम्मिश्रण है और इसी सम्मिश्रण मे चेतना प्रदीप्त हुई। उनके उपन्यास हमें प्रगति के मार्ग की ओर ले जाते है। इसी कारण उनका साहित्य बहुत जल्दी ही लोकप्रिय बन गया। उन्होने भावी कलाकारो के लिए राष्ट्र-वाद का अनुपम मार्ग प्रशस्त किया।

प्रेमचन्द की उपन्यास परम्परा को प्रचलित रखने में श्री विश्वम्भर-नाथ शर्मा कौशिक ने योग-दान दिया। उनकी 'माँ,' 'भिखारिणी' और 'सघर्ष' तीनो उपन्यास इसके प्रत्यक्ष प्रमाण है।

श्री जयशंकर 'प्रसाद' ने भी 'ककाल', 'तितली' और 'इरावती' नामक उपन्यासो की रचना करके सामाजिक विशृंखलता को तोडने का साहस किया। आपने अपने तीनें उपन्यासो मे नारी और पुरुष को समता और सहकारिता के सूत्र में बाँधकर रूढ़िगत जीवन की विषमता को चुनौती दी है।

श्री चतुरसेन शास्त्री के 'अमर अभिलाषा', 'हृदय की प्यास' और 'वैशाली की नगर वधू' आदि प्रसिद्ध उपन्यास है। आपके उपन्यासों में जहाँ ऐतिहासिक जागरण की प्रेरणा होती है, वहाँ कही-कही भयंकर काम-वासना की वृत्ति भी मिलती है। फिर भी वस्तु-वर्णन की दृष्टि से आपके उपन्यास अच्छे है।

श्री बेचन शर्मा 'उग्र' ने 'चन्द हसीनो के खतूत,' 'बधुआ की बेटी', 'घंटा', 'दिल्ली का दलाल' आदि उपन्यास लिखकर समाज में फैली हुई कुरीतियों और कुवासनाओं का नग्न चित्र खींचा है। आपकी भाषा में

ओज, भावना मे तरल प्रभाव और विचारो मे अद्भुत उग्रता है। वर्णन में प्राकृतिवादी दृष्टिकोण होने से इन्हे उस समय घासलेटी साहित्य की संज्ञा प्राप्त हुई।

श्री वृन्दावनलाल वर्मा के 'विराटा की पद्मिनी', 'गढ-कुडार', 'मृगनयनी', 'कुडली-चक्र', 'कोतवाल की करामात', 'अचल मेरा कोई', 'झाँसी की रानी', 'लगन' 'कभी-न-कभी' और 'सोना' प्रसिद्ध उपन्यास है। इनके उपन्यास ऐतिहासिक सस्कृति के सदेशवाहक है। 'झाँसी की रानी' में राष्ट्रीयता सजीव हो उठी है। 'मृगनयनी' मे ऐतिहासिक पुट के साथ चित्रण की यथार्थता दृष्टिगत होती है।

श्री जैनेन्द्रकुमार आज भी भारतीय नारी के नाना रूपो का चित्र खीचने मे लगे है। इनके उपन्यासो मे नारी के प्रति एक विचित्र कामुकता की भावना देखने को मिलती है। उनके 'कल्याणी', 'त्याग-पत्र' और 'सुनीता' नामक उपन्यास ऐसे ही है। हाल में ही उनका 'सुखदा' उपन्यास भी प्रकाशित हुआ है।

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने कवि होते हुए भी कई श्रेष्ठ उपन्यास 'निरुपमा', 'अप्सरा', 'अलका' तथा 'प्रभावती' हिन्दी-जगत् को भेंट किये है। आपने अपने उपन्यासो में नारी-जीवन के विज्ञान-मूलक मनोरम अशो का चित्र खीचा है।

दूसरे कवि उपन्यासकार है सियारासशरण गुप्त। इन्होने तीन उपन्यास 'गोद', 'नारी' और 'अन्तिम आकांक्षा' नामक लिखे है। इन्होने नारी-जीवन की सूक्ष्म और तरल अनुभूतियों को अपनी शैली से चित्रित किया है। यह आश्चर्य की बात है कि जैनेन्द्र और सियारामशरण गुप्त दोनों ही गांधीवादी और गांधी जी के चरण-चिह्नो पर चलने वाले है, किन्तु इनके उपन्यासो में गांधी जी की अध्यात्मवादी भावना के दर्शन तक नही होते।

श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तव के 'विदा', 'विकास', 'बयालीस' और 'विसर्जन' चारो उपन्यास अच्छे हैं।

श्री मोहनलाल महतो ने 'एकाकी', 'विसर्जन', 'शेष दान' और 'फरार' नामक चार उपन्यासों की रचना की है। उनके उपन्यासों पर बंगला के प्रसिद्ध उपन्यासकार शरत् की छाप दिखाई देती है।

श्री गुरुदत्तजी एक नवीन किन्तु सबल प्रेरणा लेकर उपन्यास-क्षेत्र में आए हैं। इनके 'स्वाधीनता के पथ पर', 'पथिक', उन्मुक्त प्रेम', 'विकृत छाया' 'स्वराज्य-दान', 'विश्वास-घात', 'बहती रेता', 'विडम्बना' तथा 'प्रवञ्चना' आदि उपन्यास प्रकाश में आये हैं। इन्होंने प्रेमचन्द के राष्ट्रवाद को अपनाया है। 'विकृत छाया' में आधुनिक सामाजिक कुरीतियों का उद्घाटन किया गया है।

इनके अतिरिक्त तरुण पीढ़ी के प्रगतिशील उपन्यासकार श्री भगवतीचरण वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, उपेन्द्रनाथ अश्क, श्री अज्ञेय, पहाड़ी, यशपाल, इलाचन्द्र जोशी, श्रीकृष्णदास और अंचल का उल्लेख प्रेमचन्द-काल में किया जायगा। श्री भगवतीचरण वर्मा इस खेवे के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार हैं और उनका 'चित्रलेखा' सुन्दरतम उपन्यास है।

इधर हमारी महिला-लेखिकाओं ने भी कुछ उपन्यास लिखे हैं। इनमें श्रीमती उषादेवी मित्रा ने 'वचन का मोल', 'पिया', 'मुस्कान' तथा 'आवाज़' नामक उपन्यासों की रचना की है। इनके उपन्यासों में आधुनिक नारी का पक्ष बड़ी सबलता के साथ समाज के सामने रखा गया है। कुमारी कंचनलता सब्बरवाल के 'मूक प्रश्न', 'भोली भूल', 'संकल्प' और 'भटकती आत्मा' आदि उपन्यास अभी प्रकाश में आये हैं। इन्होंने अपने उपन्यासों में भारतीय नारी के आदर्श स्वरूप का चित्रण किया है।

कहानी

द्विवेदी-काल में कहानी-साहित्य का जो विकास हुआ उसका उल्लेख हम पीछे कर चुके हैं। वर्तमान काल की मौलिक कहानियों का प्रारम्भ श्री प्रेमचन्दजी से ही होता है। सन् १९१६ में उनके पदार्पण के साथ ही हिन्दी-कहानी-साहित्य में एक अपूर्व परिवर्तन हो गया और १९३६

के अन्त में उनकी मृत्यु कहानी-साहित्य के इतिहास मे एक प्रमुख घटना रहेगी। प्रेमचन्दजी हिन्दी में आने से पूर्व उर्दू मे पर्याप्त लिख चुके थे और उर्दू-साहित्य में भी उनका प्रमुख स्थान था। अपनी प्रतिभा और मौलिकता के कारण हिदी मे आते ही उन्होने चोटी का स्थान प्राप्त कर लिया।

प्रेमचन्द की भाषा उर्दू-मिश्रित हिदी है। उर्दू के कारण उसमे एक चुलबुलाहट और चलतापन आ गया है। बीच मे मुहावरो और लोकोक्तियो के प्रयोग ने उसे और भी सुन्दर बना दिया है। इसी कारण आपकी कहानियाँ एकदम ही लोकप्रिय बन गईं। प्रेमचन्दजी की कहानियाँ भारतीय सामाजिक जीवन का चित्रण है। समाज के प्रत्येक अग ने उनसे आवश्यक सहानुभूति पाई है और इसी विशाल सहानुभूति के कारण वे अग्रेज, हिंदू, मुसलमान तथा अन्य जातियो के घरो मे प्रवेश पाने मे सफल हुए है। गाँव के चित्र और कवित्वमयता यही दो उनकी कहानियो की अपनी विशेषता है। वे जनता के कलाकार है। उन्होने उस पीडित और शोषित वर्ग को साहित्य मे अपनी छाती से लगाया, जिसे अब तक किसी ने साहित्य मे स्थान नही दिया था। यही आपकी नवीनता, मौलिकता और राष्ट्रीयता थी। प्रेमचन्दजी की कहानियो के सग्रह 'प्रेम पच्चीसी','प्रेम द्वादशी','मानसरोवर', तथा 'नवनिधि' आदि है।

प्रेमचन्दजी के पश्चात् श्री प्रसाद, चतुरसेन शास्त्री, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, रायकृष्णदास, जैनेन्द्रकुमार, उग्र तथा सुदर्शन आदि लेखको ने अपनी सुन्दर कृतियो से कहानी-साहित्य के भण्डार को भरपूर किया। प्रसादजी की सुन्दर कहानियाँ 'इन्दु' में प्रकाशित होती थी जिनका उल्लेख पीछे कर आए है। चतुरसेन शास्त्री ने अपनी कहानियो मे वैभव-विलास और यौवन-मद के चित्र ही खीचे है। इन्होने भारत के अतीत गौरवमय इतिहास के आधार पर भी कहानियाँ लिखी है।

श्री विश्वम्भरनाथ कौशिक की कहानियो मे परिवारिक एव कौटुम्बिक चित्र मिलते है। इनकी पहली कहानी रक्षा-बधन है जो बड़ी

महत्त्वपूर्ण है । भाषा की सरलता और स्वाभाविकता ने इनकी कहानियो को और भी लोकप्रिय बना दिया है । 'मणिमाला' और 'चित्रशाला' इनकी कहानियो के सग्रह है ।

रायकृष्णदास की कहानियो में काव्य-कला और चित्र-कला दोनो के ही दर्शन होते है । आपकी कहानियो की सामग्री इतिहास, समाज, शिक्षा, मनोविज्ञान आदि विविध क्षेत्रो से ली गई है । 'भय का भूत' और 'नर-राक्षस' आदि आपकी सुन्दर कहानियाँ है । ये कहानियाँ प्रसाद की भावात्मक कहानियो से प्रभावित है । 'अक्षत' और 'रजत-कण' आपकी कहानियो के सग्रह है ।

सुदर्शनजी की कहानियो में भारतीय सस्कृति के गौरव की झाँकी मिलती है । उर्दू-लेखक होने के कारण आपकी भाषा में चलतापन है । 'सुदर्शन-सुधा' और 'सुप्रभात' आदि आपके कहानी-सग्रह है ।

चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' ने भी अच्छी कहानियाँ लिखी है जो 'वन-माला' और 'नन्दन-निकुज मे सगृहीत है । आपकी काहनियो मे अनुप्रास-मयी सस्कृतनिष्ठ भाषा की छटा दृष्टिगत होती है ।

श्री उग्रजी की कहानियाँ एक उग्रता लिये होती है । आपकी भाषा और शैली अपनी निराली है । 'दोजख की आग' और 'इन्द्र-धनुष' आपके कहानी-सग्रह है । भाषा को अभिव्यंजना की पूर्ण क्षमता प्रदान करने में तथा शैली भी अपना निजी व्यक्तित्व सन्निविष्ट करने मे उग्रजी का नाम हिंदी-कथा-साहित्य मे अमर है ।

श्री जैनेन्द्रकुमार की कहानियाँ भी अनोखी है । आपकी रचनाओ में मौलिकता, प्रगलभता और कला का उज्ज्वल रूप दीख पड़ता है । आपकी कहानियो के पात्रो मे वैज्ञानिक विश्लेषण की प्रचुरता मिलती है । 'निर्मम' और 'अपना-अपना भाग्य' इनकी अत्युत्तम कहानियाँ है । 'वातायन' नाम से इनकी कहानियो का सग्रह निकल चुका है । कहानियो के अन्तराल मे दार्शनिकता का जैसा पुट जैनेन्द्रजी दे सके वैसा और कोई कहानी-लेखक नहीं दे पाया ।

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने अनेक कहानियाँ लिखी है। आपकी रचनाओ मे यथार्थवाद और आदर्शवाद का सामजस्य रहता है। भगवती-चरण वर्मा की कहानियो मे समाज के प्रति विद्रोह पाया जाता है। मोहनलाल महतो की कहानियो मे इसी विद्रोह की भावना रहती है।

इनके अतिरिक्त श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानदन पन्त विनोदशकर व्यास तथा सियारामशरण गुप्त आदि ने भी अच्छी कहानियाँ लिखी है। हास्य-रस के कहानी-लेखको में श्री अन्नपूर्णानन्द कृष्णदेवप्रसाद गौड, राधाकृष्ण, हरिशंकर शर्मा के नाम उल्लेखनीय है। इनका हास्य एक शिष्टता और भद्रता लिये होता है।

इधर महिला-लेखिकाओ ने भी कहानी-साहित्य मे विशेष योगदान दिया है। इनमे सर्वश्री स्व० सुभद्राकुमारी चौहान, उषादेवी मित्रा, श्रीमती शिवरानी प्रेमचंद, सत्यवती मल्लिक, तेजरानी दीक्षित, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, होमवती देवी, कमला चौधरी, सुमित्राकुमारी सिनहा तथा सुशीला आगा की सेवाएँ नही भुलाई जा सकती। सामयिक पत्र-पत्रिकाओ मे आए दिन इनकी सुन्दर कहानियाँ निकलती रहती है। केवल कहानियो का प्रचार करने वाली जो अनेक पत्रिकाएँ सम्प्रति हिन्दी मे निकलती है उनमें 'माया', मनोहर कहानियाँ, सरिता आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आज कहानी मनोरजन का ही साधन न रहकर जीवन के सघर्ष और द्वन्द्वो के उद्घाटन का भी साधन बनी हुई है, अतः उसका प्रचार भी साहित्य के अन्य अंगों की अपेक्षा कहीं अधिक है।

निबन्ध

द्विवेदी-कालीन निबध-रचना का उल्लेख हम पीछे कर चुके हैं। द्विवेदी-काल के अन्त में प० रामचन्द्र शुक्ल ने निबध-रचना को जो नवीन रूप दिया उसने वर्तमान युग में आकर पूर्ण विकास प्राप्त किया हमारा आधुनिक साहित्य निबन्धो के धरातल पर ही खड़ा है। आज का कला-

कार अपनी अनुभूति और विचारों को निबंध के ही रूप में सुगमता से प्रकट कर सकता है। जीवन-चरित्र, इतिहास, देश-दर्शन, ललित-कला, और उपयोगी कला, समाज-शास्त्र, शरीर-रक्षा, विज्ञान, शिक्षा और साहित्य के इतिहास को लेकर भिन्न-भिन्न लेखको ने नव चेतना युग मे जितने निबध लिखे है इतने कभी नही लिखे गए। आज का हिन्दी का लेखक ज्ञान-विज्ञान की अनेक शाखाओ मे योग देना चाहता है और छोटे निबंध या विवेचनात्मक लेख ही उसका माध्यम बनते है। संक्षेप मे हम प्रसाद-काल के कुछ निबधकारो का उल्लेख करेंगे।

प० रामचन्द्र शुक्ल तथा पद्मसिह शर्मा का उल्लेख द्विवेदी-काल में हो चुका है। उनके पश्चात् श्री जयशकरप्रसाद ने भी कुछ निबध लिखे। प्रसाद जी प्रमुख रूप से कवि तथा नाटककार ही थे, किन्तु मननशील प्रवृत्ति होने के कारण उन्होने कुछ स्फुट ग्रथ भी लिखे। उनके निबधो का सग्रह 'काव्य और कला तथा अन्य निबध' नाम से प्रकाशित हो चुका है। उनके अधिकाश लेख साहित्य-सबधी ही है।

प्रसाद जी के समकालीन श्री प्रेमचंद ने प्रसाद जी की भाँति कुछ निबंध लिखे। उनके निबध बहुत कम है, फिर भी जितने है वे एक सुलझे हुए मस्तिष्क और मँजी हुई लेखनी से लिखे जाने के कारण अच्छे है। 'हंस' मे बराबर उनके लेख प्रकाशित होते रहते थे। उनके निबंधो का सग्रह 'कुछ विचार' नाम से प्रकाश में आया है।

श्री रायकृष्णदास और वियोगी हरि को भी निबन्धकारो की कोटि मे ले सकते है, किन्तु इनके निबन्ध कोई अधिक महत्त्व नही रखते। वे एक भावुकतापूर्ण अभिव्यक्ति के लेख-मात्र है। रायकृष्णदास के गद्य-गीत 'साधना', 'संलाप', 'छाया पथ', और 'प्रवाल' नाम के चार संग्रहो मे प्रकाशित हो चुके है। वियोगी हरि जी के लेखों के तीन संग्रह—'पगला', 'अन्तर्नाद' और 'ठडे छीटे' नाम से प्रकाशित हो चुके हैं।

श्री गुलाबराय जी एक श्रेष्ठ निबन्धकार और समालोचक है। इनके निबन्ध साहित्यिक एव दार्शनिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इनके

निबन्धो पर इनके गम्भीर अध्ययन की छाप स्पष्ट झलकती है। इनके निबन्धों का सग्रह 'प्रबन्ध प्रभाकर' है।

श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी के निबन्ध भी उच्च कोटि के होते है। जहाँ ये हिन्दी-साहित्य के उत्कट विद्वान् है वहाँ पाश्चात्य भाषाओ और उसके साहित्य के भी पूरे ज्ञाता है। इसी कारण आपके निबन्धो में पाश्चात्य ढग की समीक्षा मिलती है। आपके गम्भीर एव विवेचनात्मक निबन्धो का संग्रह 'विश्व-साहित्य' नाम से प्रकाशित हुआ है। उसमें पाश्चात्य देशो के साहित्य के प्रमुख तत्त्वो पर भारतीय दृष्टिकोण से विवेचना की गई है। इसके अतिरिक्त आपके दो निबन्ध-संग्रह 'प्रबन्ध पारिजात' और 'कुछ' नाम से प्रकाशित हुए है।

श्री नन्दुलारे वाजपेयी और हजारीप्रसाद द्विवेदी की गणना वर्तमान काल के निबन्ध लेखको मे की जाती है। दोनो समालोचक भी है। श्री नददुलारे वाजपेयी की विवेचनात्मक कृतियाँ 'जयशकर प्रसाद', 'हिंदी-साहित्य: बीसवी शताब्दी, और 'आधुनिक-साहित्य' है। हजारीप्रसाद द्विवेदी की कुछ मूल्यवान कृतियाँ साहित्य मे अपना विशेष स्थान रखती है। जिनमे 'सूर-साहित्य' 'कबीर' और 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' उल्लेखनीय है। आपके निबन्धो के सग्रह 'अशोक के फूल', 'विचार और वितर्क' तथा 'कल्पलता' नाम से प्रकाश मे आ चुके है।

श्री रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख' तथा शान्तिप्रिय द्विवेदी ने आलोनात्मक निबन्ध लिखे है। शुक्ल जी के इस प्रकार के निबन्धों के संग्रह 'कला और सौन्दर्य' तथा 'भाषा और सस्कृति' है। साहित्यिक विषयो पर विवेचनात्मक निबन्ध लिखने वालो मे द्विवेदी जी का प्रमुख स्थान है। इनके निबन्धो के छः संग्रह प्रकाशित हो चुके है—'हमारे साहित्य-निर्माता', 'कवि और काव्य', 'साहित्यिकी',' जीवन यात्रा', 'सचारिणी', 'सामयिकी' 'पथ चिह्न' और 'धरातल'।

आधुनिक निबन्धकारो में डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का नाम भी उल्लेखनीय है। आप साहित्य के गम्भीर मर्मज्ञ और भाषा-शास्त्र के पण्डित

है। आपने विभिन्न विषयो पर स्फुट निबन्ध लिखे है। आपके निबन्धो का सग्रह 'विचार-धारा' नाम से अभी प्रकाश मे आया है।

मौलिक निबन्ध-लेखको मे डॉ० नगेन्द्र का अपना विशिष्ट स्थान है। स्वच्छता, भावो तथा विषय की स्पष्टता और अभिव्यक्ति की प्राजलता की दृष्टि से हम इन निबन्धो को श्रेष्ठतम कोटि मे रख सकते है। 'विचार और अनुभूति' तथा 'विचार विवेचन' नामक आपके निबन्ध-सग्रह है।

डा० रामकुमार वर्मा के साहित्यिक निबन्ध भी सुन्दर और गठे हुए होते है। आपकी 'साहित्य-समालोचना' और 'विचार दर्शन' कृतियाँ निबन्ध-साहित्य की अमूल्य निधि है।

श्री जैनेन्द्रकुमार ने भी कहानी और उपन्यास से फुरसत मिलने पर कुछ निबन्धो की रचना की है। भाषा और साहित्यिक दृष्टि से आपके निबन्ध महत्त्वपूर्ण नही है। हॉ विचारो की दृष्टि से अच्छे है। आपके लेखो के दो सग्रह 'जैनेन्द्र के विचार', 'जड़ की बात' और 'पूर्वोदय' नाम से प्रकाशित हो चुके है।

महाराजकुमार डॉ० रघुबीरसिह भी श्रेष्ठ निबन्धकार है। आप हिन्दी-साहित्य के मर्मज्ञ और उत्कृष्ट विद्वान् है। इनके निबन्ध 'सप्त-दीप', 'शेष स्मृतियाँ' और 'जीवन-कण' नाम से संगृहीत है।

कविवर सियारामशरण गुप्त ने भी परिपाटी के अनुसार कुछ निबन्ध लिखे है। शुद्ध निबन्ध-रचना की दृष्टि से आपके निबन्ध बहुत सुन्दर है। आपके २२ सुन्दर निबन्धों का संग्रह 'झूठ-सच' नाम से प्रकाशित हो चुका है।

हमारी महिला-लेखिकाएँ भी इस क्षेत्र में किसी से पीछे नहीं रही है। श्रीमती महादेवी वर्मा ने कुछ संस्मरणात्मक मर्मक निबन्ध लिखे है, जो 'अतीत के चल चित्र', 'स्मृति रेखाएँ' और 'शृङ्खला की घड़ियाँ' नाम से प्रकाशित हुए है।

उपर्युक्त निबन्धकारो के अतिरिक्त श्री दयाशकर दुबे, भगवानदास केला, शंकरसहाय सक्सेना तथा प्राणनाथ विद्यालंकार ने अर्थशास्त्र-

सम्बन्धी विषयो पर बड़े उपयोगी निबन्ध लिखे हैं। डॉ० गोरखप्रसाद तथा सत्यप्रकाश आदि ने वैज्ञानिक विषयो पर गम्भीर लेख लिखे है।

समालोचना

हम पीछे बता आए है कि समालोचना का सूत्रपात भारतेन्दु-काल में ही हो चुका था। किन्तु उस समय की समालोचना केवल लेखक की कृति में दोष निकालने तक ही सीमित थी। द्विवेदी-काल में समालोचना की इस पद्धति में कुछ सुधार हुआ; द्विवेदीजी ने हिन्दी-आलोचना को एक नवीन प्रेरणा दी। यद्यपि उनकी आलोचनाएँ मण्डनात्मक न होकर अधिकांश खण्डनात्मक ही होती थी, फिर भी उनकी आलोचना-प्रणाली ने भाषा-क्षेत्र की अरुचिता दूर करने में विशेष सहायता की। द्विवेदीजी की आलोचना का लक्ष्य साहित्य न होकर मुख्यतः भाषा ही होता था। फिर भी उन्होने समालोचना की सुन्दर रूपरेखा प्रस्तुत कर दी। द्विवेदी-काल में बिहारी और देव को लेकर तुलनात्मक समालोचना की परिपाटी भी चली थी। इसके प्रचालन का एक-मात्र श्रेय पं० पद्मसिह शर्मा को ही दिया जा सकता है। हिन्दी में वस्तुतः यह एक नवीन चीज थी।

आधुनिक युग की समालोचना को पं० रामचन्द्र शुक्ल ने एक नवीन रूप दिया। उन्होने इस क्षेत्र में आलोचक के उत्तरदायित्व का अनुभव करते हुए गंभीरतायुक्त और गवेषणापूर्ण कार्य किया। शुक्ल जी ने अपनी आलोचना में केवल गुण-दोष ही नही निकाले, प्रत्युत उन्होने पूर्वीय और पश्चिमीय समालोचना-सिद्धान्तो का अच्छा समन्वय किया। उन्होंने काव्य की गहराई में पैठकर कवि की अन्तर्दृष्टि की प्रवृत्ति और प्रेरणा का सहानुभूति से अनुशीलन किया। समालोचक को कार्य बड़ा महत्त्व और उत्तरदायित्वपूर्ण है। उसे परस्पर के राग-द्वेष को दूर करके वस्तु-स्थिति पर न्यायपूर्वक शास्त्रानुमोदित स्वतन्त्र सम्मति देनी चाहिए। आचार्य शुक्ल ने 'जायसी' और 'तुलसी' की समालोचना इसी दृष्टिकोण से की है। इस प्रकार उन्होने आलोचकों के लिए एक आदर्श मार्ग उपस्थित कर दिया।

शुक्ल जी के पश्चात् पाश्चात्य ढग की आलोचना करने वालों में बाबू श्यामसुन्दरदास का नाम आता है। इन्होने 'साहित्यालोचन' लिखकर आलोचना-विषयक सिद्धातो का एक अच्छा समन्वय किया है। यह पुस्तक विद्यार्थियो के लिए बडी उपयोगी सिद्ध हुई। इसके अतिरिक्त 'हिन्दी भाषा और साहित्य' मे बाबू जी ने हिन्दी के इतिहास की प्रामाणिक, विद्वत्तापूर्ण और निष्पक्ष समीक्षा का सिद्धात रखा है। बाबू जी की भाषा सरल और सुबोध होती है। उन्होने अपने विषय के गहन और सूक्ष्म सिद्धांतों को बड़े सीधे-सादे ढग से समझाया है।

बाबू श्यामसुन्दरदास के पश्चात् आधुनिक समालोचको मे श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने 'विश्व-साहित्य' और 'हिन्दी-साहित्य-विमर्श' आदि पुस्तकें लिखकर हिन्दी-साहित्यिको को विश्व के अन्य समुन्नत साहित्यो से परिचित कराया है। इनकी इन पुस्तकों में साहित्य के द्वारा मानव जाति मे प्रेम और ऐक्य की भावना एवं विश्व-बन्धुत्व का सदेश मिलता है।

हिन्दी-भाषा की क्रमागत शैली के विकास की ओर अभी तक किसी ने ध्यान नही दिया था। काशी-विश्वविद्यालय के हिन्दी-अध्यापक डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा ने हिन्दी-गद्य-शैली का विकास' लिखकर आलोचना-जगत् की एक कमी को पूरा किया। आपने 'प्रसाद के नाटको का शास्त्रीय अध्ययन' लिखकर प्राचीन नाटच-शास्त्रो के आधार पर आधुनिक नाटक-रचना का बडा सुन्दर अनुशीलन किया है। पं० रमाकात त्रिपाठी ने 'हिंदी-गद्य-मीमासा' लिखकर गद्य-शैली का सुन्दर विवेचन किया है। प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने 'वाङ्मय विमर्श' लिखा है, जिसमे साहित्य का सक्षिप्त किन्तु खोजपूर्ण विवेचन किया गया है।

इसी काल में रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख' की 'प्रसाद की नाट्य-कला', 'आधुनिक हिन्दी कहानियाँ की भूमिका', डॉ० रामकुमार वर्मा का 'कबीर का रहस्यवाद' आदि समालोचना-ग्रन्थ प्रकाश मे आये। गंगानाथ झा का, 'कवि-रहस्य', रमाशकर शुक्ल का 'आलोचनादर्श', जना-

र्दनप्रसाद झा 'द्विज' की 'प्रेमचन्द की उपन्यास-कला' आदि पुस्तकों ने समालोचना के विकास में पर्याप्त योग दिया।

समालोचना-शास्त्र के कुछ ग्रंथों के लिखे जाने पर अनेक समीक्षको को आलोचना-क्षेत्र में कार्य करने के लिए एक सुव्यवस्थित मार्ग मिल गया। फलत. आज आलोचना-साहित्य मे खूब वृद्धि हो रही है। श्री रामदास गौड की 'रामचरित मानस की भूमिका' में तुलसी-साहित्य पर विशद प्रकाश डाला गया है। प० कृष्णशकर शुक्ल की 'केशव की काव्य-कला' 'कविवर रत्नाकर' तथा 'आधुनिक हिंदी-साहित्य का इतिहास' आदि उल्लेखनीय पुस्तके है। तुलसीदास पर डॉक्टर बलदेव-प्रसाद मिश्र की 'तुलसी-दर्शन' तथा डॉ० माताप्रसाद गुप्त की 'तुलसीदास' अच्छी पुस्तकें है। नलिनीमोहन सान्याल की 'भक्तवर सूरदास', नंददुलारे जी वाजपेयी की 'सूर-सदर्भ', हजारीप्रसाद द्विवेदी का 'कबीर' और नगेन्द्र की 'साकेत एक अध्ययन' तथा 'सुमित्रानन्दनपन्त' आदि पुस्तके समीक्षा-साहित्य के विकास की द्योतक है। नगेन्द्र जी के 'आधुनिक हिंदी नाटक' और सत्येन्द्र जी के 'हिंदी एकांकी' मे नाटको के शिल्प-विधान का भी अच्छा विवेचन किया गया है।

आधुनिक आलोचना में हमें दो प्रकार की नई प्रणालियो के दर्शन होते है। (१) मनोवैज्ञानिक बौद्धिकता-प्रधान समालोचना, और (२) शास्त्रानुमोदित गभीर आलोचना। नददुलारे वाजपेयी और डॉ० नगेन्द्र, पहली प्रणाली के आलोचक है। इनमें व्याख्यात्मक समालोचना का भी पुट रहता है। डॉ० नगेन्द्र की 'रीति काव्य की भूमिका' तथा 'देव और उनकी कविता' आलोचना-साहित्य की उल्लेखनीय कृतियाँ है। इनमे रस-वादी दृष्टिकोण से लेखक ने साहित्य की परिपाटी पर अच्छा विचार किया है।

श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र, कृष्णशंकर शुक्ल, रामकुमार वर्मा, राम-कृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख', सत्येन्द्र तथा हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वितीय प्रणाली के सवाहक आलोचक है। इनकी आलोचनाओ से एक नवीन

शैली का प्रचलन हुआ। वे तुलनात्मक समालोचना के स्थान पर किसी भी वस्तु की खोज करके उसके ऐतिहासिक पक्ष का समर्थन करने के पक्षपाती है। श्री गुलाबराय जी ने पं० रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना-पद्धति को अपनाया है। इनकी 'सिद्धान्त और अध्ययन' तथा 'काव्य के रूप' नवीनतम कृतियाँ है, जो अपने ढग की अद्वितीय है। श्री इलाचन्द्र जोशी ने मनोवैज्ञानिक ढग से आलोचनाएँ की है।

इधर कुछ दिनों से प्रगतिवादी आलोचकों ने मार्क्स दर्शन के आधार पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से आलोचना करने का नवीन मार्ग अपनाया है। प्रगतिशील आलोचकों में श्री शिवदानसिंह चौहान, डॉ० रामविलास शर्मा, प्रकाशचन्द्र गुप्त, पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश,' अज्ञेय और प्रभाकर माचवे के नाम उल्लेखनीय हैं। इनकी कृतियों तथा समीक्षा प्रणाली का उल्लेख हम प्रेमचन्द-काल के अन्तर्गत करेंगे।

आधुनिक कविता : रहस्यवाद और छायावाद

रहस्यवाद हिन्दी में कोई नई वस्तु नही है। वास्तव में रहस्यवाद की भावना तो मानव-हृदय की स्वाभाविक उपज है। जब वह अपने चारो ओर फैले हुए विशाल विश्व को देखता है, प्रकृति के नाना रूपो का अवलोकन करता है, सूर्य, चन्द्रमा और तारागण आदि का नियमित रूप निहारता है, तो उसके हृदय में स्वत· यह जिज्ञासा उठती है कि इस समस्त प्रपंच के मूल में कोई रहस्यमयी शक्ति कार्य कर रही है। इस रहस्यमयी अदृश्य शक्ति को जानने का वह प्रयास करता है। उसके हृदय में एक आध्यात्मिक भावना जागृत हो उठती है। इसी आध्यात्मिक भावना का एक स्वरूप रहस्यवाद है। हमारे उपनिषदो मे एक अज्ञात अचिन्त्य ब्रह्म का वर्णन है, जिसके देखने, जानने की मनुष्य सदैव चेष्टा करता है, पर यह देखा या जाना नहीं जा सकता। हाँ, विविध प्रकार की चित्रमयी भाषा में उसके स्वरूप की कल्पना की गई है। हिन्दी के सन्त कवियों में हमें रहस्यवाद की यही भावना मिलती है। कबीर

ने अपनी कविताओ मे इस अचिन्त्य ब्रह्म का वर्णन इस प्रकार किया है :

जाके मुह-माथा नहीं, नाहीं रूप कुरूप।
पुहुप वास तै पातला, ऐसा तत्त्व अनूप।।

रहस्यवाद की जिस अवस्था मे प्रेमी अपने प्रियतम के स्वरूप में विलीन हो जाता है, उस अवस्था का कबीर ने कितना सुन्दर और मार्मिक वर्णन किया है :

लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मै गई, मै भी हो गई लाल।।

प्रेममार्गी सूफी कवियो में भी रहस्यवाद की भावना पाई जाती थी। किन्तु कालान्तर मे उनके रहस्यवाद ने साम्प्रदायिक रूप धारण कर लिया। सूफी कवियो की यह रहस्यवादिता ही यूरोप में जाकर प्रचलित हुई। आज कुछ लोगो की यह धारणा कि हिन्दी में रहस्यवाद या छायावाद पश्चिमी रहस्यवाद का अनुकरण है, मिथ्या और भ्रममूलक है। वास्तव में रहस्यवाद की भावना तो हिन्दी में परम्परागत है। कुछ लोगो का मत है कि हिन्दी में रहस्यवाद रवीन्द्र ठाकुर के प्रगतिवाद अथवा रहस्यवाद का अनुकरण है और रवीन्द्र ठाकुर का रहस्यवाद पश्चिमीय है। यह ठीक है कि हिन्दी के आधुनिक रहस्यवाद पर रवीन्द्र के रहस्यवाद का प्रभाव अवश्य पडा, किन्तु रवीन्द्र के रहस्यवाद को हम पश्चिमीय नही मान सकते। रवीन्द्र ठाकुर का रहस्यवाद वास्तव मे उपनिषदो का रहस्यवाद है। बगाल मे जब ब्रह्म समाज की स्थापना हुई, तब उपनिषदो मे वर्णित उसी अचिन्त्य और अदृश्य ब्रह्म के संबंध में आध्यात्मिक भावनाओ की जागृति हुई। उन्ही भावनाओ से आभासित रूप को लक्ष्य करके कुछ रचनाएँ हुई। पीछे जब रवीन्द्रनाथ ने साहित्य मे प्रवेश किया, तो वही आध्यात्मिक भावनाएँ साहित्य का रूप धारण कर गई। हिदी-कवि उसका आध्यात्मिक रूप तो ग्रहण नहीं कर सके केवल साहित्यिक रूप ही उन्होंने ग्रहण किया। इसमें उन्होंने अपना

थोड़ा-सा विकृत अध्यात्म मिला दिया, जिससे हिंदी के रहस्यवाद या छायावाद में ऐन्द्रियता का समावेश हो गया।

रहस्यवाद की प्रथम अवस्था मे कवि को प्रस्तुत मे अप्रस्तुत का आभास होता है। जैसे ·

नभ के पर्दे के पीछे, करता है कौन इशारे।

दूसरी अवस्था में वह उससे मिलने को उत्सुक होता है :

हाँ सखि आओ बाँह खोल हम, लगकर गले जुड़ा लें प्रान।
फिर तुम तम में, मै प्रियतम में, हो जावे द्रुत अन्तर्धान॥

तीसरी अवस्था रहस्यवाद की चरम साधना की स्थिति है। इस अवस्था में आत्मा और ब्रह्म एक हो जाते है। आत्मा सहज ही में ब्रह्म के गुणों का अपने में आरोपण कर लेता है। फिर दोनो मे कोई भेद नहीं रह जाता ·

चित्रित तू मैं हूँ रेखा-क्रम
मधुर राग तू मै स्वर-सगम
तू असीम मैं सीमा का भ्रम
काया छाया में रहस्यमय प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या ?

छायावाद रहस्यवाद की प्रथम सीढ़ी है। छायावाद में आत्मा और जगत् के तादात्म्य पर बल दिया जाता है, जब कि रहस्यवाद में आत्मा और परमात्मा का एकीकरण लक्ष्य होता है। छायावाद मे प्रकृति का अत्यधिक समावेश होता है। आधुनिक कवि छायावादी अधिक है, रहस्यवादी कम। छायावाद में 'व्यक्तित्व का प्रकाशन', 'अतृप्त प्रेम', 'विश्व-बन्धुत्व की भावना', 'वेदना और निराशा', 'रहस्यवादी प्रवृत्ति का प्राधान्य' आदि रहते है। ये कवि सौंदर्यवादी होते हैं।

जयशंकर 'प्रसाद'–प्रसाद जी का जन्म सं० १९४६ में काशी के प्रसिद्ध वैश्य-कुल मे हुआ था। आप बचपन से ही विद्या-व्यसनी थे। हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी, संस्कृत, फारसी, बंगला आदि की शिक्षा भी आपने पाई थी। बचपन से आपके अंदर कवित्व की प्रतिभा दबी पडी थी।

आगे चलकर वह विकसित हो उठी और आप रहस्यवाद के सर्वश्रेष्ठ कवि कहलाए।

प्रसाद जी रहस्यवाद और छायावाद के प्रवर्त्तक माने जाते है। इनकी कविताओ में तीन विशेषताएँ प्रमुख रूप से पाई जातीं है—(१) वैयक्तिक तथा ईश्वरोन्मुख प्रेम, (२) प्रकृति-प्रेम, तथा (३) अतीत गौरव। प्रसाद जी की कविताओ में बौद्धिक और आध्यात्मिक दोनों ही तत्त्व मिलेंगे। यौवन और उन्माद, प्रेम और पीडा, आँसू और मुस्कान, संयोग और वियोग सभी कुछ आपकी कविता में उत्कृष्ट रूप में पाया जाता है:

किरण तुम क्यों बिखरी हो आज,
रँगी हो तुम किसके अनुराग ?

प्रसाद जी का प्रेम लौकिक से अलौकिक की ओर ले जाता है। इनका वर्णन पार्थिव होते हुए भी अपार्थिवता की ओर संकेत करता है। इनके देश-प्रेम का विषय एक अव्यक्त भावना से है जो विभिन्न रूपों में संसार मे व्यक्त होती रहती है। ये प्रकृति से भी उसी का स्वरूप निहारते है:

प्राची के अरुण मुकुर में,
सुन्दर प्रतिबिम्ब तुम्हारा।
उस अलस उषा में देखूँ,
अपनी आँखों का तारा॥

प्रसाद जी की स्फुट रचनाएँ 'आँसू', 'लहर' तथा 'झरना', आदि पुस्तको मे संगृहीत है। 'कामायनी' इनका महाकाव्य है। वही इनकी कीर्ति का अविचल स्तम्भ है।

'आँसू' उनका एक मानवीय विरह का काव्य है। 'आँसू' को उन्होने 'घनी-भूत पीड़ा' कहा है:

वह घनी-भूत पीड़ा थी, मस्तक में स्मृति-सी छाई।
दुर्दिन में आँसू बनकर, वह आज बरसने आई॥

यहाँ पीडा को बादल का रूप दिया गया है। वही बादल आँसू बनकर आँखों में आता है। आँखों और प्रकृति मे भी आँसुओ को देखकर प्रसाद जी ने मनुष्य और प्रकृति का साम्य उपस्थित किया है।

'कामायनी' में मनु और श्रद्धा की कथा है। यह एक प्रकार की समासोक्ति है। इसमे कथा के साथ-साथ रूपक भी चलता है। मनु, श्रद्धा और इडा—तीनो इसके मुख्य पात्र है। 'कामायनी' मे हृदयवाद और बुद्धिवाद का समन्वय किया गया है। प्रसाद जी ने स्वय कहा है : **"मनु अर्थात् मन के दोनों पक्ष हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है।"** कला की दृष्टि से 'कामायनी' सर्वश्रेष्ठ काव्य हैं। इसमें अनेक सूक्तियाँ और शब्द-चित्र आये है। श्रद्धा के सौदर्य का कितना सुन्दर वर्णन किया गया है .

मसृण गांधार देश के नील,
रोम वाले मेषों के चर्म।
ढक रहे थे उसका वपु कान्त,
बन गया था वह कोमल वर्म ॥
नील परिधान बीच कुसुमार,
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल,
मेघ बन बीच गुलाबी रंग ॥

कामायनी में मनुष्य को कर्मशील बनने की प्रेरणा की गई है। बुद्धि द्वारा निर्भीक होकर कर्म करने में ही उसकी सार्थकता है। अपने पुत्र मानव को इड़ा के साथ रहने का आदेश देती हुई श्रद्धा कहती है :

हे सौम्य ! इड़ा का शुचि दुलार,
हर लेगा तेरा व्यथा भार।
यह तर्कमयी तू श्रद्धामय,
तू मननशील कर कर्म अभय ॥

वास्तव मे 'कामायनी' इनका आधुनिक युग का सर्वश्रेष्ठ महा-काव्य है। प्रसादजी की भाषा सस्कृत-गर्भित होते हुए भी मधुर और प्रवाहमयी है। इनका शब्द-चयन भी बडा सुन्दर है। अलकार-योजना तथा उपमाओ मे भी नवीनता रहती है। इन समस्त गुणो के कारण ही वे एक युग-प्रवर्तक कवि कहलाए। 'कामायनी' की श्रेष्ठता पर आपको १२०० रु० का मगलाप्रसाद-परितोषिक भी मिला था। प्रसाद जी को अपने सांसारिक जीवन मे बडे सघर्षो का सामना करना पडा। ऐसी अवस्था मे आपकी आध्यात्मिक मनोवृत्ति ने ही आपका साथ दिया। स० १९९४ मे कार्तिक शुक्ला ११ को आपका शरीरात हुआ।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—आपका जन्म स० १९५३ मे हुआ। प्रसादजी के बाद रहस्यवादी कवियो में आपका ही प्रमुख स्थान है। आप बड़े स्वतन्त्र है। अपनी प्रकृति के अनुसार ही आपकी कविता भी रूढ़िवाद के बन्धनो को तोड़ती हुई स्वच्छन्द गति से प्रवाहित हुई है। निरालाजी मे दार्शनिकता और कवित्व दोनो ही बाते पाई जाती है। आप मे बुद्धिवाद और हृदयवाद दोनो का ही सुखद सम्मिश्रण है। निराला जी रहस्यवाद से प्रभावित अवश्य है, किन्तु रहस्यमयता मे तल्लीन होकर आप अपना व्यक्तित्व खो देने के पक्ष मे नही है। आप भक्तो की तरह ईश्वर से चॉद-चकोर का-सा ही सम्बन्ध रखना चाहते है

तुम गन्ध-कुसुम-कोमल पराग, मै मृदुगति मलय समीर।
तुम स्वेच्छाचारी मुक्त पुरुष, मै प्रकृति-प्रेम जंजीर॥
तुम शिव हो मै हूँ शक्ति।
तुम रघुकुल-गौरव रामचन्द्र, मै सीता अचला भक्ति।

निराला जी की इस कविता मे अद्वैतवाद झलक रहा है। आत्मा और परमात्मा का कैसा सुन्दर सम्बन्ध दिखाया है। ईश्वर और आत्मा वास्तव मे भिन्न तो नही है, भिन्न तो हमे दिखाई पडते है। इसी प्रकार नीचे की कविता मे जीव और ब्रह्म की एकता दिखाई गई है :

जीवन की सब विजय, सब पराजय
चिर अतीत आशा, सुख सब भय
सब में तुम, तुम में सब तन्मय,
कर स्पर्श रहित औ क्या है अपलक, प्रसार !
मेरे जीवन पर यौवन-वन के बहार ॥

ऊपर हमने निरालाजी के दार्शनिकता-सम्बन्धी दो उदाहरण दिये हैं। निराला जी ने बुद्धि-तत्त्व को भी अपने काव्य में स्थान दिया है। बुद्धि तत्त्व काव्य मे हेय नही है, जिस किसी कृति में ओजस्विता हो, जिसका प्रभाव हम पर पड़े, उस काव्य को श्रेष्ठ ही माना जायगा, चाहे उसमें बुद्धि तत्त्व की ही प्रधानता क्यों न हो। निराला जी का एक अत्यन्त बुद्धि-विशिष्ट काव्य-चित्र देखिए :

प्रथम विजय भी यह भेदकर माया चरण
दुस्तर तिमिर घोर जड़ावर्त—
अगणित तरंग भंग—
वासनाएँ समल निर्मल
कर्ममय राशि-राशि
स्पृहाहत जंगमता—
नश्वर संसार—
सृष्टि पालन प्रथम-भूमि—
कुकर्म अज्ञान राज्य
मायावृत्त 'मैं' का परिवार
उसकी अश्रु भरी आँखों पर
मेरे करुणांचल का स्पर्श
करता मेरी प्रगति अनन्त
किन्तु तो भी है नहीं विमर्श

यह बुद्धि-तत्त्व आधुनिक भावना-विजड़ित कविता में निस्संगता लाने और कोरी कल्पनामयी कविता को संग्रथित कला-सृष्टि का स्वरूप देने

में समर्थ है। देखिए :

उसकी अश्रु भरी आँखों पर
मेरे करुणांचल का स्पर्श
करता मेरी प्रगति अनन्त
किन्तु तो भी है नहीं विमर्श
छूटता है यद्यपि अधिवास
किन्तु फिर भी न मुझे कुछ त्रास।

निरालाजी की स्वच्छन्दता मुक्तक छन्दों में अधिक प्रवाहित हुई है। इनकी भाषा मे पौरुष, प्रवाह, तीव्रता, क्लिष्टता और गजब की गति है। इनके स्वच्छन्द छन्द प्रवाहयुक्त और गतिशील है.

झूम-झूम मृदु गरज-गरज घनघोर !
राग अमर ! अम्बर में भर निज रोर !
झर झर झर झर निर्झर गिरि सर में,
घर, मरु, तरु मर्मर सागर में,
सरित तड़ित गति, चकित पवन में,
मन में, विजन गहन कानन में,
आनन-आनन में, रव-घोर-कठोर—
राग-अमर ! अम्बर में भर निज रोर !

युग की विचार-धारा से प्रभावित होकर भी निराला ने बहुत-कुछ लिखा है। 'भिक्षुक', 'विधवा' और 'वह तोड़ती पत्थर' कविताएँ ऐसी ही है। निरालाजी की कविताएँ, 'परिमल', 'अनामिका', 'गीतिका', 'अलका', 'अप्सरा', 'अपरा', 'प्रभावती', 'निरुपमा', 'नये पत्ते' और 'बेला' आदि में संगृहीत है।

सुमित्रानन्दन पन्त—आपका जन्म सं० १९५६ में अलमोडा जिले मे हुआ। आपने एफ० ए० तक अंग्रेजी में शिक्षा प्राप्त की और फिर कालेज छोडकर प्रकृति की अप्रतिबन्ध गोद में ही अपने जीवन की वास्तविक शिक्षा पाने लगे। प्रकृति ने ही उन्हे गाना सिखाया और प्रेम

करना सिखाया और प्रेम के वियोग में तडपना भी सिखाया। पतजी की वर्ण-योजना में सूक्ष्मता रहती है, वे प्रकृति-निरीक्षण तथा भावुकता के संयोग से सुन्दर चित्र चित्रित करते है। पतजी की उपमाएँ भी बडी अनूठी और सुन्दर होती हैं -

बाल-रजनी-सी अलक थी डोलती
भ्रमित-सी शशि के बदन के बीच में
अचल, रेखांकित कभी थी कर रही
प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य में

पतजी ने रूप और सूक्ष्म भावना दोनों के ही चित्र खींचे है। और अपनी कल्पनापूर्ण नई-नई उपमाओ को उपस्थित करके उन चित्रो को बड़ा आकर्षक बना दिया है :

गिरि का गौरव गाकर झर-झर।
मद से नस-नस उत्तेजित कर।
मोती की लड़ियों से सुन्दर।
झरते झाग भरे हैं निर्झर॥

× × ×

धूम धुँआरे काजर कारे,
हम ही विकरारे बादर,
मदन राज के बीर बहादुर,
पावस के उड़ते फणिधर॥

अब तनिक मानव-सौंदर्य का वर्णन भी देखिए .

सरलपन ही था उसका मन,
निरालापन था आभूषण,
कान से मिले अजान नयन,
सहज था सजा सजीला तन॥

प्रेम और सौंदर्य की सूक्ष्म मानसिक विवृत्ति तक में पंतजी की कल्पना समर्थ हुई है। और यत्र-तत्र यही कल्पना आध्यात्मिक उड़ान

भी लेती चली है। इसी को प्रचलित शब्दो मे छायावाद कहा जाता है। जब वे आत्म-दर्शन की अभिव्यक्ति की चेष्टा करते है तो उनके काव्य मे एक असीम आनन्द की अनुभूति होती है :

आज बन में पिक-पिक में गान, विश्व मे कलि-कलि मे सुविकास।
कुसुम में रज, रज मे मधु प्राण ! सलिल में लहर, लहर में लास।
मुकुल मधुपों का मृदु मधुमास, स्वर्ण, सुख, श्री, सौरभ का सार,
मनोभावों का मधुर-विलास, विश्व-सुषमा ही का संसार।
दृगों में छा जाता सोल्लास, व्योम-बाला का शरदाकाश,
तुम्हारा आता जब प्रिय-ध्यान, प्रिये प्राणों की प्राण ॥

पतजी छायावाद के सर्वश्रेष्ठ कवि कहे जाते है, किन्तु आजकल उन्होने प्रगतिवादी पर भी लिखा है। प्रगतिवादी दृष्टिकोण के जन्म लेते ही पतजी ने उसे अपनाया और मध्य-वर्ग के सघर्ष को केन्द्र-बिन्दु बनाकर सुन्दर रचनाएँ प्रस्तुत की। 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' इसका प्रमाण है :

इस क्षुद्र लेखनी से केवल,
करता मै छाया-लोक सृजन ?
पैदा हो मरते जहाँ भाव,
बुद्-बुद् विचार औ' स्वप्न सघन।
निर्माण कर रहे वे जग का,
औ' जोड़ ईंट-चूना-पत्थर।
जो चला हथौड़े घन, क्षण-क्षण,
है बना रहे जीवन का घर।
जो कठिन हलों की नोकों से,
अविराम लिख रहे धरती पर।
जो उपजाते फल, फूल, अन्न,
जिन पर मानव-जीवन निर्भर ॥

मैं जग जीवन का शिल्पी हूँ।
जीवित मेरी वाणी के स्वर।
जन-मन के मांस-खण्ड पर मैं,
मुद्रित करता हूँ सत्य अमर ॥

'ग्राम्या' में आपने ग्राम-जीवन के वास्तविक चित्र उपस्थित किये है। ग्रामो मे ही आप भारतीय सस्कृति का दर्शन पाते है .

मनुष्यत्व के मूल तत्त्व ग्रामों ही में अंर्तहित,
उपादान भावी संस्कृति के भरे यहाँ है अविकृत।
शिक्षा के सत्याभासों से ग्राम नहीं है पीड़ित,
जीवन के संस्कार अविद्या-तम मे जन के रक्षित।

'उच्छ्वास', 'वीणा', 'पल्लव', 'ग्रंथि', 'गुजन', 'पल्लविनी', 'युगान्त', 'ज्योत्स्ना', 'युगवाणी', 'ग्राम्या' आदि आपकी उत्तम कृतियाँ है। 'स्वर्ण-किरण', 'स्वर्ण-धूलि' और 'उत्तरा' मे वे 'अरविन्द-दर्शन' को काव्य के माध्यम से व्यक्त कर रहे है।

महादेवी वर्मा—आपका जन्म स० १९६४ मे फर्रुखाबाद मे हुआ था। आपने संस्कृत और दर्शन विषयों के साथ बी० ए० पास किया और सस्कृत में एम० ए० पास करके इस समय आप प्रयाग-महिला-विद्यापीठ की प्रधानाध्यापिका है।

आपने खडी बोली के गीति-काव्य को एक अद्भुत जीवन-शक्ति प्रदान की है। आपकी कविता में दु:ख की तीव्र अनुभूति है। आप अपने मानस के समान ससार मे सूनापन देखती है। फिर भी आप मनुष्य की सीमाबद्धता में सकुचित नही होती, आपके विचार मे मनुष्य की लघुता ही उसका गौरव है। यही आपके रहस्यवाद की विशेषता है :

सच है कण का पार न पाया, बन बिगड़े असंख्य संसार।
पर न समझना देव हमारी लघुता है जीवन की हार ॥

चिर अतृप्ति वासनाओं का, निष्फल जीवन कर जाती ।
बुझते ही क्यों प्यास हमारी, पल में विरक्ति बन जाती ॥

महादेवी जी के काव्य मे कल्पना-शक्ति का प्राधान्य है। कही-कहीं तो काव्य की स्वाभाविकता कल्पना के बोझ से दबकर क्लिष्टता का रूप धारण कर गई है :

रजनी ओढ़े जाती थी, झिलमिल तारों की जाली ।
उसके बिखरे वैभव पर, जब रोती थी उजियाली ॥

रजनी का झिलमिल तारो की जाली ओढकर जाना बडी सरल और मार्मिक कल्पना है। किन्तु उजियाली का रोना साधारणत: कही-कही देखा जाता है। क्लिष्ट कल्पना का एक और उदाहरण देखिये :

निश्वासों का नीड़ निशा का बन जाता जब शयनागार ।
लुट जाते अभिराम छिन्न मुक्तावलियों के बंदनवार ॥
तब बुझते तारों के नीरव नयनों का ये हाहाकार ।
आँसू-सा लिख-लिख जाता है, कितना अस्थिर है संसार ॥

किंतु जहाँ इन्होने अलकृत, चित्राकन छोडकर स्वाभाविकता का मार्ग पकडा, वहाँ बडी सजीव कविता का स्रोत बह चला है :

स्वर्ग का था नीरव उच्छ्वास, देव वीणा का टूटा तार !
मृत्यु का क्षणभंगुर उपहार, रत्न वह प्राणों का शृङ्गार ॥
नई आशाओं का उपवन, मधुर था वह मेरा जीवन !

महादेवी ने छायावादी काव्य में व्यक्त प्रकृति के सौंदर्य-प्रतीको को न लेकर उन प्रतीको की अव्यक्त गतियों और छाया का ही सग्रह किया है। इससे उनकी रचनाओ मे वेदना की विवृति और रहस्यात्मकता बढ़ गई है :

उन हीरक के तारों को कर चूर बनाया प्याला ।
पीड़ा का नव सार मिलाकर, प्राणों का आसव ढाला ॥
मलियानिल के झोंकों में अपना उपहार लपेटे ।
मैं सूने तट पर आई, बिखरे उद्‌गार समेटे ॥

आपकी कविताओ के सग्रह—'नीहार', 'नीरजा', 'रश्मि', 'सान्ध्य-गीत', 'दीपशिखा' और 'यामा' नाम से प्रकाशित हुए है।

रामकुमार वर्मा—आपका जन्म स० १९६२ मे सागर जिले में हुआ था। आपकी स्वर्गीय माता जी कवयित्री थी, इसलिए आप पर मातृ-संस्कार का पूरा प्रभाव पडा। प्रयाग-विश्वविद्यालय मे आपने एम० ए० पास किया और 'हिदी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन' लिखने पर नागपुर-विश्वविद्यालय ने आपको—'डॉ० आफ फिलासोफी' की उपाधि प्रदान की। सम्प्रति आप प्रयाग-विश्वविद्यालय मे हिदी-अध्यापक का कार्य करते है।

इनकी कविताओं मे पीडा, अभाव और विषाद की वेदना छिपी रहती है। आपकी कविताओं मे कल्पना और अनुभूति दोनो ही होती है। वास्तव मे आप दु:खवाद के कवि है। क्षणिक सुख मे आपको दु:ख का आभास मिलता है :

क्यों लिखते हो खींच-खींच,
विद्युत् की उज्ज्वल रेखा।
मैंने तो नभ को केवल,
पृथ्वी पर रोते देखा॥
बादल के तिरछे तन को,
स्थिर मैंने कभी न पाया।
प्रातः में भी दौड़ गई,
सन्ध्या की काली छाया॥

इस दु:खवाद के कारण आपकी कविताओ मे निराशा अवश्य आ गई है, किन्तु निराशा में भी आप प्रियतम को नही भूले हैं। फटे हुए बादलों मे भी वे उसका आभास पाते है :

यह तुम्हारा हास आया।
इन फटे से बादलों में
कौन सा मधुमास आया॥

आपकी कविताओ मे न तो उलझन है और न भाषा में ही क्लिष्टता और अस्पष्टता है। आपकी कविताओ के सग्रह—'निशीथ', 'चित्तौर की चिता', 'अंजलि', 'अभिशाप', 'रूपराशि' और 'चित्ररेखा' नाम से प्रकाशित हो चुके है। 'चित्ररेखा' की श्रेष्ठता पर आपको २००० रुपये का देव-पुरस्कार भी मिल चुका है।

भगवतीचरण वर्मा—आपका जन्म स० १९६० में उन्नाव जिले के अन्तर्गत शफीपुर नामक ग्राम में हुआ था। वर्माजी की कविताएँ प्रेम की पीडा से भरी रहती है। किन्तु आप दु.ख में भी सुख का अनुभव करते है। आपकी कविता के आधार है—'घोर निराशा', 'अलमस्ती', 'प्रेम-वेदना', 'अतृप्ति' और 'जीवन के आघात'। आपकी कविताओ मे कल्पना की असम्भव और अस्वाभाविक उडान नही होती, प्रत्युत बड़े स्पष्ट और सरलतापूर्ण चित्र होते है

घिर रहा निराशा को लेकर पावस का यह धुँधला प्रभात !
सिहरन को लेकर पुरवाई, बह रही व्यथा से अति चंचल।
लो उस तरु पर प्यासा चातक, है बोल रहा उन्मत्त विकल ॥
काली-काली मेघावलियाँ है उमड़ रहीं दुख से पागल।
तड़पे है सारी रात यहाँ, रो-रोकर जल-जलकर बादल ॥
है मैंने भी तो रो-रो कर काटी वियोग की काल-रात !

इस दु:ख मे भी उन्हें एक आशा दिखाई दे रही है·

इस दुख में पाओगे सुख की धुँधली एक निशानी।
आहों के जलते शोलों में तुम्हें मिलेगा पानी ॥

जीवन की विषमता ने वर्माजी को प्रगतिवादी बना दिया है। अब कुछ दिन से वे प्रगतिशील रचनाएँ लिखते है। देखिए, 'भेसा गाडी' मे आपने समाज के वैषम्य का कैसा मार्मिक चित्रण किया है :

जिसमें मानव की दानवता फैलाए है निज राज-पाट।
साहूकारों के परदे में है जहाँ चोर औ' गिरहकाट ॥

हैं अभिशापों से जहाँ-जहाँ, पशुता का कलुषित ठाट-बाट।
उसमें चाँदी के टुकडों के बदले में लुटता है अनाज।
उन चाँदी के ही टुकड़ों से तो चलता है सब राज-काज॥
वह राज-काज जो सधा हुआ है इन भूखे कंगालों पर।
इन सम्राज्यों की नींव खड़ी है, तिल-तिल मिटने वालों पर॥

आपके काव्य-सग्रह 'मधु-कण' और 'प्रेम-सगीत' है।

मोहनलाल महतो 'वियोगी'—आपका जन्म स० १९४९ में गया मे हुआ था। आपकी गणना भी रहस्यवादी कवियो मे की जाती है। इनकी कविता पर रवीन्द्र ठाकुर के विचारो और सिद्धातो का प्रभाव पड़ा है। आपके कथनानुसार '**जीवन एक जीर्ण नौका के समान है जिसे अपने प्रियतम के देश की ओर अग्रसर होना चाहिए।**' आपने कही-कही ससार की असारता की ओर भी सकेत किया है और मानव को सचेत करते हुए उसे जीवनोद्देश्य की प्राप्ति का सदेश दिया है :

रहस्य' और 'अदृश्य' के प्रति आपका रहस्यमय सकेत देखिए :

हे मेरे जीवन की पुस्तक! भूतकाल के हे इतिहास!
हे भविष्य की विशद पंजिका! हे विचित्रता के आवास!
कौन अलक्ष्य उँगलियों से नित पृष्ठ उलटता है तेरा?
है सीमित उसका दिखलाना, है सीमित पढ़ना मेरा॥

आपकी कविताओ के संग्रह 'निर्माल्य', 'कल्पना' और 'एकतारा' नाम से प्रकाशित हो चुके है।

माखनलाल चतुर्वेदी—आपका जन्म स० १९४५ मे हुआ था। आधुनिक राष्ट्रीय कवियो मे आपका चोटी का स्थान है। आप मध्य प्रदेश के एक प्रमुख राष्ट्रीय कार्यकर्ता भी है। आजकल आप 'कर्मवीर' का सम्पादन करते है। आपकी रचनाएँ कल्पना-प्रसूत नही, प्रत्युत जीवन की कठोर अनुभूतियो के उद्गार-स्वरूप होती है। आपकी कविताओं में वेदना की अदृश्य मूर्ति लक्षित होती है।

'बलिदान', 'उन्मूलित वृक्ष', 'सिपाही', 'मरण और त्योहार' आपकी

उत्कृष्ट राष्ट्रीय रचनाएँ है। आपकी रचनाओ मे एक प्रलयकारी ओज है। यहाँ तक कि आपकी प्रेम और वेदनाओ की कविताएँ भी उस ओज से नहीं बच सकी है। आपकी राष्ट्रीयता के कारण ही आपको 'एक भारतीय आत्मा' की उपाधि दी गई है। आपकी कविताओ का सग्रह 'हिमकिरीटिनी' और 'हिमतरगिनी के नाम से प्रकाशित हो चुके है। आपकी कविता का उदाहरण देखिए

मत झनकार जोर से, स्वर भर ले तू तान समझ ले।
नीरस हूँ तो रस बरसाकर अपना गान समझ ले॥
फौलादी तारों से कस ले बन्धन मुझ पर कस ले।
कभी सिसक ले, कभी मसक ले कभी खीझकर हँस ले॥
कान खींच ले, पर न फेंक गोदी से मुझे उठाकर।
कर जालिम मनमानी अपनी पर 'जी' से लिपटाकर॥

गुरु भक्तसिंह 'भक्त'—आपका जन्म स० १६५० में गाजीपुर जिले के अन्तर्गत जमनियाँ नामक स्थान मे हुआ था। आप बडे सहृदय-कवि है। आपके रचित काव्य 'कुसुम-कुज', 'सरस-सुमन', 'वशी-ध्वनि', 'चपला' तथा 'नूरजहाँ' है। 'नूरजहाँ' से ही काव्य-क्षेत्र में आपकी प्रसिद्धि हुई है। 'नूरजहाँ' मे आपने मानव-हृदय के अन्तर्द्वन्द्व, पिपासाकुल जीवन की कसक और प्रेम की पीडा का बड़ा सुन्दर चित्रांकन किया है। आपकी दो विशेषताएँ है—प्रकृति-वर्णन और मुहाविरों का प्रयोग। 'नूरजहाँ' पर आपको नागरी-प्रचारिणी-सभा द्वारा पुरस्कार भी मिल चुका है। 'विक्रमादित्य' महाकाव्य भी उनकी श्रेष्ठ कृति है। आपने इस कविता में मुहाविरों का कैसा सुन्दर प्रयोग किया है :

अब तक खूब उड़ाए है तूने आनन्द कबूतर।
हाथों के तोते अब उड़ते, कैसा कतर दिया पर॥
अब मेरी तूती बोलेगी, तथा खिलाऊँगी गुल।
वह प्यारा सलीम हो जायगा मुझ पर ही बुलबुल॥

उल्लू मुझे बनाने आई, उड़ती मैं पहचानूँ।
निकल जाय मेरे पंजे से, कोई तब मैं जानूँ

जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'—आपका जन्म स० १९६४ में मुरार (ग्वालियर) मे हुआ था। आप एक राष्ट्रीय कवि होने के साथ-साथ अनुभवी राष्ट्रकर्मी भी है। राजनैतिक आन्दोलनो में आपने सदा सचेष्ट भाग लिया है और कई बार विदेशी सरकार के जेल-अतिथि भी रह चुके है। आपकी कविता आपके सामाजिक और राजनैतिक जीवन की सजीव झाँकी है। उसमें इनके क्रान्तिकारी हृदय की स्वाभाविक छाप है। विशुद्ध कला की दृष्टि से कविता के साथ कवि के जीवन का वास्तविक सामंजस्य होना आवश्यक है। यही आपका सिद्धान्त है। आपकी कविताओ के 'जीवन-सगीत', 'नवयुग के गान' और 'बलि पथ के गीत' ना मकतीन संग्रह प्रकाश मे आ चुके है। कविता का उदाहरण देखिए :

श्वासों की सारी शक्ति लगाकर अपनी,
औरों की जय का शंख बजाने वाले।
हम चिर अभाव का नरक बना निज जीवन,
औरों के हित सुख-स्वर्ग जलाने वाले॥
शोणित से सदा हमारे सिंचते आये,
साम्राज्यों के विस्तार, कोष चिर संचित।
अगणित आडम्बर धर्म और दर्शन के,
हम रहे किन्तु अब तक वंचित के वंचित॥

सुभद्राकुमारी चौहान—आपका जन्म स० १९६१ और मृत्यु २००४ म हुई। आपकी कविताएँ अधिकतर राष्ट्रीय होती है। जिनमे देश-प्रेम और तदर्थ सहे जाने वाले कष्टों का वर्णन होता है। उनमें ओज की पर्याप्त मात्रा रहती है। अपनी पुत्री के सम्बन्ध मे जो कविताएँ आपने लिखी है, वे वात्सल्य रस से परिपूर्ण है। आपकी 'झाँसी की रानी' कविता बहुत प्रसिद्ध है। 'मुकुल' व 'बिखरे मोती' नामक ग्रथों पर आपको सेकसरिया पुरस्कार भी मिल चुका है।

'जलियाँ वाला बाग में' वसन्त कविता के कुछ अंश नीचे देखिए :

यहाँ कोकिला नहीं काग हैं शोर मचाते ।
काले-काले कीट भ्रमर का भ्रम उपजाते ॥
कलियाँ भी अधखिली मिली हैं कंटक-कुल से ।
वे पौधे, वे पुष्प शुष्क हैं अथवा झुलसे ॥
परिमल-हीन पराग दाग-सा बना पड़ा है ।
हा ! यह प्यारा बाग खून से सना पड़ा है ॥
आओ प्रिय ऋतुराज ! किंतु धीरे से आना ।
यह है शोक-स्थान, यहाँ मत शोर मचाना ॥

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—आपका जन्म स० १९५४ में शाजापुर (ग्वालियर) में हुआ। बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् आप राष्ट्र की पुकार पर असहयोग-आंदोलन में कूद पडे। 'नवीन' जी सयुक्त प्रांत के एक प्रमुख राष्ट्रीय नेता है, हमारे जीवन मे जो वैषम्य है, आघात और [illegible] का जो क्रन्दन है, सघर्ष से उभरने वाला जो विद्रोह है , वह सब 'नवीन'जी की कविताओं में ज्वालामुखी के समान फूट पडा है। आपकी कविताएँ राष्ट्र को जगाने वाली होती है। उनमे विप्लव का आवेश भरपूर पाया जाता है। स्वाभाविकता, सरलता, रस तथा प्रवाह मिलकर इनकी कविताओ में एक विचित्र ओज उत्पन्न कर देते है। इनकी शृङ्गार-सम्बन्धी कविताओं में एक मादकता और उन्माद पाया जाता है। आपकी रचनाओ के सग्रह 'कुकुम', 'अपलक', 'रश्मि रेखा', तथा 'क्वासि'नाम से प्रकाशित हो चुके है। आजकल आप लोक-सभा के सदस्य है। आपकी कविता का उदाहरण देखिए :

दिल को मसल-मसल मै मेंहदी रचता आया हूँ, यह देखो ।
एक-एक अंगुलि परिचालन मे नाशक तांडव को देखो ॥
विश्व-मूर्ति, हट जाओ! मम यह भीम प्रहार सह न सहेगा ।
टुकड़े-टुकड़े हो जाओगी, नाश-मात्र अवशेष रहेगा ॥

\+ \+ \+ \+

अन्दर आग छिपी है इसे भड़क उठने दो एक बार अब।
ज़्वालामुखी शांत है इसे कड़क उठने दो एक बार अब॥
दहल जायें दिल, पैर लड़खड़ाएँ कँप जाय कलेजा उनका।
सर चक्कर खाने लग जाये, टूटे बन्धन शासन-गुण का॥

उदयशंकर भट्ट—भट्ट जी का जन्म सं० १९५५ में बुलन्दशहर जिले में हुआ। भट्ट जी यथार्थवादी कवि है। इनका काव्य गहन अनुभूति और दार्शनिकता लिये हुए है। जीवन की वेदना, सामाजिक विषमता और उससे उत्पन्न होने वाले अन्यान्य, दु खों और क्लेशों का चित्रण इनके काव्य मे मिलता है।

भट्ट जी की प्रारम्भिक कविताओं में निराशा और असफलता के दर्शन होते है :

किसने परिणामों में पाया, संचित आश भरा शृङ्गार।
मै संसार विहार-स्थल पर निरख रहा हूँ बारम्बार॥

धीरे-धीरे निराशा की यह भावना विद्रोह का उग्र रूपधा रण करने लगी। कवि अकर्मण्यता से पौरुष की ओर बढने लगता है। साम्यवाद में उसका विश्वास शिथिल होने लगता है। मानव का भविष्य यदि उज्ज्वल हो सकता है, तो उसके अपने पुरुषार्थ के बल से, ईश्वरीय अनुकम्पा से नही। क्यों कि ईश्वर तो :

कुछ कह न सका पीड़ित के प्रति,
कुछ न किया है अब तक उसने।
कुछ न करेगा आगे भी वह,
निर्बल को देगा यों चुसने॥

भट्ट जी को थोथे सराहनीय अध्यात्मवाद से घृणा है। जिसके बल पर मानव मनमानी करता है :

यह अध्यात्मवाद नीरस के,
जीवन की है मंजु कहानी।

जहाँ कि ईश्वर के बल पर नर,

करता घर जानी मनमानी ॥

अब 'जगती की उथल-पुथल' में भट्ट जी का रूप देखिये ;

अरे फेंक दो सुधा रसीली फेंमै अब विष पीने आया हूँ ।
किसी नशे की चाह नहीं पी सर्वनाश जीने आया हूँ ॥
भड़क-भड़ककर आग जगत् की पल को पीकर बढ़ती जाती ।
किसी सृजन के लिए नाश के सोपानों पर चढ़ती जाती ॥

भट्ट जी के काव्य—'तक्षशिला', 'राका', 'मानसी', 'विसर्जन' 'अमृत और विष' तथा 'युग-दीप' नाम से प्रकाशित हो हे ।

हरिवंशराय बच्चन—इनका जन्म सं० १९६४ मे हुआ । प्रयाग-विश्वविद्यालय से इन्होंने एम० ए० पास किया । बच्चन जी उमर खैयाम की रूबाइयो के आधार पर हालावाद का प्याला लेकर हिन्दी-जगत् में प्रविष्ट हुए । 'मधुशाला,' 'मधुबाला,' 'मधुकलश' आदि पुस्तकों में जीवन को सुखी बनाने की प्रवृत्ति और संसार के दु ख-सुख भूलकर विस्मृत हो जाने की भावनाएँ पाई जाती हे । हालावादी बच्चन हमें जीवन की मधुरता और रंगीन मस्ती के बहुत निकट नज़र आते हैं । किन्तु जीवन की अतृप्ति न बुझ सकने पर उन्हे वेदना और निराशा की ओर आना पड़ा । 'एकान्त-सगीत', 'निशा-निमन्त्रण' में वे निराशावाद के निकट पाए जाते हे :

गान हो जब गूँजने को, विश्व के क्रन्दन करूँ मै ।
हो गमकने को सुरभि जब, विश्व में आहें भरूँ मै ।
विश्व बनने को सरस हो जब, गिराऊँ अश्रु मै तब,
विश्व-जीवन-ज्योति जागे, इसलिए जलकर मरूँ मै ॥

किन्तु आजकल बच्चन यथार्थवाद के निकट आते जा रहे हे । इनकी नवीन कविताओं में प्रगतिशीलता पाई जाती है । इनकी प्रगतिशील कविताओं का सग्रह 'सतरंगिनी' नाम से प्रकाशित हुआ है । देखिए भूखे किसान का कितना करुणाजनक चित्र खींचा है :

खड़ा हुआ है कृषक सामने,
दुःख द्रवित है उसके दृग।
जोर-जोर से साँसे चलतीं,
डगमग-डगमग करते पग॥
वह अकाल-पीड़ित है, रोटी
को पाता पेड़ों की छाल।
घोर कालिमा मुख पर छाई,
काया है केवल कंकाल॥

हरिकृष्ण 'प्रेमी'—प्रेमी जी का जन्म स० १६६५ में गुना (ग्वालियर) मे हुआ। प्रेमी जी का काव्य जीवन की करुण पीडा, मूक वेदना और दुःख तथा अभाव का मार्मिक चित्र है। इनके प्रारम्भिक काव्य में स्थिति-जन्य दु.ख और अभाव का चीत्कार है। किन्तु बाद में इनकी निराशा एक विद्रोह का रूप धारण कर लेती है। बात यह है कि समाज की विषमता, रूढियाँ, शोषण-प्रणाली सहज मे ही कवि-हृदय को विद्रोही बना देती है। वह इस विषमता और अभावो के प्रति सिह-गर्जना करता है, विश्व मे उथल-पुथल मचा देना चाहता है। प्रेमी जी के काव्य-संग्रह—'आंखो में', 'जादूगरनी', अनन्त के पथ पर', 'अग्नि गान', 'रूप-दर्शन' 'वन्दना के बोल' नामो से प्रकाशित हो चुके है। कविता का उदाहरण देखिए :

क्यों कहती हो एक घड़ी रुक, मधुर-स्नेह-संगीत सुनाऊँ।
सूखी हुई स्नेह-क्यारी में, क्षण जीवन की धार बहाऊँ॥
मेरी साँस-साँस में ज्वाला, बोलो तो सखि कैसे गाऊँ।
मुझको जाने दो, इस ज्वाला में जग का अभिमान जलाऊँ?
जग को रहने योग्य बनाऊँ, या अपना अस्तित्व मिटाऊँ।
क्यों बे-दर्द जगत् के आगे, पीड़ा को बे-दर्द बनाऊँ॥

आरसीप्रसादसिंह– आरसी की कविताएँ शृङ्गार और प्रेम-पीडा में डूबी हुई होती है। उनमें कवि-हृदय का सरल प्रेम सहज ही में बह

निकला है। आपका शब्द-चयन भी बड़ा सुन्दर पन्त और निराला की टक्कर का है। प्रकृति का चित्रण आपने बड़ा सुन्दर किया है। आपकी कविताएँ 'कलेजे के टुकड़े', 'आरसी' और 'कलापी' मे सगृहीत है। कविता का उदाहरण नीचे देखिए .

आज के मधु का पुलकित प्रात;
अरुण सस्मित, नत-भाल !
स्फीत मुक्ता-सा, मुख जलजात;
लाज से लोहित गाल !
प्राण, आया विस्मय—अवदात;
सजल चम्पक-सा गात !
माधुरी अधरों पर मुस्कान;
कुतूहल कलित कपोल !
पुष्प-परिमल-पीतसि परिधान;
विलोचन उत्सुक लोल !
उतरता सुर धनु-सा रुचिमान;
स्वयं ही निज उपमान !

श्री श्यामनारायण पांडेय—पाण्डेय जी वीर रस के राष्ट्रीय कवि है। किंतु इनकी राष्ट्रीयता प्राचीन धारा के अनुकूल हिन्दुत्व की है। इनकी भाषा सरल और प्रवाहमयी है। इनका 'हल्दी घाटी' वीर रस का एक सुन्दर काव्य है। इनकी कविता का उदाहरण देखिये :

वैरी दल की ललकार गिरी।
वह नागिन सी फुफकार गिरी॥
था शोर मौत से बचो-बचो।
तलवार गिरी, तलवार गिरी॥
पैदल से हय-दल, गज-दल में।
छप-छप करती वह निकल गई॥

क्षण कहाँ गई कुछ पता न फिर ।
देखो चम-चम वह निकल गई ॥

सोहनलाल द्विवेदी—आप बच्चो के लिए कविताएँ लिखा करते है। वैसे लोग आपको राष्ट्रीय कवि भी कहते है। किन्तु अभी तक कोई आपकी राष्ट्रीय रचना प्रकाश में नही आई है। हाँ, गाधी जी और खादी के सम्बन्ध मे आपने अवश्य कुछ लिखा है। आपकी कविताओ का संग्रह 'वासवदत्ता' नाम से निकला है, जिसमे अनेक ऐतिहासिक भूले है। आपकी उच्च कोटि की रचना का उदाहरण नीचे दिया जाता है.

न हाथ एक अस्त्र हो
न साथ एक शस्त्र हो
न अन्न-नीर-वस्त्र हो
हटो नहीं, हटो नहीं।

इसे बच्चों के लिए साधारण तुकबन्दी ही कह सकते है।

सुमित्राकुमारी सिनहा—महिला-कवयित्रियो मे आपका प्रमुख स्थान है। आपके गीतो मे नारी-हृदय की ज्वलित वेदना छिपी रहती है। प्रेम की पीडा, विरह की व्यथा, कसक, जलन, टीस सभी कुछ आपके गीतो मे मिलता है। आपके सुन्दर गीत समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होते रहते है। उदाहरण नीचे देखिये .

फूलों की अनुभूति विवश हो, व्यक्त सिसकियों मे ही करना ।
एक चिरन्तन क्रम दीपक की ज्योति शिखा पर धूम फहरना ॥
सपनों को चिर जागृति देकर एक यथार्थ मे तन्द्रित होना ।
संकेतों की दशा खोजकर, अवश भ्रान्ति के जग में खोना ॥
एक पूर्णता क्षण से लम्बी साधों का गठ बन्धन करना ।
एक सिद्धि के हित जीवन-भर कठिन साधना पंथ-विचरना ॥
चिर अतृप्ति के ही चरणों पर, तृप्ति-कामना का लुट जाना ।
यही सत्य है क्या जीवन का, यही मरण का एक बहाना ॥

तारा पांडेय—आपके सुकुमार भावुक हृदय की वेदना ही आपके

गीतों के रूप में परिणत हो गई है। आपके गीत निराशापूर्ण होते है। उनमें अनन्त पीड़ा की कसक रहती है। जब हृदय की वेदना असह्य हो जाती है तो यह कहती है.

वियोगी हो या वैरागी
कथा कुछ अपनी कह दो आप।
और बदले में हे सुकुमार
व्यथा सुन लो मेरी चुपचाप॥

परन्तु दूसरे की व्यथा को विरले ही सुनते है। जब उसकी व्यथा को कोई नही सुनता, तो उसे निराशा होती है—संसार निर्दय है—पत्थर है, स्वार्थी है.

मै दुख से शृङ्गार करूँगी॥
जीवन में जो थोड़ा सुख है,
मृग जल है उसमें भी दुख है,
छली गई बहु बार जगत् में, फिर क्यों अपनी हार करूँगी॥

आपकी कविताओ के संग्रह 'वेणुकी' और 'शुकपिक' नाम से प्रकाशित हो चुके है।

श्रीमती होमवती देवी—आपके गीतो में भी व्यथा होती है। नारी-हृदय तुरन्त अश्रु-सिक्त हो उठता है। जब ये पीडाएँ सँभाले नही सँलभती तो गीतो के रूप में बह निकलती है

मन कैसे समझाऊँ सजनी।
कैसे व्यथा भुलाऊँ सजनी॥
पल-पल पड़ पीड़ा के पाले।
छिल जाते जब उर के छाले।
सिसक-सिसक मन रो उठता है।
कैसे धीर ,बधाऊँ सजनी।
मन कैसे समझाऊँ सजनी ?

उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त हिन्दी की महिला-कवयित्रियो मे

रामकुमारी चौहान, चन्द्रमुखी ओझा 'सुधा', शान्ति एम० ए०, 'विद्यावती 'कोकिल' कमला चौधरी, शैल रस्तौगी, कुसुमकुमारी सिनहा शान्ति सिहल तथा निर्मला माथुर आदि के नाम उल्लेखनीय है।

विविध साहित्य

ऐतिहासिक ग्रन्थ—इस युग के इतिहासकारो में जयचन्द्र विद्यालकार, श्री सत्यकेतु विद्यालंकार, कालिदास कपूर, राय कृष्णदास और राजकुमार डॉ० रघुबीरसिंह का नाम उल्लेखनीय है। जयचद्र विद्यालंकार का 'भारत भूमि और उसके निवासी', रायकृष्णदास की 'भारतीय चित्रकला' और 'भारतीय मूर्तिकला' हिन्दी-साहित्य मे नवीन और महत्त्वपूर्ण पुस्तके है। इनके अतिरिक्त डॉ० गौरीशकर हीराचद ओझा की 'भारतीय सस्कृति' और मिश्रबन्धुओ का 'बुद्ध-पूर्व का भारत' इतिहास-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण पुस्तके है।

नवीन लेखको मे श्री राहुल साकृत्यायन का 'बृहत्तर भारत', प्राणनाथ विद्यालकार का 'हडप्पा' तया मोहनजोदडो', 'सिन्धु-सभ्यता' तथा भगवद्दत्त शास्त्री का 'भारतवर्ष का इतिहास' महत्त्वपूर्ण रचनाएँ है।

जीवन-चरित्र– आधुनिक जीवन-चरित्रों मे सत्यदेव विद्यालकार का 'श्रद्धानन्द', डॉ० राजेन्द्रप्रसाद का 'चम्पारन मे गाधी', जगमोहन वर्मा का 'बुद्धदेव', सम्पूर्णानन्द का 'सम्राट् हर्षवर्धन', तामस्कर का 'शिवाजी की योग्यता', हरविलास शारदा का 'महाराणा सॉगा' आदि उत्तम रचनाए है।

अर्थ-शास्त्र—अर्थ-शास्त्र-सम्बन्धी पुस्तकों में शिवनन्दनसिह का 'देश दर्शन' प्राणनाथ विद्यालकार का 'भारतीय सम्पत्ति-शास्त्र' हरिनारायण टंडन की 'भारतीय वाणिज्य की डायरेक्टरी' तथा अमरनारायण अग्रवाल की 'ग्रामीण अर्थ शास्त्र और सहकारिता' महत्त्वपूर्ण पुस्तके है।

विज्ञान—वैज्ञानिक ग्रथ-लेखकों मे डॉ० गोरखप्रसाद, डॉ० सत्य-

प्रकाश, देवदत्त अरोडा, गोपाल दामोदर तामस्कर, महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, बाबू शालिग्राम भार्गव, डॉ० निहालकरण सेठी, जयदेव शर्मा विद्यालकार, गगाप्रसाद, कविराज प्रतापसिंह, भगवतीप्रसाद, श्रीवास्तव तथा कृष्णगोपाल माथुर के नाम उल्लेखनीय है। इन्होने विज्ञान-सम्बन्धी पुस्तके लिखकर इस क्षेत्र मे प्रशसनीय कार्य किया है।

पत्र-पत्रिकाएँ

मासिक—द्विवेदीकालीन पत्र-पत्रिकाओ का उल्लेख हम पीछे कर चुके है। उस काल की सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिकाएँ 'सरस्वती', 'इन्दु' और 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका थी। इन पत्रिकाओं मे गवेषणात्मक निबन्धो के अतिरिक्त खोज-विषयक निबन्ध एवं प्राचीन ग्रथो का सम्पादन बडी योग्यता के साथ होता था। इस क्षेत्र की वृद्धि होने पर 'आर्य महिला', 'चॉद', 'सुधा' 'माधुरी', 'विशाल भारत', 'विश्व-मित्र', 'हस', 'नोक-झोक', 'गीता-धर्म', धर्मदूत', 'सुधानिधि', 'सहेली', 'हिन्दुस्तानी', 'साहित्य-सदेश' विज्ञान आदि अनेक उत्तमोत्तम पत्र-पत्रिकाएँ निकलने लगी इसके विविध-विषयक निबधो और कविताओं आदि से पाठको की ज्ञान-वृद्धि होने लगी। गीता प्रेस गोरखपुर से 'कल्याण' नामक मासिक पत्र बड़ी योग्यतापूर्वक धार्मिक विषयो का प्रतिपादन करता है। प्रति वर्ष इसका एक उत्तम विशेषाक भी निकलता है।

इनके अतिरिक्त और भी अनेक पत्र-पत्रिकाएँ निकल रही है, जो अपने समाज एवं पार्टी के हित-साधन में सलग्न है। इधर काशी से 'युगधर्म', 'नारी' और 'आँधी' नामक पत्रिकाएँ निकली थीं। जिनमे उच्चकोटि का साहित्य था।

साप्ताहिक—'आकाशवाणी', 'भविष्य', 'पाटलीपुत्र', 'श्रीकृष्ण-सदेश,' 'हिन्द केसरी', 'हिन्दू पच', 'सैनिक', 'स्वदेश', 'तरुण राजस्थान', 'देश' आदि साप्ताहिक पत्र बड़े उत्साह पूर्वक निकले। प्रयाग से 'भारत'

नाम का साप्ताहिक पत्र और निकला, जिसका दैनिक संस्करण भी अब निकलने लगा है।

आजकल निकलने वाले कुछ प्रमुख साप्ताहिक पत्र ये है—'कर्म-भूमि', 'पाचजन्य', 'कर्मवीर', 'ग्राम-संसार', 'ग्राम-सुधार', 'जागृति', 'दरबार', 'नया राजस्थान', 'नवजीवन', 'अशोक', 'आर्य मार्तण्ड', 'प्रकाश', 'आर्यमित्र', 'आदर्श', 'नवीन भारत', 'मजदूर-जगत्', 'आवाज', 'युगवाणी', 'युगान्तर', 'राष्ट्रवाणी', 'लोकमत', 'समय', 'ससार', 'आज', 'सन्मार्ग', 'सगम', 'स्वराज्य', 'हरिजन-सेवक', 'वीर अर्जुन', 'धर्मयुग', 'विजय', 'शुभचितक', 'प्रजा', 'आग', 'हुकार' आदि।

दैनिक—दिल्ली से 'हिन्दुस्तान', 'नवभारत टाइम्स', 'विश्वमित्र', 'जनसत्ता', 'वीर अर्जुन', निकलते हैं। 'नेताजी' 'अमर भारत', और हिन्दीमिलाप' भी कुछ दिन निकलकर बन्द हो गए। काशी से 'आज', 'ससार' और 'सन्मार्ग' तीन दैनिक निकलते है। इनके अतिरिक्त 'वर्तमान', 'अधिकार', 'आर्यावर्त', 'जयभारत', 'स्वतन्त्र भारत', 'स्वदेश', 'प्रताप', 'भारतमित्र', 'लोकमत' आदि अच्छे पत्र निकलते है। कुछ दैनिक पत्रों के साप्ताहिक सस्करण भी निकलते है, जिनमे उच्च कोटि के निबन्ध, लेख और कहानियाँ आदि होती है। दिल्ली से पब्लिकेशन्स डिवीजन से 'आजकल', 'विश्व-दर्शन' और 'बाल-भारती' तीन मासिक पत्र निकलते है। वर्ष मे इन सबका एक-एक विशेषाक भी निकलता है।

कुछ बालोपयोगी पत्र-पत्रिकाएँ भी निकलती है, जिनमे बच्चो के मनोरंजन के साहित्य के अतिरिक्त बहुत-सी उपयोगी बाते होती है। इनमे 'हमारे बालक' 'होनहार', 'बालक', 'बालसखा', 'शेर बच्चा', 'दीदी', 'शिशु', 'सहेली', 'खिलौना,' 'बाल-भारती', 'चन्दा मामा', तथा 'मनमोहन' आदि उल्लेनीय है।

पञ्चम उत्थान : प्रेमचन्द्-काल

साहित्य की रूपरेखा समय और परिस्थितियो के साथ-साथ सदैव

बदलती आई है। जो साहित्य अपने समय के सामाजिक, राजनैतिक एव आर्थिक परिस्थितियो के साथ सामजस्य स्थापित करके चलता है, वही साहित्य वास्तविक और स्थायी साहित्य होता है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास पर एक दृष्टि डालने से स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य मे समय और काल की परिस्थितियो के अनुसार परिवर्तन होता आया है। वीर-प्रशस्ति युग का साहित्य भक्ति-युग मे न रहा, और भक्तियुगीन साहित्य शृङ्गार युग मे दूसरा ही रूप धारण कर गया और शृङ्गारयुगीन रीति-साहित्य आधुनिककालीन साहित्य मे परिवर्तित हो गया। यह सब-कुछ क्या है, साहित्य की प्रगतिशीलता ही तो है। आधुनिक साहित्य की प्रेमचन्द-काल हमारी वर्तमान परिस्थितियो की उपज ही समझनी चाहिए।

एक बात और—किसी देश के साहित्य पर देश की परिस्थितियों के अतिरिक्त विदेशी साहित्य का भी प्रभाव पड़ता है। हमारे देश के साहित्य पर पाश्चात्य साहित्य का बहुत-कुछ प्रभाव पडा है। वास्तव में साहित्य कोई एकदेशीय नही है, वह तो सार्वभौमिक और सार्वकालिक है। देश-काल की सीमाएँ उसे बाँध नही सकती। हमारा आज का प्रेमचन्द-काल-मार्क्सवाद की साहित्यिक धारा से प्रभावित हुआ है। रूस मे जारकालीन शोषण और दमन की नीतियो ने मार्क्सवादी विचारो को जन्म दिया। मार्क्सवाद के प्रचारको ने बोल्शेविक क्राति के पूर्व ही मार्क्सवादी विचार-धारा के प्रचार-कार्य के लिए प्रगतिवादी साहित्य का निर्माण कर लिया। सन् १९१९ में जारशाही शासन समाप्त हो जाने पर लेनिन की सरकार बनी और उसी के साथ मार्क्सवादी समाज-व्यवस्था और शासन-व्यवस्था की परिपुष्टि के लिए यथार्थवाद की स्थापना की गई। राष्ट्र की प्रगतिशील शक्तियो को जानने और उसकी साहित्यिक अभिव्यक्ति करने के लिए ही यह स्थापना की गई थी। इस प्रकार साम्यवादी विचार-धारा साहित्य मे एक नवीन दृष्टिकोण लेकर प्रवाहित हुई। तत्कालीन रूसी शासन-व्यवस्था मे प्रतिष्ठित सत्ता के विरुद्ध

कोई भी साहित्यकार लेखनी उठाने का साहस नहीं कर सकता था। दूसरी ओर रूसी सरकार जो पंचवर्षीय योजना के अनुसार अपना कार्य कर रही थी, प्रगतिवादी साहित्यकारों को प्रोत्साहन देती थी। स्वमत-पोषक अपनी राजनैतिक सत्ता को पुष्ट और सशक्त बनाने के लिए प्रगतिवादी साहित्य का उपयोग करने लगे। प्रगतिवाद की मूल धारा का स्रोत रूस के क्रान्तिकालीन समाजवादी आदर्श मे आरम्भ हुआ और उसी में चलकर आगे प्रगतिवाद का वर्तमान स्वरूप उद्‌भूत हुआ।

इधर प्रथम युद्ध की समाप्ति पर युद्ध से संत्रस्त तथा उनके परिणामों से दरिद्रीभत यूरोप में निराशा की घटा छा लगी। जिन सैनिकों ने युद्ध में विजय पाने के लिए पानी की तरह अपना खून बहाया था, युद्ध की समाप्ति पर उन्हें क्या मिला ? मजदूर और किसान युद्ध के लिए अपना सर्वस्व समर्पण करके भी क्या पा सके ? फलत: इस ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट हुआ। बेचारे श्रमजीवियों की अवस्था और भी संकटमय होती गई। परिमाणत: यूरोप में रूस की सफलता देखकर विवेकशील लोगों का ध्यान समाजवाद की ओर आकृष्ट हुआ।

रूस में समाजवाद की सफलता का प्रभाव विशेषत: एशिया के परतंत्र देशों पर अधिक पड़ा। कारण, परतन्त्र देशों में साम्राज्यवादी शक्तियों का दमन और शोषण-चक्र पूर्ववत् चालू था। अत: भारत पर भी समाजवादी विचार-धारा का विशेष प्रभाव पड़ा। दूसरे यहाँ के कलाकार साहित्यिक क्षेत्र में निरन्तर परिवर्तित होते हुए साहित्यक वादों से ऊब चुके थे। परिणाम यह हुआ कि उन कलाकारों के हृदय में जन-सामान्य की भावना का स्पर्श करने वाले रूस के प्रचोरात्मक साहित्यवाद ने अपना स्थान बनाना आरम्भ कर दिया। देश-काल की परिस्थिति और उसकी प्रवृत्ति से परिचित उत्साहशील नवीन साहित्यकारों का स्थान मार्क्सवादी काव्य-धारा की ओर गया और उन्होंने अपनी रचनाओं में बहुसंख्यक श्रमिकों और कृषकों की, शोषित और दलितों की दुर्दशा का चित्रण करना आरम्भ किया। पूँजीवाद के द्वारा होने वाले शोषण

और प्रतिकार की ओर भी संकेत किया गया। इस प्रकार एक ऐसे प्रचारात्मक साहित्य का निर्माण हुआ, जो अस्थायी होते हुए भी मार्क्स-वादी विचार-धारा का पोषक होने के साथ-साथ क्रान्ति के द्वारा समाज-वाद की स्थापना का उद्घोष करने लगा।

हिन्दी-साहित्य में सन् १९३५ में प्रगतिवादी धारा का प्रादुर्भाव हुआ। १९३६ में डॉक्टर मुल्कराज आनन्द और सज्जाद जहीर के प्रयत्न से प्रगतिशीश लेखक संघ' की स्थापना हुई। इसका प्रथम अधिवेशन लखनऊ मे श्री प्रेमचन्द जी के सभापतित्व में हुआ। प्रेमचन्द जी ने प्रगतिवाद की स्थापना से ही पहले ही एक कलाकार की दृष्टि से साहित्य के इस रूप को विशुद्ध साहित्यिक रूप मे देख लिया थो। उनके उपन्यास और कहानियो में भारत की शोषित, दलित जनता का जो स्वाभाविक चित्रण हुआ है, किसान और मजदूर की दुर्दशा का जिस मनोयोग के साथ चित्र खीचा गया है, तथा स्वार्थी वर्गो, पूँजीपतियों और जमींदारो के अत्याचार का जो वर्णन किया गया है, वह 'प्रगतिवादी चेतना का स्वाभाविक और वास्तविक स्वरूप है। प्रगतिशील के लेखक संघ' प्रारम्भिक अधिवेशनो मे उन्होने उसके साम्प्रदायिक स्वरूप को नही समझा था। प्रेमचन्द जी का साहित्य वाद की रूढियो से मुक्त था। उनका दृष्टिकोण था काव्य जितना लोक-मगल-साधक होगा, उतना जन-सामान्य का उद्धारक होगा। सम्भवत. इसी कारण आज के प्रगतिशील साहित्यकार प्रेमचन्द को प्रगतिवादी नहीं मानते। वास्तव मे वे साम्प्रदायिक प्रगतिवादी न थे; वरन् एक सच्चे प्रगतिवादी थे।

धीरे-धीरे हिन्दी मे प्रगतिवाद का प्रचार बढने लगा। यहाँ तक कि छायावाद और रहस्यवाद के लब्ध-प्रतिष्ठित साहित्यकार भी प्रगतिवाद की ओर सहज ही मे आकर्षित हो गए। इसका एक कारण यह भी था कि छायावादी कविता से कवि और जनता दोनो ही ऊब गए थे। यह कविता न तो जन-सामान्य के हृदय का स्पर्श करती थी, और न ही इसमे उनके जीवन की अभिव्यक्ति होती थी। वास्तव में, छायावादी

कविता एक वर्ग विशेष के मनोरंजन का साधन बन गई। इसलिए देश की तत्कालीन परिस्थिति और जनता की भावना के साथ-साथ, उपयोगिता-हीन छायावादी कविता से असन्तुष्ट साहित्यकारों को प्रगतिवाद का स्वरूप अत्यन्त मोहक प्रतीत हुआ। दूसरे शब्दो मे हम कह सकते है, कि छायावार्द और रहस्यवाद की प्रतिक्रिया ने प्रगतिवाद को जन्म दिया।

प्रगतिवादी धारा से प्रभावित होकर हिन्दी के प्राचीन रहस्यवादी और छायावादी कवि 'पन्त' और 'निराला' भी प्रगतिवाद की ओर अग्रसर हुए। १९३८ में पन्त जी ने नरेन्द्र शर्मा के साथ मिलकर 'रूपाभ' नामक मासिक पत्र निकाला, जो कालाकाँकर से निकला था। इसमे प्रगतिवादी साहित्य का प्रकाशन जोरो से हुआ। 'हस' मे शिवदानसिंह चौहान के लेख प्रगतिवादी काव्यालोचना पर निकलते रहे। इस प्रकार हम देखते है कि सबसे पहले 'पन्त' जी ने प्रगतिवादी साहित्यकारो के साथ सहयोग किया।

पन्तजी अब तक प्रमुख छायावादी कवि माने जाते थे, किन्तु निम्न वर्ग की जनता का शोषण और मर्दन देखकर उनका कवि-हृदय द्रवित हो उठा। प्रकृति और मानव-भावनाओ के गान उन्हे निरर्थक जान पड़े। पीड़ित जनता की पुकार ने पन्तजी को मार्क्सवादी विचार-धारा का आश्रय लेकर क्रान्ति द्वार नव समाज की स्थापना के गीत गाने की ओर प्रेरित किया। 'युगवाणी' 'ग्राम्या' और 'युगान्त' में जहाँ उन्होने क्रान्ति जन-शोषण की आवश्यकता पर कविताएँ लिखी है, वहाँ जनता के शोषण और श्रमिकों के जीवन के वास्तविक चित्र खीचे है। पन्त जी की भाँति निराला, बच्चन, उदयशकर भट्ट आदि कवि भी अब प्रगतिवाद की ओर झुकते जा रहे है। भाव-धारा का सूत्रपात उपन्यास सम्राट मुन्शी प्रेमचन्द की अध्यक्षता में हुआ था और इस काल के अधिकाश साहित्यकारो ने उनको साहित्य से पर्याप्त प्रेरणा ग्रहण की थी। अतः हम इसे प्रेमचन्द-काल रहेगें। क्योकि इस काल

की अब हम प्रगति वादि-धारा के प्रमुख कवियों का सक्षेप में उल्लेख करेंगे ।

प्रमुख कवि

रामधारीसिंह दिनकर—'दिनकर जी' बिहार के प्रमुख कवि है । आप पर राष्ट्रीयता की पूरी छाप है । धनियो और पूँजीपतियों की शोषण-नीति से आपका करुणार्द्र हृदय व्यथित हो जाता है । आपकी कल्पना भी कभी-कभी शिव का-सा प्रलयंकारी रूप धारण कर लेती है । आपकी ओजस्वी रचनाएँ युवको के दिलो में उमग और उत्साह का सचार कर देती है । 'रेणुका,' 'हुकार', 'रसवंती', 'कुरुक्षेत्र', 'सामधेनी'- और 'रश्मिरथी' 'इतिहास के आँसू', 'धूप और धुआँ' आपके कविता-सग्रह है । इसकी कविता का उदाहरण देखिए :

> **गरजकर बता सबको, मारे किसी के**
> **मरेगा नहीं हिन्द देश !**
> **लहू की नदी तैरकर आ गया है,**
> **कहीं-से-कहीं हिन्द देश !**
> **लड़ाई के मैदान में चल रहे**
> **लेके हम उसका उड़ता निशान !**
> **खड़ा हो जवानी का झण्डा उड़ा**
> **ओ मेरे देश के नौजवान !**

नरेन्द्र शर्मा—आज के तरुण कवियों में आपका प्रमुख स्थान है । आपकी प्रारम्भिक कविताओ में शृङ्गार और प्रेम के दर्शन होते । जिनके सग्रह 'शूल-फूल' और 'कर्णफूल' नाम से प्रकाशित हो चुके है । कई रचनाएँ 'प्रवासी के गीत', 'प्रभात फेरी', 'हंसमाला', 'अग्निशस्य' और 'रक्तचन्दन' में संग्रहीत है । आपकी कविता सामाजिक रूढियो और बन्धनों को तोड़ती हुई चलती है । कविता का उदाहरण देखिए :

आओ सब मेहनतकश साथ—
लिए हथौड़ा और दरांती !
जो मेहनत से पैदा करते
मालिक हैं दुनियाँ-भर के !
खोलो लाल निशान !
हो सब लाल जहान !

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'—प्रगतिवादी कवियों मे 'अचल' प्रमुख स्थान रखते है । 'मधूलिका', 'अपराजिता', 'किरण वेला', 'लाल चूनर' और 'करील' आपके चार काव्य-सग्रह है । प्रारम्भ में आपने प्रेम और तृष्णा-सम्बन्धी गीत गाए, किन्तु बाद में वे तृष्णा-सम्बन्धी अतृप्ति के गान असन्तोष और विद्रोह की भावना मे परिणत हो गए । आपने अपनी कविताओं मे पीड़ित मानवता के बडे करुणाजनक चित्र खींचे है :

और कई बच्चों की माँ आ रही उधर से अन्न बटोरे ।
आँचल में कुछ लिये चबाती, कुछ बिखरे धोती के डोरे ॥
वह देखती पेड़ तले यह खड़ी मानवी कृश तन जर्जर ।
देती बाँध फटे दामन में, थोड़े से दाने अकुलाकर ॥
किन्तु खड़ी रहती वह जड़ पत्थर निज निर्मोही की प्यासी ।
घर के बिकते तो बीतेंगे पेड़ तले फिर रातें त्रासी ॥

अज्ञेय—आपका पूरा नाम सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' है । 'अज्ञेय' जी का जीवन जग की वेदना से विकल, सतप्त और अभिशप्त है । वह इस पीडा का प्रतिकार चाहते है और सतत इस चिन्ता में लीन है । उनकी कला आज के संघर्ष में एक चमकता अस्त्र है । कविता का उदाहरण नीचे दिया जाता है :

जाने किस दूर वन-प्रान्तर से उठकर,
आया एक धूलि-कण ।

ग्रीष्म ने तपाया उसे, शीत ने सताया उसे,
भव ने उपेक्षा के सागर मे डुबाया उसे।
पर उसमें थी ऐसी एक धीरता-
जीवन समर में भी कुछ ऐसी वीरता,
जग सारा हार गया,
डाल हथियार गया।

शिवमंगलसिंह 'सुमन'—'सुमन' जी की कविताएँ सरस ग्रौर मधुर होती है। ग्रापकी कविताग्रो में वह उच्छृङ्खलता नहीं है, जो प्राय: ग्रन्य प्रगतिवादी कवियो की रचनाग्रो मे होती है। ग्रापके सुकोमल हृदय से कठोर-से-कठोर विषय भी सरस बनकर निकलता है। ग्रापकी कविताग्रों के सग्रह 'हिल्लोल', 'जीवन के गान' ग्रौर 'प्रलय-सृजन' है। कविता का उदाहरण देखिए·

हम तारों के नाते, ग्रम्बर के ग्रपने है,
हम लहरों के नाते, सागर के ग्रपने है,
हम रज-कण के नाते, धरती के ग्रपने है,
हम जीवन के नाते, जगती के ग्रपने है,
क्या एक तुम्हारा ही बनने में इतना भ्रम?
मृग तृष्णा की छलना क्या सचमुच सत्य परम?
या प्रेम-प्राप्ति-पथ पर सपनों का निश्चित क्रम?
पर व्यर्थ नहीं जाते संघर्ष-साधना-श्रम?

केदारनाथ अग्रवाल—ग्रापका प्रगतिवादी कवियों में प्रमुख स्थान है। ग्रापकी कविताएँ व्यंग्यात्मक होती है। सीधी-सादी कविता में ग्राप ग्रपने विपक्षी पर ऐसा तीखा व्यंग कसते है कि देखते ही बनता है। ग्रापकी ग्रधिकतर कविताएँ मुक्तक छन्द मे है, जो भाव के झकोरे मे ग्रपने-ग्राप बनता-बिगडता चला जाता है। उदाहरण नीचे देखिए :

दिन भर ग्रधरम करने वाले,
पर-नारी को ठगने वाले,

पर सम्पति को हरने वाले,
भीषण हत्या करने वाले,
धर्म लूटने के अधिकारी,
होली की टोली में निकले,
जैसे गुड़ के लोभी चींटे,
लम्बी एक कतार बनाके, अपने-अपने बिल से निकले।

उपर्युक्त कवियो के अतिरिक्त नेमिन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, नेपाली, नरेशकुमार मेहता, गिरिजाकुमार माथुर, कमलेश, नागार्जुन आदि प्रगतिवादी कवियो मे उल्लेखनीय है। इनकी कविताएँ आये दिन सर्वश्रेष्ठ प्रगतिशील पत्रो मे प्रकाशित होती रहती है। इस काल मे कुछ एसे कवि भी जो प्रगतिवादी धारा से अछूता रह कर यथार्थ अनुभूति एव भाव-प्रवणता के गीतो की सृष्टि कर रहे है। ऐसे कवियो में जानकीवल्लभ शास्त्री, हसकुमार तिवारी, बलवीरसिह 'रंग', शम्भुनाथ 'शेष', चिरञ्जीत और देवराज 'दिनेश' आदि के नाम विशेष परिगणनीय है।

उपन्यास

उपन्यास—प्रेमचन्द के बाद हिन्दी-उपन्यास ने कई नई दिशाएँ धारण की है। पिछले दस वर्षों मे न 'गोदान'-जैसा कोई उपन्यास ही हमे मिला है, न प्रेमचन्द-जैसा कोई मेधावी कथाकार, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि नये साहित्य मे उपन्यास और कहानी ही सबसे शक्तिशाली और प्रगतिशील है। भाषा-शैली के जितने प्रयोग तरुण उपन्यासकारो ने किये है, उतने प्रयोग गद्य के सब क्षेत्रों को मिलाकर भी नही हुए। प्रगतिवादी उपन्यासकारो मे कुछ पुराने प्रौढ उपन्यासकार है कुछ नवीन तरुण कलाकार है।

प्रौढ़ उपन्यासकारो मे हम भगवतीचरण वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, राधिकारमणप्रसादसिंह और उषादेवी मित्रा के नाम ले सकते है।

भगवतीचरण वर्मा का 'पतन', 'तीन वर्ष', 'चित्रलेखा', 'टेढे-मेढ़े रास्ते' तथा 'आखिरी दाँव' है। 'पतन' को छोडकर शेष सभी उपन्यासो मे एक नवीन कल्पना, वर्णन-शैली और जीवन के व्यावहारिक दृष्टिकोण के प्रति हमे एक महती अनुशोचना मिलती है। भगवतीप्रसाद वाजपेयी के 'दो बहने', 'पतिता की साधना', 'पिपासा', निमत्रण', 'गुप्त धन' 'चलते-चलते' तथा 'पतवार' आदि उपन्यासो मे जीवन के व्यग को पर्याप्त निर्दयता से चित्रित किया गया है।

राजा राधिकारमणप्रसादसिह के 'गाधी टोपी', 'लाल तारा' आदि उपन्यास प्रगतिशील उपन्यास है। उषादेवी मित्रा के और उपन्यासो का उल्लेख हम पीछे कर चुके है।

तरुण पीढी के उपन्यासकारो मे उपेन्द्रनाथ 'अश्क', 'अज्ञेय', 'पहाड़ी' यशपाल, कृष्णदास, 'अचल', इलाचन्द्र जोशी, गगाप्रसाद मिश्र, सर्वदानन्द वर्मा, राहुल साकृत्यायन, धर्मवीर भारती, डॉ० देवराज तथा विष्णु प्रभाकर के नाम उल्लेखनीय है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के 'सितारों के खेल' तथा 'गिरती दीवारें',अज्ञेय के 'शेखर . एक जीवनी' तथा 'नदी के द्वीप', यशपाल के 'दादा कामरेड', और 'देशद्रोही', कृष्णदास के 'अग्नि-पथ' और 'क्रान्ति-दूत' अचल के 'चढती धूप', 'उल्का', 'नई इमारत' और 'मरु प्रदीप', इलाचन्द्र जोशी के 'पर्दे की रानी', 'प्रेत और छाया', 'संन्यासी', गंगाप्रसाद मिश्र का 'सघर्षो के बीच', सर्वदानन्द वर्मा के 'नरमेध', 'प्रश्न', 'अनिकेतन', 'निकट की दूरी', तथा 'अनागत', राहुल साकृत्यायन के 'जय यौधेय', 'सिंह सेनापति', 'सोने की ढाल', और 'जादू का मुल्क', डॉ० धर्मवीर भारती का 'गुनाहो का देवता', 'सूरज का सातवाँ घोड़ा', जदेवराज का 'पथ की खोज', विष्णु प्रभाकर का 'ढलती रात' प्रमुख है। पहाड़ी ने अपने 'सराय' आदि उपन्यासो मे 'यथार्थवादी रोमांस' के चित्र खीचे है। सच तो यह है कि सन् १९३६ के पश्चात् जितना विकास उपन्यास और कहानी के क्षेत्र मे हुआ है, उतना और किसी क्षेत्र मे नही हुआ। उपन्यास लिखने

के ढग मे तो इतना परिवर्तन हो गया है कि प्रेमचन्द के उपन्यास बहुत पीछे छूट गए है ।

कहानी

प्रेमचन्द-काल मे उपन्यास की भाँति कहानी-क्षेत्र मे भी पर्याप्त विकास हुआ । सैकडो की सख्या मे कलात्मक कहानियाँ हमारे सामने आ गई है और हम पूर्व-पश्चिम के किसी भी साहित्य के समकक्ष अपने कथा-साहित्य को रख सकते है । प्रगतिवादी उपन्यासकार ही अधिकाश मे कहानीकार है । प्रमुख प्रगतिशील कहानीकारो मे हम भगवतीचरण वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, रागेय राघव, अमृतराय, अज्ञेय, यशपाल, विष्णु प्रभाकर, [illegible] अमृतलाल नागर, पहाडी, अश्क, अचल, तेजबहादुरसिह हसराज 'रहबर', रामवृक्ष बेनीपुरी, [illegible] प्रभाकर माचवे, राजेन्द्र यादव, कमल जोशी, बरुआ, श्रीमती कमला त्रिवेणीशकर, चन्द्रकिरण सोनरेक्सा तथा रजनी पनीकर के नाम प्रमुख है ।

इन सभी कहानीकारो ने समाज के प्रत्येक अग पर प्रकाश डालने वाली उत्तम कहानियो की रचना की है । भगवतीप्रसाद वाजपेयी और भगवतीचरण वर्मा की कहानियाँ समाज के प्रति एक विद्रोह की भावना लिए रहती है । शेष कहानीकारो की रचनाओ मे भी कला के ऐसे अनेक विधान मिलेगे जिनमे सामयिक जीवन, इतिहास तथा, संस्कृति के अनेक अंगों का स्पर्श किया गया है । श्री राधिकारमणप्रसादसिह की कहानियों का सग्रह 'सावनी समा' यशपाल की कहानियों के सग्रह 'पिजरे की उडान', 'वो दुनिया', 'ज्ञानदान', 'फूलो का कुर्ता', 'उत्तराधिकारी, पहाडी के 'सड़क पर', 'अधूरा चित्र', 'छाया में', अमृतलाल नागर का 'तुलाराम शास्त्री', अंचल का 'ये वे बहुतेरे', अमृतराय का 'जीवन के पहलू' नाम से प्रकाश मे आ चुके है । अन्य लेखकों की कहानियाँ सामयिक पत्र-पत्रिकाओ मे आये दिन निकलती रहती है ।

श्री राहुल साकृत्यायन की 'वोल्गा से गंगा' कहानी-संग्रह में भारत की सास्कृतिक विकास की ऐतिहासिक कथाओ का चित्रण है। डॉ० भगवतशरण उपाध्याय भी इसी धारा के लेखक है। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी की कहानियाँ भी अपने ढग की निराली होती है। इधर रामचन्द्र तिवारी और श्रीराम शर्मा की कहानियाँ भी अच्छी निकली है।

पिछले दस वर्षो मे भारत के राजनैतिक और सामाजिक जीवन की प्रगति विद्युत् गति से हुई है और कहानीकारो ने देश के विभिन्न भागो के नर-नारियो की संवेदनाओ को सुन्दरतम रूप में रखने का प्रयत्न किया है। बगाल का अकाल, सन् ४२ का आन्दोलन, कलकत्ता और पजाब का जन-सहार और युद्धकालीन अवस्था और मध्यवित्तो के आर्थिक और नैतिक सघर्ष का चित्रण, हमारे इन कहानीकारो का प्रिय विषय रहा है। बीसियो कहानी-मासिक हजारो की सख्या मे निकलते है, जिनमे हजारो कहानियाँ प्रतिमास प्रकाशित होती है। हजारो कहानियो मे दस-बीस ऐसी अवश्य होती है, जो हमे गोर्की, मोपासाँ, फलावर्न और चैखव की याद दिलाती है। इस प्रकार हम देखते है कि हमारा कथा-साहित्य उत्तरोत्तर प्रगति की ओर जा रहा है।

निबन्ध

पिछले दस वर्षो मे निबन्ध-साहित्य मे भी पर्याप्त विकास हुआ है। विविध विषयो के ठोस और उच्चकोटि के निबन्धो ने हमारे साहित्य के भण्डार को भरा है। प्रगतिवादी निबन्ध-लेखकों मे श्री डॉ०रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह चौहान, प्रकाशचन्द्र गुप्त, जगन्नाथ-प्रसाद मिश्र, तथा प्रभाकर माचवे के नाम लिये जा सकते है। इन लेखको ने प्राय साहित्यिक विषयो पर विवेचनात्मक निबन्ध ही अधिक लिखे है। इन निबन्धो के सग्रह पुस्तक रूप में प्रकाशित हो चुके है। डॉ० रामविलास शर्मा की 'प्रगति और परम्परा', 'सस्कृति और साहित्य',

जगन्नाथप्रसाद मिश्र की 'साहित्य की वर्तमान धारा', शिवदान-सिंह चौहान का 'प्रगतिवाद' प्रगतिशील निबंधों के अच्छे संग्रह है। परन्तु कुछ ग्रन्थो के नाम गिना देने से निबन्ध-साहित्य की प्रगति पर विशेष प्रकाश नही पडता। सैकड़ो मासिक पत्रो, सप्ताहिको, दैनिको के अग्रलेखो और ज्ञान-विज्ञान-सम्बन्धी ग्रन्थो मे जो साहित्य प्रतिदिन हमारे सामने आता है, वह वस्तुत निबन्ध-साहित्य है। पिछले १० वर्षो मे बहुत से लेखको ने निबन्ध-साहित्य मे योग दिया है। इनमे महत्त्वपूर्ण राहुल साकृत्यायन है। मनुष्य के ज्ञान और विज्ञान तथा कर्म का कोई भी क्षेत्र उनकी क्षिप्र लेखनी से अछूता नही बचा है। उन्होने अपने यात्रा-सम्बन्धी लेख लिखकर हमारे साहित्य मे और भी वृद्धि की है। साथ ही नये सैकडो प्रयोग भी हमे दिये हे।

नाटक

नाटको की दृष्टि से हमारा साहित्य विशेष धनी नही है। इसका प्रमुख कारण यह है कि हिन्दी मे अपना रग-मच नही है। इसी से लेखको को नाटक लिखने की विशेष प्रेरणा नही होती और जो नाटक लिखे जाते है, वह केवल पाठ्य-ग्रन्थ बनकर रह जाते है। भाषा, शैली, और कला की दृष्टि से उनमे नाटकीय तत्त्वो का अभाव सा रहता है। न तो लेखक उन पर विशेष परिश्रम करना चाहता है, न रंग-मंच पर अपनी कृति को परख ही सकता है। ऐसी अवस्था मे हिन्दी-नाटको का लिखना केवल परम्परा-पालन-मात्र ही रहा है।

समालोचना

प्रगतिवाद ने हिन्दी-साहित्य को यदि कोई सबसे नवीन और महत्त्वपूर्ण वस्तु दी है, तो वह है आधुनिक समालोचना। अब तक साहित्य-शास्त्र के प्राचीन सिद्धान्तो की कसौटी पर ही साहित्य की आलोचना होती रहा है, किन्तु प्रगतिवादी आलाचकों का कहना है कि

किसी एक ही सिद्धान्त की कसौटी पर साहित्य की परख नहीं हो सकती। उनका कहना है कि समाज और संस्कृति की गति के अनुरूप साहित्य का रूप भी बदलता रहता है। इसीलिए साहित्य की आलोचना करते समय काल-विशेष की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक परिस्थितियो को सामने रखना होगा। जिस प्रकार प्रकृति के रहस्य का निरन्तर और उत्तरोत्तर उद्‌घाटन हुआ उसी प्रकार समाज और साहित्य के रहस्य भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण के सामने निरन्तर खुलते जा रहे है। इसलिए साहित्य के सिद्धान्तो की बाह्य परीक्षा होनी चाहिए और उनका वैज्ञानिक विश्लेषण होना चाहिए।

प्रगतिवादी आलोचना ने कला की विचार-भूमि को विशेष महत्त्व दिया है। पूर्ववर्ती आलोचक विचारो की महत्ता को अपेक्षाकृत कम मानते थे। विचार-पुञ्ज समस्त कला का आधार है, विचार और भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए ही कला की सृष्टि होती है। विचार-रहित कला की कल्पना भी सभव है। कलाकार अपनी अभिव्यक्ति के बाहरी रूप-रंग अवश्य निखार-सुधार को सुन्दर और सबल बनाना चाहता है, किन्तु केवल सुन्दरता के लिए महान् कला की सृष्टि कभी नही हुई। प्रगतिशील आलोचक इन विचारो की परीक्षा करके यह मानने का प्रयत्न करता है कि वे कहाँ तक सामाजिक गति में सहायता देते है अथवा बाधा डालते है। इस विचार-परीक्षा को प्रगतिवादी आलोचक वैज्ञानिक धरातल पर करता है।

एक प्रगतिवादी आलोचक का कहना है कि आलोचना केमाने कोई रहस्य नही है, जिन्हे दैवी प्रेरणा पाकर ही आलोचक समझ सकता है। सफल आलोचना के लिए एक वैज्ञानिक दृष्टि की आवश्यकता है। आलोचक न केवल साहित्य के बहिरग-रूप-रस-गध की परीक्षा करता है प्रत्युत उसके भावो और विचारो से भी परिचित होना चाहता है। इन सबका परस्पर अन्तरंग सम्बन्ध होता है। साहित्य की भावनाओ और विचार-धारा के अनुरूप उसका बाह्य स्वरूप भी निर्मित होता है भाषा,

उपमाएँ, शब्द, चित्र सभी पर भावो की छाप रहती है। साहित्य युग की परिस्थितियो के साथ बदलता है और अपने काल की मन·स्थितियो का प्रतिनिधि होता है। इसलिए आलोचक को किसी युग विशेष के साहित्य का अध्ययन करने के लिए उस युग की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक विशेषताओं का भी अध्ययन अवश्य करना पडेगा और इस साहित्य की परख वैज्ञानिक और ऐतिहासिक दोनों ही दृष्टिकोणो से होगी। इसलिए आधुनिक साहित्य की समीक्षा अथवा परीक्षा हम प्राचीन आलोचना-सिद्धान्तों की कसौटी पर नही कर सकते, वरन् आज की परिस्थितियो को सामने रखकर ही उसकी समीक्षा की जा सकती है।